मनोज दास की कहानियां

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

मनोज दास की कहानियां

अनुवाद

राजेंद्र प्रसाद मिश्र

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3558-8

पहला संस्करण : 2001 *(शक 1923)*

Original Title : Manoj Dasanka Galpa (Oriya)
Translation : Manoj Das Kee Kahaniyan *(Hindi)*

रु. **45.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,
ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

भूमिका

एक अन्य समसामयिक लेखक के लिए मनोज दास की कहानियों के संबंध में किसी तरह की राय देना कितना मुश्किल है, उसका आभास मैंने संग्रह की भूमिका लिखने की जिम्मेवारी मिलते ही किया है। पहली बात तो यह कि उनका मूल्यांकन करने की योग्यता मुझमें नहीं है, और फिर मैं उनके बारे में जो कुछ कहूंगा वह पूरी तरह निर्वैयक्तिक कतई नहीं होगा। इसका मुख्य कारण है मनोज दास से लगभग तीन दशक से भी अधिक समय से मेरा अविच्छिन्न स्नेह, संबंध, घनिष्ठता और मेरे मन में उनके प्रति अशेष श्रद्धा व सम्मान। उनके अनगिनत मुग्ध पाठकों की तरह मुझे भी उनकी कहानियां बारंबार पढ़कर आनंद मिलता रहा है, मैं उनकी कथन शैली का विमल रस ग्रहण करता रहा हूं और उन कहानियों में निहित मानवीय मूल्यबोध के अनबुझे संदेशों का प्रच्छन्न निर्देश पाता आया हूं। उन सबको कभी विश्लेषित करके नहीं देखा जा सकता। वे सब फूल की तरह स्वयं संपूर्ण, मधुमय और ताजे हैं। एक दूसरा कारण है कि वे अब तक सतत सृजनशील होने के कारण एक प्रवहमान नदी की तरह अतुलनीय हैं। वे उत्कल भारती के गले में और भी कई रत्नहार पहनाएंगे यह निश्चित है। ऐसे में उनके लेखक-जीवन के मध्याह्न में जब उनकी अनन्य रसोत्तीर्ण रचनाएं साहित्य आकाश में सूर्य की तरह स्वयंप्रभ हो दमक रही हैं, मेरे कुछ प्रशंसा भरे वाक्य उस सूर्य को दीपालोक दिखाने-सा अवांतर होंगे। यह कोशिश नहीं करूंगा। साहित्यिक मूल्य और कहानियों की बहुलता की दृष्टि से सिर्फ उनकी कहानियों पर एक बिहंगम दृष्टि डालना ही समयोपयोगी होगा। उड़ीसा के बाहर भारतीय व विदेशी पाठकों के लिए शायद ऐसी आलोचना उपादेय भी होगी। उनकी कहानियों का दिगंत विपुल होने पर भी समसामयिक आलोचना में कभी-कभी एक ही पक्ष पर अधिक दृष्टिपात होने-सा लगता है। इसलिए मैं इस बात की पूरी कोशिश करूंगा कि उनकी कहानियों के विस्तार को ठीक से समझा जा सके। इसके लिए मैं आग्रही पाठकों की सूचना हेतु यहां उन कहानियों का उल्लेख भी करना चाहूंगा जो कि इस संग्रह में शामिल नहीं हैं।

उड़ीसा की कहानी परंपरा बहुत पुरानी है। यहां 'गल्पसागर' के माम से प्रख्यात कथक लोग गांव-गांव घूमकर मनोरंजक शैली में कहानियां सुनाकर लोकमान्य और

राजसम्मान हासिल करते थे। उनकी शैली में गद्य और पद्य का सम्मिश्रण होता था तथा समझ में आने जैसे यमक और अलंकारों का प्रयोग भी होता था। मेरे बचपन में बांछानिधि शतपथी नामक एक कथक महाशय विभिन्न शिक्षण संस्थानों में अपने कार्यक्रम करके थोड़ा बहुत कमा लेते थे। अभी कुछ वर्षों पहले उन्हें भुवनेश्वर के पूर्वांचल भाषा केंद्र में द्वितीय भाषा के रूप में ओड़िया भाषा की तालिम पा रहे शिक्षानवीसों के आगे कथकता प्रदर्शन करते देखा था। यह परंपरा थी केवल मौखिक। अब वह लुप्त हो चुकी है। फिर भी, एक तरह से उसी रूप में लिखे गए ब्रजनाथ बड़जेना के 'चतुर विनोद' को ही आलोचक ओड़िया में लिखित गल्प-साहित्य का प्रारंभिक उदाहरण मानते हैं। 'चतुर विनोद' अठारवीं शताब्दी की रचना है। इसमें चार खंड थे : नीति विनोद, प्रीति विनोद, हास्य विनोद और रस विनोद। ये सब आज भी उपभोग्य हैं। इसके बाद ऐसी रचना फिर देखने में नहीं आई। उन्नीसवीं शताब्दी के आखिर में, 1887 में कवि मधुसूदन राव का 'हेममाला' शीर्षक से एक प्रणय प्रधान 'रोमांस' प्रकाशित हुआ था। उधर गल्प कहने की मौखिक परंपरा शायद चलती रही। गोपाल प्रहराज की 'उत्कल कहानी' और कुंजबिहारी दास की 'लोक गल्प संचयन' से इसके प्रमाण मिलते हैं। 'अबोलकरा काहानी' और 'बुढ़िया काहानी खणि' आदि सुखपाठ्य कहानियां ओड़िया छापाखाना शुरू होने के ठीक बाद से लोकप्रिय हुई हैं। यह सब कहने का कारण यह है कि पारंपरिक रीति को आत्मसात करके आधुनिक कहानियां लिखने की एक प्रवृति मनोज दास में दिखाई देती है। 'प्राप्तवयस्क का गणतंत्र', 'मनोज पंचबिंशति' तथा इस संग्रह में शामिल 'सुवर्ण कलश' कहानी इसके उदाहरण हैं। ओड़िया की संस्कृति से इन पारंपरिक कहानियों का संबंध होने के कारण मनोज दास की ये कहानियां कहानी-पाठकों की स्मृति को जाग्रत कर एक अपूर्व रसबोध कराती हैं।

फकीर मोहन सेनापति ने 1898 में 'रेवती' नामक कहानी छपवाकर ओड़िया साहित्य में कहानी की शुरुआत की थी। शायद ओड़िया साहित्य की प्रारंभिक कहानियों में यह एक है। किसी-किसी आलोचक ने 'रेवती' को भारतीय साहित्य की पहली कहानी कहा है। इन विवादों पर तुलनात्मक साहित्य के आलोचक विचार करेंगे। 'रेवती' आज तक ओड़िया कहानियों का सिरमौर है। लगभग सौ साल से वह अपने आसन पर अटल है। अंग्रेज़ी अथवा अन्य भाषाओं में पारंगत हुए बगैर, किसी विधिवत शिक्षा के प्रभाव के बिना फकीर मोहन ने ओड़िया गद्य साहित्य को अपनी कहानियों, उपन्यासों, और जीवनी से जिस तरह समृद्ध किया है, उसकी तुलना किसी दूसरे साहित्य में विरल है। कहानियों की लोकप्रियता बढ़ने पर 'मुकुर' 'उत्कल साहित्य' आदि प्रारंभिक पत्रिकाओं से लेकर अन्य सभी पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित करने के प्रति आग्रह देखा गया। फलस्वरूप अनेक प्रतिभाशाली लेखक कहानी के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान पिछली एक शताब्दी से देते आए हैं।

गोदावरीश मिश्र, गोदावरीश महापात्र, कालिंदीचरण पाणिग्राही, भगवती चरण पाणिग्राही, राजकिशोर पटनायक, अनंत प्रसाद पंडा, कान्हूचरण महांति, हरिश्चंद्र बराळ, पुलिन बिहारी राय, नित्यानंद महापात्र, राजकिशोर राय आदि नाम केवल एक अनायास संगृहीत व अपूर्ण सूची होगी। उड़ीसा साहित्य अकादमी द्वारा संकलित व महापात्र नीलमणि साहू द्वारा संपादित 'शतब्दीर श्रेष्ठ गल्प' में पिछली शताब्दी की कुछ अमूल्य कहानियां हैं, जबकि स्वयं इसके संपादक ने इसकी संपूर्णता से चिंतित होकर इसका दूसरा खंड प्रकाशित करने के लिए अकादमी को सलाह दी है। स्वाधीनता प्राप्ति के समय गोपीनाथ महांति, कान्हूचरण महांति, सुरेंद्र महांति, नित्यानंद महापात्र, प्राणबंधु कर, सुनंद कर, राजकिशोर राय और सच्चि राउतराय ने कहानी के नभमंडल को आलोकित कर रखा था। उस समय की पत्रिकाएं कहानियों को प्रधानता देती थीं। तब के 'सहकार', 'डगर', 'प्रभाती', 'युगवाणी', 'आधुनिक', 'चतुरंग', 'आरती' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रकाशित कहानी संग्रहों को देखने से यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि उस समय कहानी की प्रगति कितनी तेजी से हुई । अनेक पत्रिकाओं के नाम तक कहानियों के विकास संबंधी निबंधों में अब दिखाई नहीं देते। कुछ लेखकों के प्रयास से प्रकाशित 'उदयन' नामक पत्रिका में कई प्रयोगधर्मी कहानियां अभी भी याद हैं। बंबई से प्रकाशित लिथो प्रोसेसिंग से हस्तलिखित पत्रिका देव महापात्र द्वारा संपादित 'कुंकुम' का पाठक बेसब्री से इंतजार किया करते थे। उस पत्रिका का कलात्मक पक्ष देखने लायक होता था। समय की अतल धूल में दबी ऐसी अनेक मूल्यवान कहानियों ने निश्चित ही मनोज दास जैसे स्वाधीनता के बाद के लेखकों को कुछ हद तक स्पर्श किया होगा। मनोज दास का आविर्भाव उनके प्रथम कहानी संग्रह 'समुद्रर क्षुधा' के प्रकाशन से अर्थात् 1951 मान लिया जाए, तब कहानी जगत के सर्वमान्य प्रतिभा थे सुरेंद्र महांति, कालिंदी चरण पाणिग्राही, गोपीनाथ महांति और राजकिशोर राय।

मनोज दास ने स्कूल में पढ़ते समय 'दिगंत' और 'आगामी' नामक पत्रिकाओं का संपादन किया था। मैंने वह 'आगामी' नहीं देखा, लेकिन बाद में जब उड़ीसा के छात्रसंघ के मुखपत्र के रूप में 'आगामी' पत्रिका का पुनराविर्भाव हुआ, उसे देखा। तब भी मनोज दास ही उसका संपादन करते थे। कानून की परीक्षा पास करने के बाद जब वे अंग्रेजी से एम.ए. कर रहे थे तथा कटक के क्राइस्ट कालेज में अंग्रेजी पढ़ाते थे, 'दिगंत' पत्रिका का पुनर्प्रकाशन करते थे तथा 'युगरूपा प्रेस' नामक छापाखाना का संचालन भी किया करते थे। उनका सक्रिय सृजन जारी था और उनके कार्यालय में उस समय के ख्याति प्राप्त अनेक कवियों व लेखकों का समागम हुआ करता था तथा चाय, कॉफी के साथ-साथ साहित्य चर्चा भी समताल में हुआ करती थी। 'दिगंत' पत्रिका पाठकों द्वारा बेहद सराही जाती थी और उसकी कहानियां, रम्य रचनाएं, कविताएं व निबंध अति उच्च कोटि के होते थे। उस

कार्यालय में नियमित रूप से आया करते थे कवि भानु जी राव, डाक्टर जेनामणि नरेंद्र कुमार, स्वयं लेखक और अनेक सक्रिय साहित्यकार तथा कटक के बाहर से अन्य कामों से आने वाले आलोचक, अध्यापक और लेखकगण। अब मैं 1960-1963 की बात कह रहा हूं। सन् 1962 में 'डगर' पत्रिका अपनी रजत जयंती मना रही थी। इस अवसर पर उसने डाक के जरिए वोट संग्रह किया था कि साहित्य की विभिन्न विधाओं में कौन-कौन से लेखक सबसे अधिक जनप्रिय हैं। उस गिनती में मनोज दास सर्वाधिक जनप्रिय कहानीकार हुए थे। आज से तीस साल पहले जैसा जनमत संग्रह मेरी जानकारी में और किसी संस्था ने नहीं किया। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि आज भी उसी तरह से जनमत संग्रह किया जाए तो मनोज दास ही अप्रतिद्वंद्वी कहानी-सम्राट के रूप में उभरकर आएंगे। यश और ख्याति के उस उज्ज्वल घड़ी में मनोज दास श्री अरविंद दर्शन और वृहत्तर जीवन के दुर्वार आह्वान के लिए सपत्नीक श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी चले गए। उनके साथी और सहकर्मीगण अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी के एक समर्थक, वामपंथी राजनीति और मार्क्सवादी समाजवाद के आदर्श से प्रत्यक्ष रूप से अनुप्राणित मनोज दास को इस तरह एक अंतर्मुखी साधक बनते देख चकित हुए होंगे। स्वभावतः सरल, निष्कपट, निरहंकार और हमेशा प्रसन्न रहने के कारण बाहर से उनमें कोई परिवर्तन के लक्षण दिखाई नहीं देते थे, किंतु उनके अंतर की जीवन जिज्ञासा निश्चय ही एक तेज प्लावन से अस्त-व्यस्त हो रही थी। श्री अरविंद आश्रम के आध्यात्मिक परिसर में निरंतर अध्ययन और अनुशीलन उनकी सृजनशीलता के लिए अनुकूल हुआ होगा। आधुनिक युग के श्रेष्ठ वेदज्ञ, साधक और व्याख्याकार, 'सावित्री' के अनन्य काव्य स्रष्टा श्री अरविंद के अतिमानस तत्व और ससीम को लांघकर मनुष्य के असीम में पहुंच सकने के आशावाद ने उन्हें निश्चय प्रभावित किया होगा तथा उन्होंने स्वयं श्री मां का आशीष प्राप्त किया होगा। हालांकि किसी और को यह सब सुनाकर प्रत्यक्ष रूप से उसे दीक्षित करने की चेष्टा करते मैंने उनसे अपने लंबे परिचय के दौरान कभी नहीं देखा था। श्री अरविंद आश्रम में भी मैं उनसे मिला हूं और वाकई कर्मरत अवस्था में ही देखा है। अन्य जगह की तुलना में वहां उनकी जीवनधारा में मैंने कोई खास फर्क नहीं देखा। उनके अंतर्मानस का कोई अज्ञात रहस्य उद्घाटित करना मेरा उद्देश्य नहीं है। उनके साधक जीवन की छाया उपछाया उनकी कहानियों में ढूंढना भी अवांतर है क्योंकि साधक मनोज दास के साथ लेखक मनोज दास पर विचार करना भ्रम पैदा कर सकता है। उनके साधक जीवन का प्रसंग इसलिए उठाया कि इसी पृष्ठभूमि पर मनोज दास अधिकांश समसामयिक कहानीकारों से पूर्णतः भिन्न हैं, उनके व्यक्तित्व में साधारण यशोलिप्सा, मोह और अहंकार आदि गंदगी न होने के कारण भी वे दूसरों से भिन्न हैं, कम से कम इतना तो साफ-साफ समझा ही जा सकता है।

ओड़िया कहानियों को ले जाकर विश्व दरबार में हाजिर करने का श्रेय सिर्फ मनोज दास को है। अंग्रेजी भाषा में ओड़िया की तरह गति होने की वजह से मूल ओड़िया से अंग्रेजी में उनके द्वारा अनूदित कहानियां हू-ब-हू और समान रूप से रसोत्तीर्ण होकर पाठक समाज में स्वीकारी गई हैं। इंगलैंड, अमेरिका तथा अंग्रेजी प्रचलित अन्य देशों में उनकी कहानियां लोकप्रिय हुई हैं। आज से दो दशक पहले अमेरिका के इलिनोइ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग ने अपनी 'एसेंट' पत्रिका के प्रवेशांक में अमेरिका के बाहर से सिर्फ एक कहानी शामिल करने का निर्णय लेते हुए जिस कहानी का चयन किया था, वह थी मनोज दास की कहानी 'ए नाइट इन द लाइफ ऑफ ए मेयर' (मधुबन का मेयर)। ऐसी अनेक स्वीकृतियां, लोकमान्य पुरस्कार और अवसर उन्हें मिले हैं तथा और भी मिलेंगे, इसमें संदेह नहीं। लेकिन उनकी कहानियों का झरना ठीक पहले-सा प्रवाहित होता रहेगा, उनके पाठक अधीर आग्रह से इसके लिए आस लगाए रहेंगे। यहां एक और बात कहनी उचित होगी। समसामयिक ओड़िया कथाकारों में से बहुत कम कथाकार उड़ीसा या भारत के बाहर की जीवन यात्रा से प्रत्यक्ष रूप से परिचित हुए हैं। अन्य भारतीय साहित्य और विदेशी साहित्य की कृतियों का अनुवाद या फिर अन्य सूत्रों से सूचना मिलनी भी मांग की तुलना में प्रचुर नहीं है। किसी भी कारण से क्यों न हो, बहुत कम ओड़िया लेखक सांस्कृतिक दल के साथ विदेश यात्रा करते हैं अथवा बाहर का निमंत्रण पाकर साहित्यिक शोध का अवसर पाते हैं। इस दृष्टि से मनोज दास का अन्य देश, अन्य भाषा और जीवन यात्रा से अधिक संबंध रहा है। मुझे स्मरण है, सिंगापुर की सरकार वहां के नागरिक और युवा संप्रदाय के मूल्यबोध के उन्मेष के लिए योजना तैयार करने के लिए उन्हें कई बार आमंत्रित करके ले जा चुकी है। भारतीय संस्कृति से जुड़ी मद्रास से प्रकाशित अंग्रेजी मासिक 'द हेरिटेज' पत्रिका के भी वे संपादक रह चुके हैं। श्री अरविंद आश्रम में भी विभिन्न देशों के बुद्धिजीवियों का समागम लगा रहता है। ऐसे नाना कारणों से बृहत्तर जगत के संपर्क में आकर उनकी मनोभूमि ऐवश्र्यमंडित हुई होगी। यह भी मनोज दास की एक अनन्यता है।

मनीषा और वैचारिक दृष्टि से उनकी कहानियों का अनुवाद संभव नहीं। क्योंकि उनकी कहानियों का प्राण है रस सृष्टि। संवेदन विभव और हृदयावेग की अंतःसलिला फल्गू उनकी कहानियों में सदा प्रवाहित रहती है। इसके अलावा पाठकों को चौंकाते हुए कभी-कभी आश्चर्य और उद्‌भट प्रतीकों का प्रयोग वे करते हैं। कोई अपनी परछाईं को निर्वासित कर दुनिया से छिपता फिर रहा है (परछाईं) तो कोई अनिच्छुक राजकुमार किसी अंधे अहंकार की प्रतियोगिता का शिकार होकर, जाल में फंसे बाघ पर सवार होकर जान गंवा बैठता है (व्याघ्रारोहण), या कोई निरीह इतिहास शिक्षक लोगों को युद्ध के लिए ललकारते समय पृथ्वीराज का घोड़ा बन जाने पर भी उस घटना पर कोई विश्वास नहीं करता (पृथ्वीराज का घोड़ा), एक मगरमच्छ युवती को नदी में खींचने के बाद उससे शादी कर लेता है (मादा मगरमच्छ)। इन असंभव घटनाओं को भी एक

विश्वसनीय शैली में उन्होंने प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों का स्वाद हमेशा बना रहता है तथा शुरू से आखिर तक वे पाठकों को बांधे रखते हैं। मधुबन का मेयर जब निर्वस्त्र, असहाय हालत में बहते हुए नदी किनारे खड़ी नन्हीं-सी बच्ची से फ्रॉक मांगता है और वह अपनी छोटी-सी मैली फ्रॉक तुरंत देने को तैयार हो जाती है, उस वक्त पाठक अनुभूति की एक तरंग में पल भर को यह भूल जाता है कि इसके बाद कहानी किस ओर मुड़ेगी या कि कहानी की गुत्थी कैसे सुलझेगी।

जो बाहर से आंखों को दिखाई देता है, सिर्फ वही नहीं होती पूरी बात, उसके पीछे वास्तविक सचाई छुपी होती है। शायद इतना भर दिखा देना ही एक सार्थक कहानी का उद्देश्य है। यही हुआ है 'बेंत' कहानी में। एक बूढ़े आदमी को चिढ़ाने के लिए कहा गया वाक्य क्रमशः एक जीवन में परिणत हो गया। उसी तरह 'वर्षा' शीर्षक कहानी में एक धनी शहरी की आंखों में दो ताकतवर ग्रामवासियों के हाव-भाव सिर्फ गुंडागर्दी और खतरे के संकेत बनकर उभरे हैं। किंतु जब उनमें से एक व्यक्ति बारिश में भीगता हुआ अपना छाता साहब की सेवा में अर्पित करता है, उसका वास्तविक परिचय सहसा प्रकट हो जाता है और साहब की ``ांखें खुल जाती हैं। हर तरह से क्षमतावान, सुखी और भाग्यवान व्यक्ति अंदर से कितना असहाय होता है वह इस संग्रह की 'मधुबन का मेयर', 'वामन', 'मतंग', अतार्किक, तथा अन्यत्र 'सुंदरदास की खोज' आदि कहानियों में प्रस्फुटित हुआ है। कभी-कभी एक वास्तविक सच भी सपनों को ठेस पहुंचा सकती है। एक चार साल के बालक का अपने पिता पर निर्भर विश्वास, पिता का कुशल अभिनय देखकर किस तरह ढह जाता है यह 'कृपाण' कहानी में दिखाई देता है। उस नाटक के सोये हुए शिशु पर एक उन्मत्त पाशविक आक्रमण और अट्टहास के लिए दर्शकों की प्रशंसा अर्जित करने के साथ ही अभिनय और वास्तविकता को अलग न कर पाने वाले बच्चे के कोमल मन को उसके कृपाण के क्रूर आघात ने काटा है।

मनोज दास की कहानियों में कभी-कभार एक सरल बच्चा दिखाई देता है। उसके मन में असंख्य संशय और प्रश्न हैं। वह बड़ी-बड़ी आंखों से वयस्क जगत को ताकता रहता है। अपनी बुद्धि की सीमा-सरहद में वह जो कुछ समझता है उसी के मुताबिक आचरण करता है। 'लक्ष्मी का साहस' कहानी में एक सरल नन्हीं बच्ची का भगवान के साथ बतियाना और उनसे अनुमति ले दो केले लेकर चले जाना वयस्क समाज में चोरी मानी जाती है। लक्ष्मी के बीमार होने और फिर उसकी मृत्यु से उसे पकड़ाने वाले पुजारी ' पूरी तरह बदल जाता है। अगले जन्म में वह बिना जीभ के पैदा होने की प्रार्थना करता है। एक दूसरी कहानी में नौ से बारह साल का एक किशोर संगी-साथियों के बीच बैठकर संशित घटना का वर्णन अपनी भाषा में करता है। वह महज एक दर्शक बनकर ही रहता है। एक सरल निर्दोष किशोर कहीं पतंग बनाकर सबको मुग्ध करने के बाद घटना चक्र में फंसकर कैदी बन जाता है। कहीं वह भूत-कथा सुनाने बैठ जाता है। हर मनुष्य के अंदर

यह शिशु होता है और दुनिया का रहस्य समझने की कोशिश करता रहता है। मनोज दास की 'शिशु-दृष्टि' भी ऐसी ही है। सरल प्रश्न, जटिल जगत। कुछ जवाब मिलते हैं, कुछ अनुत्तरित रह जाते हैं।

इसके अलावा कहीं-कहीं आप मिलेंगे स्वप्नभंग की धारा से। उनके जीवन काल की दो मुख्य घटनाएं हैं द्वितीय विश्वयुद्ध और भारतवर्ष की स्वाधीनता प्राप्ति। उनकी पहली कहानी ' समुद्रर क्षुधा' में उत्तर बालेश्वर के परिवेश में इन्हीं दो घटनाओं के तुरंत बाद मनुष्य की असहायता का वर्णन है, युद्ध ने किस तरह मानव-मन की स्नेहशीलता और मानवता को चूसकर उसे एक भयावह छल और कपट के घेरे में धकेल दिया है। अब उसमें अन्याय का विरोध करने की क्षमता नहीं रह गई है। भारतवासियों के मन में उनकी स्वाधीनता ने जो स्वप्न दिखाए थे, चरित्रहीन शासक और स्वार्थी राजनीति के दबाव में वह कहीं दूर अदृश्य हो गए। इस संग्रह की 'भाई' कहानी में उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस तरह राजनीति का पतन हुआ है। अब वह क्षमता पाने का सिर्फ एक मार्ग बन गया है, इधर जनसाधारण भी राजनीतिज्ञों की खिंचाई करके तथा मजाक उड़ाकर ही अपने गण-तांत्रिक कर्तव्य का निर्वाह कर रहे हैं। अर्थ ही एकमात्र अन्यर्थ आयुध बन गया है। सच्चे देशप्रेमी को हटाकर तमाम देशद्रोही अर्थ के बल पर राजनीति कर रहे हैं। आधुनिक मूल्यबोध के संकट को लेकर उन्होंने अनेक कहानियां लिखी हैं। 'अपहृत टोपिर रहस्य', 'प्रत्यावर्तन', 'बाबा चक्रधारी वृतांत' और 'तिनोटि महार्घ भोट' में इस संकट को अधिक रेखांकित किए जाने पर भी, संग्रह की 'ऊंट', 'बेंत', 'स्टेच्यू', और 'कंक्युबाइन' कहानियों का संदेश मूल्यबोध पर आधारित है। परंतु स्वप्नभंग और मूल्यबोध के संकट उन्हें निराश नहीं कर पाए हैं। लेखक का आशावाद मनुष्य के असली रूप पर उनकी आस्था को अटल रखे हुए है।

आध्यात्मिकता उनकी कहानियों का एक अन्य मुख्य विभाव है। मनुष्य परिवर्तनशील है और किसी दिन एक पूर्णांग, महत्वपूर्ण जीवन का अधिकारी होगा, उसकी चेतना का रूपांतर होकर उसकी दृष्टि प्रसारित होगी और मूल्यबोध में व्यापक परिवर्तन होगा। मनुष्य विध्वंसात्मक मार्ग को, दुर्बुद्धि और छल को भुजंग के केंचुल की तरह त्यागकर एक नवकलेवर धारण करेगा। निकट भविष्य में भारत आध्यात्मिकता का केंद्र बनेगा। साधारण मनुष्य की सीमित आशा और आकांक्षा एक सीमित दायरे में होती है। उनकी 'सोना मेडल' नामक कहानी में एक नाटक के मुख्य अभिनेता की प्रबल आकांक्षा थी कि उसके अभिनय से मुग्ध होकर जमींदार उसे एक सोने का मेडल पहना देगा। उसके जीवन के अंतिम दिनों में जमींदार के गरीब उत्तराधिकारी के हाथ से अपने ही पैसों से गढ़ा होने का मेडल लेते समय उस गौरवमय क्षण ने बल्कि एक भिन्न अर्थ धारण कर लिया। नायक की इच्छा हुई कि वह जमींदार को ही मेडल पहना दे। यह कहानी इस संग्रह में नहीं है। इस संग्रह की 'स्टेच्यू' कहानी में एक गौरवहीन नेता के अपने अवहेलित 'स्टेच्यू' की ओर विघटनकारी

युवकों का ध्यान आकर्षित करने के दयनीय प्रयास में एक तुलनीय स्थिति दिखाई देती है। दूसरों के आगे बड़प्पन दिखाना एक नीच आकांक्षा है और अंतःचेतना में अपने जीवन की सार्थकता ढूंढने की अभिलाषा तथा दिव्यज्ञान के लिए उन्मुखता एक उच्चतर लक्ष्य है, इसी प्रसंग में जन्म-मृत्यु, जीवन जिज्ञासा, मनुष्य के मानस में कभी-कभी परोक्ष संकेत की मदद से खिल उठते हैं। आध्यात्मिक विषय को सीधे-सीधे कहा जाए तो वह उपदेश जैसा सुनाई देता है और कहानी को उबाऊ बना देता है। मनोज दास ने वैसा उपदेश कभी नहीं दिया। इसके अलावा कभी-कभी अनिर्वचनीय रहस्यवाद भी उनकी कहानियों में दिखाई देता है। उसकी वास्तविकता तर्कवाद की सीमा में नहीं मिलेगी, न ही दार्शनिक दिशा ही उसमें प्रतिफलित होती है। इस संग्रह की 'भूतनी, एक विदाई', 'लोहित गोधूलि', 'चांद और हवा की शाम' ऐसे रहस्यवाद के उदाहरण हैं। भूत-प्रेत और लोकोत्तर विषयादि के संस्कारों की सत्यता पर विचार अथवा उनका मूल्यांकन न करके लेखक ने अपनी बात संपूर्ण मानवीय बनाकर प्रस्तुत की है जो प्रश्न अनसुलझे रह गए हैं, वे युग-युग तक उसी तरह रहेंगे।

पारंपरिक रीति से आधुनिक कहानी की बात पहले कह चुका हूं। कोई-कोई मनोज दास को आधुनिक युग का विष्णु शर्मा कहते हैं, लेकिन लोक-कथा, परी-कथा और कल्पना विलास के अन्य उदाहरण भी मनोज दास की कहानियों में कम नहीं है। जीव जगत के पात्रों को लेकर 'अपहृत टोपिर रहस्य', 'बाबुलपुर र षंड', 'बिलेई', 'सारूगछ मूळे', 'आकाश कइंच', आदि कहानियों में अपनी अपूर्व वाक्रीति से उन्होंने पाठकों का मनोरंजन किया है। यह संग्रह ओड़िया और भारतीय कथा-साहित्य की अमूल्य निधि बनकर रहेगा।

मनोज दास की कहानियों में समाधान की तलाश की अपेक्षा समन्वय की प्रधानता अधिक है। हालांकि उनका यह संग्रह उनकी अब तक लिखी गई कहानियों का सफल प्रतिनिधित्व करता है, पर यह उनकी कहानियों के विस्तृत आकाश का एक टुकड़ा भर है। फिर भी इन कहानियों में समसामयिक जीवन और समाज के साथ-साथ विश्वमानव की जीवन-जिज्ञासा लेखक की अपनी शैली में प्रतिबिंबित हुई है और यह संग्रह मनोज दास के रसिक पाठकों के लिए निश्चय ही उपयोगी होगा। भारत के दूसरे अंचलों एवं विदेशी पाठकों के लिए इसमें मनोज दास की बहुमुखी प्रतिभा का प्रतिबिंब समाहित है। अब मैं इस भूमिका को लेकर मनोज दास की अपूर्व सृष्टि और पाठकों के बीच बाधक नहीं बनूंगा। कहानियां पढ़कर रसास्वादन करें और आनंद प्राप्त करें। मनोज दास चिरकाल तक अपने पाठकों की धरोहर बने रहेंगे।

–चौधुरी हेमकांत मिश्र

अजमेर,
19 जुलाई, 1992

लक्ष्मी का साहस

जब कसबे की कुछ ऊंची-ऊंची भवन-पंक्तियों, वृक्ष-लताओं और रास्तों को दुपहरी अपने वश में कर लेती है और बस्ती का माहौल लगभग विगत युग के मास्टर साहब के आविर्भाव से मुखरित पाठशाला के शांत हो जाने-सा हो जाता है, तब मंदिर के दक्षिण में खड़े गुलमोहर की ओट से झांकती है लक्ष्मी। बड़ी इच्छा है उसकी एक बार मंदिर के प्रांगण में घुसने की। पर बहुत डर लगता है बूढ़े पुजारी से। वे पंडित हैं, इसलिए देखते ही पूछ लेंगे मौखिक गणित, या किसी तात्पर्यपूर्ण साधु-शब्द का अर्थ। इन सबसे अधिक, भगवान के निजी व्यक्ति के रूप में मंदिर के आस-पास से बच्चों को खदेड़ना भी उनका कर्तव्य है।

कई दुपहरियों के बाद आज पुजारी जी सो रहे हैं। खर्राटे भी भर रहे हैं। लक्ष्मी खूब सावधानी से उन्हें पार कर गई। उसके बाद अंदर घुसकर सीधे भगवान के सामने जाकर बैठ गई और उन्हें मत्था टेका। दो मिनट तक मुग्ध मधुर नयनों से मूर्ति और उसकी वेश-भूषा देखने के बाद बोली–

मुझे पहचान रहे हो ना ? मैं लक्ष्मी हूं। ओह भगवान ! एक महीने से तुम्हारे पास आने की रोजाना कोशिश करती रही; लेकिन पंडितजी रास्ता रोके बैठे रहते थे। आज बुढ़ऊ सो रहे हैं। हे भगवान, क्या पंडितजी रात को भी इसी तरह खर्राटे भरते हैं ? तुम्हें नींद कैसे आती है, प्रभु ? हि-हि ! हमारे स्कूल के पंडित जी (मास्टर साहब) भी इसी तरह खर्राटे भरते हैं। अच्छा प्रभु, ये पंडित लोग खर्राटे क्यों भरते हैं ? यदि मैं खर्राटे लेना सीख जाऊं तो क्या मैं पंडित बन सकती हूं ? नहीं नहीं प्रभु, तुम झटपट कोई ऐसा वरदान मत दे बैठना; भले ही पंडित न बनूं, मैं खर्राटे नहीं भरना चाहती।

हां, एक वरदान भी मागूंगी, पर बाद में। अच्छा, महीने भर पहले रात के सपने में तुमने मुझसे क्या कहा था–तुम्हारे साथ खेलती क्यों नहीं, तुम्हें भूल गई हूं–शायद ऐसा ही कुछ कहा था, है ना ? उसके दूसरे ही दिन से तुम्हारे पास आने की कोशिश कर रही थी–नहीं आ पाई।

अरे बाप रे ! तुम्हें यह केले का घौंद किसने दिया है ? ऊपर के इतने सारे एक साथ पक गए। तुम खाओगे कैसे ? सावधान भगवान, सारा एक साथ मत

खा जाना—तबीयत खराब हो जाएगी। एक, दो, तीन, चार, पांच...चौबीस पके हैं। तुम रोजाना दो...चलो अच्छा, चार-चार करके खाना। ठीक है ? इस तरह चौबीस खाने में चार दिन, या पांच दिन—यही तो मुश्किल है, प्रभु ! मुझे गणित बिल्कुल नहीं आती। हां, एक बात कह रही थी—तुम एक जादू क्यों नहीं कर देते ? एक दिन रात में जब सभी लोग सोए हों, तभी तुम कुछ ऐसा कर देते कि सुबह उठने पर सभी गणित भूल गए हों...मतलब, सिर्फ गणित बनाना भूल जाने की बात मैं नहीं कह रही, बल्कि गणित भी एक विषय है, यह बात ही सभी भूल जाएं।

नहीं नहीं, तुम तुरंत वरदान मत दे बैठना, भगवान ! हो सकता है गणित में कोई अच्छा गुण भी हो, यह समझने की उम्र मेरी न हुई हो... है ना ?

हां, यदि वरदान देना हो प्रभु तो यह वरदान दो कि लोग बिना शोर-शराबे के तुम्हारी पूजा करें। उस दिन रात के अंतिम प्रहर में सपने में तुम क्या कह रहे थे—उसी वक्त मेरी नींद खुल गई। क्योंकि तुम्हारे मंदिर के चोंगे में भजन बज उठा। चोंगा तो अच्छी चीज है; किंतु यह जो चोंगा लगाकर इतना चिल्ला-चिल्लाकर गीत गाते हैं, क्या यह अच्छी बात है, भगवान ? हमारे घर के पिछवाड़े में एक और इमारत है। वहां एक दूसरे धर्म के लोग जाते हैं। वहां चोंगा लगाकर वे लोग भगवान को पुकारते हैं। कहो तो इतना गर्जन करके तुम्हारी प्रार्थना न बोलने पर क्या तुम सुन नहीं पाते ? मैंने उस दिन मां से पूछा, बताओ तो मां, ध्रुव, प्रह्लाद क्या चोंगा लगाकर भगवान का गुण बखानते थे ? मां ने सोच-समझकर मना किया। मां तो हमेशा सही बातें कहती है, है ना ? इसके अलावा मैं तो कितने धीरे-धीरे तुमसे बातें कर रही हूं—पर तुम तो अच्छी तरह सुन रहे हो।

किंतु भगवान, यदि मैं गलत कह रही हूं, तो तुम कुछ अलग अर्थ मत लगा लेना। तुम्हें यदि जोर-जोर से बुलवाना ही अच्छा लगता हो तो मेरी बात पर चोंगा हटवाने की जरूरत नहीं। सच-सच बताऊं ? मैं बहुत डरपोक हूं। चीत्कार सुनते ही सहसा मेरे भीतर घबराहट शुरू हो जाती है, और शायद मेरे बप्पा भी मेरी ही तरह हैं। उस दिन बेचारे को बुखार था। किसी त्यौहार पर पड़ोसी के घर सारा दिन चोगा बजता रहता। बप्पा को कितनी घबराहट हुई थी। मेरा हाथ पकड़कर बार-बार अपने कान बंद करते थे। बप्पा को और मुझे, तुम जरा और साहसी बना दो भगवान !

अच्छा भगवान, बप्पा के लिए कुछ रुपयों का इंतजाम नहीं करा सकते, उस दिन मैंने बप्पा को कहा, मुझे एक फ्रॉक चाहिए। बप्पा ने मां से कहा—मेरी बिटिया कभी कुछ नहीं मांगती—आज मैं उसे जरूर फ्रॉक खरीद दूंगा।

मां कभी कहीं नहीं जाती। बहुत दिनों के बाद उस दिन वह मुझे लेकर बप्पा के साथ निकली—मेरे लिए फ्रॉक खरीदने और थोड़ा-सा घूम आयेगी। भगवान ! हमलोग घर से निकले ही थे कि एक लंबा-चौड़ा, हट्टा-कट्टा, बड़ी-बड़ी मूंछों वाला

आदमी आ धमका। बप्पा जितने भी रुपए लेकर निकला था, एक लंबी सांस छोड़ते हुए उसे दे दिया। बात यह थी कि बप्पा ने कुछ रुपए कर्ज लिए थे। सात-सात दिन बाद वह आदमी एक लाठी लेकर आता है और ब्याज ले जाता है। बप्पा कहता था, उस आदमी ने जितने रुपए दिए थे, उससे डेढ़ गुना ब्याज ले जा चुका है। कहो तो, क्या उसे उतने से ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए।

छोड़ो ! हां, मैंने बप्पा से कह दिया है, बप्पा, यदि तुम इसके बाद फिर कभी कर्ज लेना तो कोई ठिगना आदमी देखकर—जिसकी मूंछें और लाठी कुछ छोटी हों।

चलो छोड़ो। बहरहाल, उस आदमी द्वारा सारे रुपए ले जाने के कारण हम उस दिन फिर बाजार नहीं गए। मैंने मां से कहा, मां ! तुम्हारी एक पुरानी रंगीन साड़ी न जाने कब से बक्से में पड़ी हुई है। तुम उसे कभी पहनती ही नहीं। मतलब यह है कि तुम खुद ही उस साड़ी को काटकर मेरे लिए एक फ्रॉक बना दो, मैं यही चाहती हूं। मुझे बाजार का फ्रॉक नहीं चाहिए।

तुम तो जानते ही होगे भगवान, मैंने मां से बस यही झूठ कहा था। असल में टोले की दुकान में मैंने एक रंगीन फ्रॉक देखी थी, और उसे पहनने को मन हुआ था।

मां उसी दिन शाम को मेरे लिए अपनी साड़ी का फ्रॉक बनाने बैठ गई। किंतु मैंने देखा, वह रो रही है। मां को आज तक मैंने सिर्फ एक बार रोते देखा है—जब बप्पा को बुखार था, वही भयंकर आदमी ब्याज लेने आ पहुंचा और दरवाजे पर लाठी ठकठकाने लगा। मां ने दरवाजा खोलते हुए कहा, वे बाहर गए हैं, सात दिन बाद लौटेंगे। बाद में मैंने मां से धीरे-धीरे कहा था, 'मां ! तुम तो कहा करती हो कि झूठ बोलना बुरी बात है—फिर तुमने क्यों कहा ?' मां ने कहा, 'झूठ बोलना वाकई बुरी बात है। अभाव-असुविधा में पड़कर मैंने गलत काम किया है।' उसके बाद मां मुझे गोद में लेकर बोली, 'लेकिन तू मुझसे अच्छी इंसान बनना ! अभाव-असुविधा में पड़कर भी झूठ मत बोलना।'

भगवान, थोड़ी देर बाद मैंने देखा, मां छुपा-छुपाकर रो रही थी। उस क्षण मैंने क्या सोचा जानते हो ? मेरी मां ने झूठ भले ही कहा था, पर वह झूठी नहीं है। सारी दुनिया झूठी हो सकती है, पर वह नहीं। वह तो सारी दुनिया से परे है।

और भगवान, मैंने मां से फ्रॉक के बारे में जो झूठी बात कही थी, वह भी झूठ कहने के उद्देश्य से नहीं। तुम तो यह बात निश्चय ही समझते हो, है ना ? फिर भी यदि मुझसे गलती हो गई हो तो माफ कर देना, और मां को भी। कर दोगे ना ? बस, मैं जानती हूं तुम जरूर कर दोगे। तुम कितने अच्छे हो, भगवान !

लेकिन भगवान, यदि बप्पा के लिए रुपए का इंतजाम कराने में तुम्हें दिक्कत हो तो कुछ करवाने की जरूरत नहीं।

चलो छोड़ो भगवान, मैं तुमसे बहुत बातें बता चुकी। किंतु असली बात तो अभी कही ही नहीं। मैं कितनी बुद्धू हूं, उस दिन सपने में तुमको देखा, कितनी खुश हुई; तुमने क्या कहा समझ नहीं पाई। तुम दुबारा—अपनी सुविधा देखकर—मेरे सपने में आकर बताना—बस यही वरदान मांग रही हूं। और यदि तुम पंडितजी को दोपहर में इसी तरह थोड़ा-थोड़ा सुला दिया करो, तो मैं बड़ी आसानी से आ सकती हूं।

हे भगवान ! पंडितजी के खर्राटे अब सुनाई नहीं दे रहे ? शायद उठ गए। तो फिर आज चलती हूं। हां—तुम सारे केले एक ही बार में मत खा लेना ! याद रहेगा ना ! मैं भी ले लूं दो ? पर क्यों ? नहीं, नहीं। क्या कहा, लेना ही होगा ? चलो ठीक है, ले लेती हूं—

लक्ष्मी ने दो केले तोड़ लिए और भगवान को प्रणाम करके दरवाजे तक गई।

बाहर दिन का तेज प्रकाश था। क्षण भर को उसे समय का ज्ञान नहीं रह गया था, भूल गई थी कि दिन है या रात।

सहसा एक प्रचंड स्वर से वह चौंक उठी—'दिन-दहाड़े भगवान के पास से चोरी, इतना दुस्साहस ?'

उसकी ओर दौड़े चले आ रहे थे पंडितजी। पल भर के लिए लक्ष्मी कठपुतली बनी स्तब्ध खड़ी रही। उसके बाद दौड़ने लगी।

पंडितजी भी दौड़े।

लक्ष्मी तालाब में खड़ी है। कमर तक पानी। सीने से लगाए हुए है दोनों केले।

'चल निकल तालाब से।' पंडितजी चिल्लाए, 'बाहर आ जा'—दूसरे लोग भी चिल्लाए। बड़ी-बड़ी आंखें किए लक्ष्मी सबकी ओर ताक भर रही थी।

उसके बाद भीड़ को धकेलते हुए तालाब की ओर जा पहुंचे लक्ष्मी के बप्पा। उन्हें देखते ही लक्ष्मी रो पड़ी। वे पानी में घुसकर उसे गोद में लेकर बाहर चले आए।

जनता बोली, 'आ हा हा ! कितनी गुणवान कन्या है !'

'बात दो केलों की नहीं है, बात है लड़की के चरित्र की !'

'दिन-दुपहरी में इतना साहस !'

'बाप रे !'

लक्ष्मी के हाथ से केले लेकर बप्पा ने पंडितजी को पकड़ा दिया और बिना कुछ बोले बिटिया को कंधे पर बिठाकर धीरे-धीरे घर लौट आए।

लक्ष्मी एक शब्द भी नहीं बोली। शाम को खूब जोरों से बुखार चढ़ा। तीन दिनों बाद वह चल बसी।

रविवार शाम को साप्ताहिक पुराण-पाठ की भीड़ में सबके मुंह पर देवता

की प्रशंसा थी। जिस देवता को वे लोग खिला-पिलाकर रखे हुए हैं, वाकई वे कितने प्रत्यक्ष हैं ! उनके सिंहासन के पास से उनका आहार चोरी करके कोई बच नहीं सकता, इसका प्रमाण उन्होंने दिखा दिया।

इस बातचीत में भाग लेने वाले मंदिर पुनर्निर्माण के समय संगृहीत चंदे में से प्रचुर मात्रा में हजम करने वाले स्थानीय नेता और मंदिर के विभिन्न विभागों से क्रमशः चोरी करने वाले दो सेवक लक्ष्मी के साथ जो कुछ हुआ उससे रोमांचित होने के साथ ही भगवान ने उनकी चोरी पकड़ी है या नहीं और यदि पकड़ ली है तो किस कारण अब तक बदला नहीं लिया है, यह सोच-सोचकर परेशान थे। फलस्वरूप भगवान की काफी प्रशंसा कर रहे थे वे लोग और आशा करते थे कि भगवान वह सब सुन रहे होंगे।

उदास हो चुपचाप एकाकी बैठे थे पुजारी-पंडित जी। देवता की प्रत्यक्षता से प्रभावित हो समवेत भक्तगण जब जय-जयकार करने लगे, तब सहसा पंडितजी को ऐसा लगा मानो उसी क्षण देवता की आभा सिंहासन त्यागकर चली गई—पड़ा रहा सिर्फ एक दीप्तिहीन, अर्थहीन रूप।

'यह क्या पंडितजी ! आपका बदन तो तप रहा है !' एक सेवक ने उन्हें छूते हुए कहा।

जीवन के बचे हुए चंद दिनों में पंडितजी ने चुपचाप बस यही प्रार्थना की थी, 'प्रभु ! अगले जन्म में इस पापी का जन्म बिना जीभ के ही हो !'

पतंग

'थमो मत !' स्टीम रोलर के गर्जन के बराबर स्वर में हवलदार ने हुकम दिया।

कुंज ने निगाह लौटा ली नारियल के पेड़ पर से। फिर से चलने के पहले हवलदार की ओर देखकर कुछ मुस्कुरा दिया। हवलदार भी मुस्कुराया। कुंज को जेल के सभी कर्मचारी चाहते हैं। सात वर्ष के क़ैदी-जीवन में उसने कभी किसी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।

कुंज अन्य कैदियों के साथ-साथ चलने लगा। किंतु पीछे मुड़कर उसने कई बार देखा पेड़ के सबसे ऊंचे छोर की ओर।

शहर के भीतर नारियल का पेड़-एकाकी। सबसे ऊपर उलझी हुई है एक पतंग। शहर के नामर्द लाल-नीले हल्के पतंगों में से नहीं है। शायद कसबे के किसी गांव से उड़कर आई है—बड़ी, चौकोर, शर्मीली पतंग।

जेल की ओर जाते समय मोड़ से पहले अंतिम बार नारियल के पेड़ को देखने पर कुंज के कदम फिर से रुकने लगे थे।

'स्ट्रेट चलो यार !' हवलदार का तमाचा जड़ गया उसके गाल पर। उस तमाचे में दंड है, स्नेह का छलावा भी है, इसलिए विरोध करना असंगत है। कैदियों को बिना बेड़ियां पहनाए कार्यक्षेत्र तक लाया जाता है और वापस ले जाया जाता है। उनके लिए जेल कर्मचारियों की इस आस्था को ठेस पहुंचाने-सा व्यवहार अकृतज्ञता के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। कुंज यह जानता था, जिस तरह जानते थे उसके अन्य सभी साथी।

रात भर कंबल पर लेटा छटपटाता रहा कुंज। नींद और स्मृतिदहन की हालत में अतीत की पतंगमय दुपहरी और गोधूलि, सबके एक-एक क्षण से मिला था उसे स्फूर्तिपूर्ण जीवन।

अपने गांव में पतंग उड़ाने में धुरंधर था कुंज। बाप के मरने के बाद उस पर नियंत्रण रखने वाला कोई नहीं था। इसलिए पाठशाला से डुबकी लगाकर सारी दुपहरी गांव के बाहर वाले खुले मैदान में दौड़-दौड़कर उसने पतंग उड़ाई है।

एक दिग्विजयी पतंग बनाने के सपने से कभी वह उन्मत्त हुआ था। मां के संदूक से चुराकर, फिर एक गुणमुग्ध ग्रामीण बालक से उधार लेकर, कुल मिलाकर

आठ आने इकट्ठा करके उसने सात मील दूर के बड़े हाट से उपयुक्त धागा खरीदा था। पक्का बांस चीरकर फ्रेम बनाया था। दो घंटे तक साहूकारिन का पैर दबाने के बाद अंजुली भर मैदा अर्जित किया था और उससे गाढ़ी लेई बनाई थी। महाजन की सबसे छोटी ग्यारहवीं संतान को घने जंगल से बेर ला-लाकर देने के बाद उससे चार साप्ताहिक अखबार प्राप्त किए थे।

पंद्रह दिनों की लगातार साधना के बाद अंततः सूखे ताड़ के पत्ते से युक्त उसकी संगीतमय अतिकाय पतंग बनकर तैयार हुई।

उसके बाद खुले मैदान में गांव के विमोहित बालक-बालिकाओं के बीच खड़े होकर उसने उड़ाया था अपने सपने और उत्साह का वह प्रतीक।

भांय-भांय शोर करती, पूंछ हिलाती, सरसराकर ऊपर उड़ गई पतंग। वह शोर था कुंज के हृदय की उत्तेजना की ही प्रतिध्वनि। अपनी कृति की उस घोषणामय, सुदूर ऊर्ध्वगति में कुंज ने अपने स्रष्टा व्यक्तित्व का ही अहसास किया था। धीरे-धीरे धागा छोड़ते हुए, फिर बार-बार धागे को खींचते हुए, झुंड के झुंड बादलों में कूद पड़ने को आतुर उस बलवान, उड़ते अहंकार को वश में रखने के मद में डूबा हुआ था कुंज।

मैदान में घुसा चला आ रहा था भैंसों का एक झुंड। उन्हें रास्ता देने के लिए कुंज गांव की ओर जरा-सा खिसक गया था। पतंग का क्या भरोसा। सहसा एक झोंके में नीचे की ओर आई और महाजन के बगीचे में खड़े विशाल बरगद के सबसे ऊपर वाली डाल पर उलझ गई वह विशालकाय पतंग। गर्जन बंद हो गया अचानक।

कुंज दौड़कर जा घुसा महाजन के बगीचे में। कोलाहल करते हुए उसके पीछे दौड़ गया बच्चों का झुंड।

झटपट आ पहुंचे महाजन। अपेक्षाकृत गोपनीय रूप से रोपे हुए अफीम के पौधे कुचल डाले थे बच्चों ने।

सबको खदेड़ दिया गया। सारा धागा जब्त कर लिया गया। कोलाहल मुरझा गया। मैदान में खड़े वे लोग देखते रहे बरगद के छोर पर छटपटाती बंदी उस पतंग को—अंधेरा होने तक।

अंधेरा होने तक कुंज अपनी आंखों में आंसू रोके रहा।

किंतु उसने अपनी मानसिक दृढ़ता के ताप से जल्द ही आंसू सुखा लिए थे। मृदु ज्योत्स्नामय मध्यरात्रि में वह महाजन के बगीचे में घुस गया—चढ़ गया बरगद के पेड़ पर लगभग आधी दूरी तक। इतनें में महाजन का कुत्ता भौंक उठा। कुंज नहीं जानता था कि कई वर्षों से महाजन निद्राविहीन रातें बिता रहे थे। एक हाथ में टार्च और दूसरे में एक नली वाली बंदूक लिए वे कुत्ते के पीछे-पीछे पेड़ के नीचे दौड़कर आए।

कुत्ता अधकटी पूंछ हिलाता नीचे कूद रहा था। बंदूक हिलाकर कूदने लगे महाजन। कुछ ही देर में नौकर-चाकर आकर इकट्ठे हो गए वहां आधी रात को। धीरे-धीरे गांव के लोग भी।

'अराजकता है, अराजकता !' महाजन ने कहा। सभी उनसे सहमत थे। कुंज के नीचे उतरते ही उसे पेड़ से बांध दिया गया। 'उड़ा दूंगा', महाजन ने बंदूक उठाते हुए कहा। किसी ने कोई राय नहीं दी।

कुंज की मां को खबर लगते ही वह बावली-सी दौड़ी चली आई और महाजन के पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगी। कुंज छूट गया।

उसके बाद कुंज ने पतंग नहीं उड़ाई। दूसरे साल शहर आकर वह मजदूर बन गया। साल में एक बार गांव आता है।

शहर में होने के दौरान उसे खबर मिली कि महाजन ने उसकी मां को बड़ी बेरहमी से पीटा है, अपमानित किया है। कहते हैं कि जब मां ने उनसे कुछ रुपए कर्ज लिए थे तब अपनी छोटी-सी जमीन का टुकड़ा हस्तांतरित करने का वचन दिया था—बाद में वचन पूरा न कर सकी, इसलिए महाजन ने दंड दिया है।

इस बीच देश स्वाधीन हुआ। गांव में पंचायत बनी। महाजन की भी काफी उम्र हो गई थी। पर उसका स्वभाव नहीं बदला था।

जब कुंज गांव पहुंचा, उस वक्त दुपहर थी। उसने घर पर सामान रखा। तेल लगाकर नदी में नहाने निकल पड़ा। रास्ते में गांव के एकाध लोगों से सुना किस-किस तरह से महाजन ने उसकी मां को यातनाएं दी थीं।

नदी के पास शिवजी का मंदिर है। उसी के अहाते में उस वक्त पंचायत बैठकर कुंज की मां की दुर्नीति-अभियोग पर विचार-विमर्श कर रही थी। नदी में इत्मीनान से नहा-धोकर कुंज मंदिर में घुसा। घुसते समय उसने एक लोहे का सरिया उठा लिया था। पंचायत सभा के बीच खड़े होकर महाजन बड़े उत्तेजित स्वर में कहता जा रहा था। कुंज ने बिना कुछ कहे उसके सिर पर उस सरिया से प्रहार किया। वज्राहत-से बैठे रहे सभी।

यथाविधि जांच हुई। महाजन का अंतिम संस्कार हुआ और कुंज को यथाविधि गिरफ्तार करके जेल ले जाया गया।

बाद में कुंज ने सुना, महाजन को सरिया मारने से पहले महाजन ने यह कहा था, 'स्वयं महादेव जानते हैं, मैंने कुंज-की मां को उंगली तक नहीं लगाई है। यदि मैं झूठ कह रहा हूं तो इसी क्षण मेरा सिर फटकर दो फाड़ हो जाएगा।'

लोगों ने कहा, महाजन की इतनी प्रचंड झूठ हजम करने की शक्ति महादेव में नहीं थी। लेकिन कानून ने यह स्पष्टीकरण नहीं माना। कुंज को लंबी सजा हुई। हालांकि छुट्टियां कटकर, उत्तम आचरण के कारण कुछ रियायत मिलने के बाद अब केवल एक ही वर्ष बचा है।

'क्या बात है भई, क्या रात को नींद नहीं आई ? हम जेलर साहब से कहेंगे वे आज तुम्हें छुट्टी दे देंगे।' साथी कैदियों ने सुबह कहा। किंतु कुंज ने कोई जवाब नहीं दिया।

उस दिन काम से लौटते वक्त आकाश में बादल घिर आए थे। बीच-बीच में ठंडी हवा बह रही थी।

शहर के एकाकी नारियल पेड़ की छोर पर अब तक पतंग लटकी हुई है।

कुंज खड़ा हो गया। हवलदार बीड़ी सुलगाते हुए आगे बढ़ गया था। अचानक उसे कुंज के पीछे रह जाने की याद आई। उसने वापस आकर उसे एक धक्का लगाया।

हवा के एक तेज झोंके से पतंग पेड़ से निकल गई। आधा आकाश रक्तिम था; आधे में बादल छाए हुए थे। उसी चित्रित पृष्ठभूमि में वह पतंग दूर-दूर उड़ने लगी।

कुंज ने सहसा दौड़ना शुरू कर दिया। गाड़ी-घोड़ों को नजरअंदाज कर, हवलदार की कड़ी आवाज न मान, राहगीरों की भीड़-भड़क्का पार करता चला जा रहा था।

उसकी निगाह ऊपर थी। पतंग धीरे-धीरे नीचे की ओर आ रही थी। एक मंथर, हृदय विदारक पतन था वह; मानो उस पतन को रोकना ही कुंज का व्रत था। वह दौड़ता चला जा रहा था। यदि पतंग विलीन हो जाए दिगंत में, वह भी वहीं जाकर विलीन हो जाएगा। बाकी सब कुछ तुच्छ है; एकमात्र सत्य है पतंग और वह स्वयं।

पीछे से ह्वीसिल सुनाई दे रही है। लगातार 'रुक, रुक' का हो-हल्ला। शहर के बाहर रेल की पटरियां हैं। ट्रेन दौड़ी चली आ रही है। कुंज बाल-बाल बच गया। पीछे दौड़ रहे लोग थम गए।

रक्ताभ आकाश क्रमशः धूमाभ्र हो चला है। अब बस्ती, मैदान और जंगल-झाड़ियां हैं। दो मील के बाद समुद्र। पतंग निश्चित ही खो गई है सामुद्रिक क्षितिज की प्रशांत व्याप्ति में।

कुंज घुस गया लहरों में। उसकी आंखें अब भी टिकी थीं आकाश में। उसे पानी के स्पर्श का अहसास नहीं। उसे लगा उसने उड़ना शुरू कर दिया है।

जीप आकर रुक गई लहरों को छूकर। जल-विस्तार की ओर अंगुलियां दिखा दीं दो विस्मित मछुआरों ने। जिसमें शाम के धुंधलके के विशाल रहस्य हैं; जहां सागर-संगीत उदात्त और उदार हैं।

पुलिस अधिकारी ने बंदूक उठाया।

'यदि आप वाकई फायर करना चाहते हैं सर, तो बैरल ऊपर करके कीजिए।'—हवलदार ने निवेदन करते हुए आहिस्ता से कहा।

क्षितिज के घने बादलों में बिजली कौंध गई। घड़घड़ाहट सुनाई दी। मानो

समुद्र सहसा और गंभीर हो उठा था।

अतार्किक रूप से खुद ही खुद को बहुत छोटा समझने लगे जेलर साहब और पुलिस अधिकारी। ऐसा लग रहा था जैसे कि विशाल समुद्र, क्षितिज, बिजली और गड़गड़ाहट भगोड़े कुंज के अति आत्मीय हों।

मधुबन का मेयर

आसमान इतना नीला है—नक्षत्र इतना भास्वर पर अंतरंग है—नाव में बैठे ऐसा अनुभव करते हुए दिव्यसिंह बाबू चौंक उठे।

नाव बहती चली जा रही है। ठंडी-ठंडी हवा में दिव्यसिंह बाबू का मन शांत होने लगा है। सिर से, सीने से ढेरों यंत्रणाएं, उत्कंठा और क्षोभ मानो रुई की तरह उड़ते जा रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे कि अंधेरे में वे सब समाते न गए होते तो वे उन्हें देख सकते थे।

क्या वक्त हुआ होगा ? आदतन उन्होंने अपनी कलाई देखी। वे भूल गए थे कि घड़ी भी खोलकर उन्होंने ट्राउजर की जेब में रख दी थी।

भोर होने में निश्चित ही ज्यादा देर नहीं थी। मधुवन नगरी के लोग क्या सोचते होंगे ? दिव्यसिंह बाबू हंस पड़े। बहुक्रंदन के बाद वह हंसी कितनी मधुर, कितना एकांत थी।

हंसे थे वे बारह घंटे पहले, नगर निगम की बैठक में। लेकिन इस हंसी और उस हंसी में जमीन-आसमान का फर्क था। घंटों आंसू बहने के कारण उस पुरानी हंसी का अंदाज धुल गया था।

उत्तर प्रौढ़ जीवन में न होकर काश, आज की रात का अनुभव तीस साल पहले हो गया होता तो शायद जिंदगी भर दूसरों से लड़कर 'जिसका बल उसी का गौरव' की नीति पर आज वे प्रख्यात न हुए होते। भले ही वे मधुवन नगरी के मेयर न बने होते, पर उनकी जीवन धारा हुई होती एक धनवान और बुद्धिमान की।

बारह घंटे पहले वे तब हंसे थे जब वृद्ध सुदर्शन बाबू बैठक में अपनी बात कहते-कहते रो पड़े थे। हालांकि हंसते समय उन्होंने रुमाल से मुंह ढंक लिया था। और वे चकित भी हो रहे थे, क्या सुदर्शन बाबू का दिमाग कुछ फिर गया है ? वरना उन जैसा एक अवकाश प्राप्त समर्थ अध्यापक भला इतनी-सी बात पर रो पड़ेंगे ? हालांकि मेयर के चुनाव में दिव्यसिंह बाबू से अपनी पराजय को लेकर उन्हें काफी धक्का लगा था। कभी दिव्यसिंह बाबू उनके छात्र थे। वृद्ध के कष्ट की शायद यही खास वजह थी, जबकि दिव्यसिंह बाबू ने एक-दो मित्रों के जरिए कई बार यह कहलवाकर उनका कष्ट दूर करने की कोशिश की थी कि पुत्र से

पिता की पराजय, शिष्य से गुरु की पराजय, विजय का ही नामांतर मात्र है, लेकिन सुदर्शन बाबू ने तपाक से जवाब दिया, 'यह महान वाणी विद्या या ज्ञान में विजय-पराजय के लिए लागू है, रिश्वत, झूठ, धोखाधड़ी भरे चुनाव में विजय-पराजय के लिए उसका प्रयोग मूर्खता है'।

कल सुदर्शन बाबू ने नगर निगम की बैठक में जिस विषय पर भाषण दिया था, वह दिव्यासिंह बाबू को बड़ा विचित्र लग रहा था। सुदर्शन बाबू शहर में गाय-बैलों के उपद्रव के बारे में ऐसी भाषा में कह रहे थे मानो वे मधुवन नगरी पर नाजी आक्रमण का वर्णन कर रहे हों ! खासकर एक गाय जो अब तक काफी प्रसिद्ध हो चुकी थी—उसी के उपद्रव की शिकायत करते-करते सुदर्शन बाबू रो पड़े थे। ऐसा नहीं था कि वह गाय सिर्फ चोरी करने में ही धुरंधर थी, उसका भाषा-ज्ञान भी इतना तेज था कि उसके सुनने में यदि किसी ने उसे चोरनी कह दिया तो फिर उसकी खैर नहीं। 'चो...' कहते ही वह अपनी जंगली आंखें चढ़ाकर सींगों को तैयार करके देखेगी। शब्द पूरा होते-ही वह बोलने वाले पर धावा बोल देगी।

सुदर्शन बाबू की लाडली नतनी की बी.ए. की परीक्षाएं चल रही थीं। उस लड़की ने मनोविज्ञान ऑनर्स क्लास में अध्यापक के मुंह से निकली समस्त वाणियां तथा प्रैक्टिकल के पाठ दो नोट-बुकों में संचित करके रखा था। दोपहर को पढ़ते-पढ़ते उसे झपकी आ गई। जब आंखें खुलीं वह चोरनी गाय फाटक से बाहर जा रही थी। एक खाता के साथ उसकी जिल्द भी साफ, दूसरे के आधे खाए जिल्द का टुकड़ा लॉन पर पड़ा मिला।

नतनी की ट्रेजेडी से विचलित सुदर्शन बाबू नगर निगम की उस बैठक में रो पड़े थे।

शायद सुदर्शन बाबू ने उनकी हंसी देख ली होगी और दुःखित हुए होंगे, यह सोचकर अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए बैठक खत्म होते ही दिव्यसिंह बाबू तुरंत वृद्ध सुदर्शन बाबू के पास जाकर बोले, 'सर, बुरा मत मानिएगा, आपके क्षोभ की मात्रा कुछ अधिक हो गई थी।'

सुदर्शन बाबू ने पैनी निगाह से देखते हुए कहा, 'कैसे ?'

दिव्यसिंह बोले, 'सर ! गाय तो युग-युग से पशु है।'

सुदर्शन बाबू बोले, 'मैं नहीं समझता कि मैंने उस बारे में कोई संशय प्रकट की है। मैं तो बस इतना जानना चाहता हूं कि इस युग-युग के पशु के चंगुल से नगर निगम हमें बचाएगा या नहीं।'

दिव्यसिंह बोले, 'सर ! गाय का कागज के कुछ पन्ने चबा जाना कोई उतनी बड़ी ट्रेजेडी नहीं है।'

सुदर्शन बाबू कुछ देर तक हतप्रभ रहने के बाद बोले, 'क्या कहा ! बच्ची के दो वर्ष के नोट्स—वे भी किसी और विषय के नहीं मनोविज्ञान के—दिन-दहाड़े

वह भी इतने बड़े नगर-निगम वाले शहर में पलक झपकते एक गाय चबाकर खा जाए, यह ट्रेजेडी नहीं तो क्या है ?'

दिव्यसिंह बाबू पुनः हंस पड़े।

सुदर्शन बाबू ने लंबी सांस छोड़ते हुए कहा, 'तुम नहीं समझोगे दिव्यसिंह, कभी नहीं समझोगे। इस घटना पर मैं जितना सोचता हूं, खुद को उतना अधिक असहाय समझने लगता हूं। नियम, कानून, सरकार सब कुछ होते हुए भी, यहां तक कि दो कापियों के लिए यदि पर्याप्त क्षतिपूर्ति की व्यवस्था भी हुई होती, तब भी मनुष्य कितना लाचार है ! वाकई कितना लाचार !'

दिव्यसिंह ने कहा, 'नहीं सर ! जितनी लाचारी आप समझते हैं वास्तव में उतनी है नहीं...हाः हाः !'

सुदर्शन बाबू बेंत लेकर खड़े हो गए, 'मेरी बात समझ पाना उतना आसान नहीं है दिव्यसिंह ! अब तर्क मत करो, जीने दो मुझे अपनी ट्रेजेडी के सहारे।' वे चले गए।

दिव्यसिंह बाबू अधिक तर्क करने को बेचैन थे। मौका न मिलने के कारण सुदर्शन बाबू को सिर्फ जरा सा चिढ़ाकर छोड़ने के लिए ठहाका मारकर हंस पड़े।

किंतु मन की भड़ास मन ही में रह गई। वास्तव में दिव्यसिंह बाबू के लिए बारह घंटे पहले सुदर्शन बाबू का वक्तव्य झेल पाना संभव नहीं था। बुद्धि और कौशल का प्रयोग करके कार्य-कारण के मार्ग पर वे जीवन भर, कामयाबी हासिल करते आए हैं। ऐसा नहीं है कि हिसाब में गलती न हुई हो, पर यात्रा पथ पर पराजय को किसी भारी विजय द्वारा उन्होंने सुधार लिया है। लाचार ? नहीं, उन्होंने कभी लाचार नहीं समझा खुद को। मनोबल, धनबल, जनबल के कारण उन्हें कभी किसी तरह की कमी का अहसास नहीं हुआ।

भोर होने को है। सूर्योदय-के समय के ऐसे शीतल क्षण वाकई कितने मधुर होते हैं ! दिव्यसिंह नाव पर संभलकर बैठ गए और एक गहरी सांस ली।

कल गोधूलि में भी इसी तरह की गहरी सांसें लेने के लोभ में वे नदी किनारे आए थे। नगर निगम की बैठक के बाद से उन्हें सीने में दर्द का अहसास हो रहा था।

नदी का सुनसान किनारा। कार से उतरकर वे पानी तक गए थे। न जाने क्यों, नदी की स्वच्छता में प्रवेश करने के लिए, उसके मंथर प्रवाह के धीमे-धीमे थपेड़ों का अहसास करने के लिए उनकी बहुत वर्षों की बाथरूम-अभ्यस्त देह सहसा बेचैन हो उठी थी।

शहर के नदी किनारे टहलने वालों के लिए दूसरे स्थान हैं। यह एकांत इलाका है। कहीं कोई नहीं था। दिव्यसिंह ने घड़ी उतारकर पैजामें में रखी और फिर कपड़े उतारकर एक पत्थर पर रखकर पानी में प्रवेश कर गए।

अनेक बार वे इस नदी में नहाए हैं—बहुत साल पहले कालेज में पढ़ते समय—पर ऐसे निर्जन घाट पर नहीं। उस समय निकट ही एक महिला कॉलेज था। वे और अन्य दोस्त तैरने के साथ-साथ उल्लसित चीत्कार करके महिला छात्रावास की ओर मुंह करके तरह-तरह की आवाज निकाला करते थे। जबकि अंत तक उनकी आवाज की प्रतिध्वनियां सिर्फ दीवारों से टकराकर ही लौट आया करती थीं। दीवारों के उस पार के किसी दिल से नहीं। आज उस बात को याद करके दिव्यसिंह मन ही मन मुस्कुराए।

दूसरों का ध्यान आकर्षित करने की उनकी अभिलाषा काफी दिनों से चरितार्थ हो चुकी है। कई साल पहले जब शुरू-शुरू में उन्होंने सभा समितियों में भाषण देना शुरू किया, तब एक दिन उनकी स्वर्गीय मां ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था, 'अब तू सभा-समितियों में भाषण देना छोड़ दे।' 'क्यों ?' विस्मित हो उभरते वक्ता ने पूछा था। मां ने कहा था, 'बहुत लोगों की निगाह तुझ पर पड़ेगी—तू दुबला जाएगा।'

दुबलाने के बदले पिछले पच्चीस सालों में वे क्रमशः मोटे हुए हैं। यहां तक कि नगर निगम के पिछले चुनाव में उनके वार्ड के उनके विरोधी नेतागण उन्हें दिव्यसिंह के बदले दिव्यहस्ती तक कहने लगे थे।

वे सहसा चौंक उठे। लगा कि अंडरवियर में कुछ घुस गया है। उन्होंने पानी के अंदर ही जल्दी-जल्दी अंडरवियर उतारा। किंतु दूसरे ही क्षण वह उनके हाथ से छूटकर प्रवाह में बहने लगा। खूब फूर्ति दिखलाते तो शायद उसे पकड़ भी लेते, किंतु उन्होंने सोचा कि झटपट बाहर निकलर ट्राउजर्स पहन लेने में कोई दिक्कत नहीं होगी।

काफी देर से हैं वे पानी में। अब बाहर निकलना चाहिए। वे किनारे की ओर चल पड़े।

किनारे एक सफेद-सा हिलता हुआ जीव उन्हें दिखाई दिया। पहचानने में वक्त नहीं लगा—गाय है। वे सशंकित हो उठे। कहीं अध्यापक महोदय को रुलाने वाली वही चोट्टी गाय तो नहीं ?

वे जल्दी-जल्दी पत्थर पर चढ़ गए। बुशर्ट और बनियान खा चुकने के बाद वह चोट्टी गाय एकाग्र हो ट्राउजर्स चबाने में जुटी थी। दिव्यसिंह ने 'हट-हट' करके चिल्लाते हुए गाय की ओर पानी फेंका। गाय वहां से हट गई, किंतु अधखाए ट्राउजर्स समेत।

दिव्यसिंह ने चारों ओ देखा—वहां कोई नहीं था। नग्न मेयर चोट्टी गाय से मुकाबला करने दौड़े। गाय तेजी से भागी। दूसरे ही क्षण थोड़ी दूर पर मोड़ के पास से अचानक एक जीप आती दिखाई दी। पल भर चमक गया उनका गीला विपुल तनु। वे तुरंत नीचे बैठकर मेढक की तरह कूदते हुए पानी में जा घुसे।

जीप तुरंत ब्रेक लगाकर खड़ी हो गई। उस पर सवार तीनों व्यक्ति नीचे उतर आए। पानी में रहकर दिव्यसिंह ने उन तीनों हतप्रभ व्यक्तियों की बातचीत का कुछ-कुछ टुकड़ा सुना। पहचानने में देर नहीं हुई—वे लोग उन्हीं के नगर निगम के एक्जीक्युटिव इंजीनियर और उनके दो सहकर्मी थे।

'क्या नदी में कूद गया ?'

'भगवान जाने गुरिल्ला-सा आदमी लगा।'

'मधुवन में गुरिल्लों ने कब से रहना शुरू कर दिया ?'

'भगवान जाने ! सिर और धड़ की बनावट बिल्कुल आदमी-सा लगा।'

'पर कोई जीव-जंतु था जरूर।'

'कहीं हिम मानव तो नहीं था ?'

कुछ देर चुप रहे वे लोग। उसके बाद उनमें से एक ने कहा, 'वह कार किसकी है ?'

'भगवान जाने ! अरे, मैं जानता हूं, यह तो अपने मेयर साहब की है।'

'कार तो खुली पड़ी है। साहब कहां हैं ?'

वे लोग फिर चुप हो गए। किसी ने जोर से आवाज लगाई, 'सर ! सर' !

फिर थोड़ी देर चुप रहने के बाद उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा। उसके बाद किसी ने गंभीर होकर कहा, 'इस तरह गाड़ी खुली रखकर साहब कहीं जाने वालों में से नहीं हैं। आखिर बात क्या है ? मुझे तो यह सब कुछ अटपटा-सा लग रहा है। चलो, चलें साहब के घर की ओर।'

जीप में बैठकर वे लोग वहां से चले गए।

भयंकर लज्जा से कांप रहे थे दिव्यसिंह। अब क्या करें वे ? कार लेकर भागे घर की ओर ? लेकिन इस वक्त इंजीनियर लोग उनके बारे में जांच-पड़ताल कर रहे होंगे। विस्मित परिवार पोर्टिको में एकत्र हो गया होगा। कार-पार्क करते ही पहले दरबान आकर झिझकते हुए दरवाजा खोलकर खड़ा हो जाएगा। किस मुंह से वे कार से उतरेंगे ?

पंद्रह मिनट बीत गए। वही करना सुरक्षित है।

काश, इसी समय कोई अंतरंग मित्र नदी किनारे टहलने आता। दिव्यसिंह उसे फुसफुसकर सब कुछ कह देते और वह दौड़कर उनके लिए कोई पोशाक ले आता या फिर किसी चमत्कार से नदी में कहीं से बह आए एक धोती।

कोई उपाय नहीं था। इस बार एक्जीक्युटिव इंजीनियर लौटकर आए तो पानी में रहकर उससे सारी बातें बतानी होगी। उसके बाद इंजीनियर घर जाकर कपड़े ले आने पर वे पानी से बाहर निकलेंगे।

दूर से रोशनी दिखाई दी। उन्हीं की कार के पास आकर रुकीं कई गाड़ियां। पहले इंजीनियर की गाड़ी। पीछे वाली गाड़ी से उतरा उसका छोटा भाई और उसकी

यूरोपीय पत्नी। यह क्या ? उसके पीछे वाली गाड़ी से कई पुलिस। उसके ठीक बाद शहर की सबसे पुरानी गाड़ी और हाय, हाथ में बेंत लिए उससे उतरे वृद्ध अध्यापक सुदर्शन राय।

दिव्यसिंह के सीने से सहसा एक तीव्र आह निकली। छोटे भाई की पत्नी के आगे अपनी दयनीय हालत जाहिर करने जैसा सत् साहस वे कर भी लेते, किंतु अध्यापक सुदर्शन जी के आगे तो कतई नहीं। अभी तीन ही घंटे पहले चोट्टी गाय के प्रसंग में जब वृद्ध रो रहे थे तब वे हंस रहे थे।

दिव्यसिंह घाट से और दूर चले गए। नदी में टॉर्च की रोशनी डाली जा रही है। असिस्टेंट इंजीनियर 'सर-सर' कहकर पुकारते हुए उन्हें ढूंढने की कोशिश कर रहा है।

अब एक विशाल पुलिस वैन आ पहुंची।

दिव्यसिंह बाबू की धड़कन बढ़ने लगी थी। क्या मनुष्य ऐसी भयावह स्थिति में भी पड़ सकता है ? उन्हें किस अदृश्य ताकत के षड्यंत्र का शिकार होना पड़ा ? आखिर क्यों ?

अदम्य अभिमान और तेज धड़कनों के कारण वे पानी में जितना आगे जा सकते थे बढ़ते गए—कभी चलते हुए तो कभी तैरते हुए।

एक टुटही नाव बंधी थी। दिव्यसिंह ने पूरी ताकत लगाकर उस नाव को खोला और उस पर बैठ गए। नाव बह चली प्रवाह में।

जहां गाड़ियां खड़ी थीं, वहां से जब वे काफी दूर निकल गए, तब उन्होंने अपने सीने और गले से सारा गुबार निकाल दिया और फफक-फफककर रोने लगे।

न जाने कितने साल पहले वे नंगे रोया करते थे मां की गोद में या पिता के सीने से लगकर। उसके बाद वाकई कितने अरसे से नहीं रोए हैं। किसके आगे रोते ? बड़े होने पर सबने उसे एक अनुष्ठान के रूप में देखा है—मां, पिताजी, पत्नी, भाई, बहन सभी। क्षण भर के उलट-पलट के बाद उन्हें लगा कि वे कितने एकाकी हैं।

नाव बहती चली जा रही थी। कम चौड़ी नदी में कभी-कभी किनारे से टकरा जाती और फिर बहने लगती। दोनों किनारे केवल खेत ही खेत थे। ऊपर विशाल आसमान था। उसी सुदूर स्मृति की मां की गोद-सी यह नदी। और पिताजी के सीने-सा उदार यह असीम आकाश। यदि आज वे न रोएं तो फिर कब रोएं ?

काफी देर बाद उन्हें झपकी आ गई। उन्होंने सपना देखा—एक छोटा पक्षी अपने डैने फड़फड़ाता ढेरों बादलों को हटाता आगे उड़ता चला जा रहा है।

अंतिम प्रहर उनकी ऊंघ टूटी। नाव एक जगह टिक गई थी। वे नीचे उतरे और दुबारा उसे धकेलकर उस पर सवार हो गए। उस वक्त धीरे-धीरे उनका मन हल्का हो चला था।

नाव फिर जाकर रुकी एक जगह। भोर हो गया था। किनारे एक झाड़ी के पास एक छोटी-सी लड़की खड़ी थी। अपना शरीर यथासंभव सावधानी से नाव में छिपाकर सिर ऊपर उठाकर दिव्यसिंह ने उस लड़की से कहा, 'ए बिटिया ! मेरे पास कपड़ा नहीं है। क्या मुझे कुछ दे सकती है पहनने के लिए ?'

उस लड़की के चेहरे पर कुतूहल और दया उभर आई। 'क्यों नहीं,' उसने कहा और झटपट अपने बदन से मैली फ्रॉक उतारकर नाव में फेंक दी, 'ले पकड़।'

दिव्यसिंह ने फ्रॉक को चूम लिया। ऐसा लगा, काश वह उसे पहन पाता ! उसके बाद उन्होंने कहा, 'यह तो मुझे नहीं होगी बिटिया, मैं बड़ा आदमी हूं।'

'अच्छा, बड़ा आदमी है ? बप्पा की तरह ? रुक जा।' वह लड़की वहां से दौड़ते हुए चली गई। दो मिनट के बाद वह दुबारा आ पहुंची हाथ में एक अंगोछा लिए हुए। 'ये ले, बड़ा आदमी। ले, पकड़।'

गहरे संतोष के साथ दिव्यसिंह अंगोछा पहनकर नाव से उतरे और झाड़ियों की डालें जोर से पकड़-पकड़कर किनारे चढ़ गए। लड़की का पीछा करते हुए वहां उसका चकित बप्पा भी आ पहुंचा था। दिव्यसिंह ने निःसंकोच अपना परिचय दिया और उनके घर गए। बीड़ी पीते हुए जो-जो कुछ घटा था, सब कह सुनाया। अभिभूत केवट ने गाय के कपड़े चबा जाने तक समझा और सहानुभूति से चुचकारता रहा।

उसी रास्ते से बसें शहर जाती हैं। घंटे भर बाद मछुआरे से प्राप्त कुछ साफ धोती पहनकर बदन पर अंगोछा डाले दिव्यसिंह शहर पहुंचे।

शहर भर की जनता सुबह के 'मधुवन समाचार' में पढ़ रही थी, 'मेयर रहस्यमय रूप से लापता।' पहले पृष्ठ पर छपे थे तरह-तरह की संभावनाओं के समाचार—अपहरण, हत्या, आत्महत्या, अनेक षड्यंत्रपूर्ण कल्पनाएं। एक ओर किसी विचित्र जीव के नदी में कूदने और दूसरी ओर मेयर के ट्राउजर्स की बेल्ट के कुछ चबाए हुए हिस्से का मिलना—इन दो बातों ने घटना को और भी जटिल बना दिया था। विशेष संवाददाताओं के आगे अवकाश-प्राप्त अध्यापक काउंसिलर सुदर्शन राय ने एक विवरण देते हुए कहा कि जहां तक उन्हें लगता है, कल की बैठक के बाद गुस्से में मेयर ने कुख्यात चोट्टी गाय को चैलेंज किया है और गाय मेयर को पूरी तरह चबाकर खा गई। उसके बाद वृद्ध अध्यापक ने रोते-रोते गाय को तुरंत गिफ्तार करने की मांग की थी। संवाददाताओं ने बताया कि पुलिस और नगर निगम के कर्मचारी गाय को पूरी तत्परता से तलाश रहे हैं।

किंतु दिव्यसिंह अपने भीतर एक अद्भुत परिवर्तन का अहसास कर रहे थे। उनमें किसी के आगे किसी तरह की कैफियत देने की बेचैनी नहीं थी। सिर्फ एक बार अध्यापक सुदर्शन राय के पास जाकर महज इतना कहना चाहते थे, 'सर ! लाचारी क्या होती है, मैं समझ गया हूं। अब मैं वयस्क हूं।'

परछाईं

प्रोफेसर अंजन शर्मा कभी एक वैज्ञानिक, सुवक्ता और विचारक के रूप में विख्यात होते-होते रह गए थे। जिन तीन प्रमुख कारणों से ऐसा हुआ था, उनमें एक तरह की भयावह संबद्धता थी। पहला कारण : प्रौढ़ावस्था में हठात् पत्नी-प्राप्ति और वह भी जरूरत से ज्यादा सुंदर व सुशील। दूसरा कारण : एक अग्निकांड और तीसरा, पत्नी का यकायक परलोक सिधार जाना।

वाह रे सुधीजनों की स्मृति की क्षीणता ! अंजन शर्मा को हम सभी भूल चुके थे। तीस वर्ष बाद अचानक उनके अस्तित्व के बारे में जानकारी मिलना, वह भी इतनी दूर हिमालय पर, मेरे लिए जितना अप्रत्याशित था, उतना ही चौंकाने वाला भी।

मनाली के निकट ही जंगल में बने एक अतिथि-निवास की देखभाल करने वाले अपने एक सहपाठी मित्र से शिमला में न एकाएक मुलाकात हुई होती और न ही मैं यहां आया होता। हालांकि आने पर काफी आवभगत हो रही थी। वह सहपाठी स्कूल के दिनों में मेरा घनिष्ठ मित्र था। वह चित्रकार था। सौंदर्य की तलाश में हिमालय आकर इस तरह मोहित हो गया था कि अपने आने का उद्देश्य तक भूल चुका था। जीविका के लिए किसी सामंती राजा के निर्जन सरोवर के पास इस कोठी की जिम्मेदारी संभालते हुए, अक्सर एक चादर ओढ़े, वन, पर्वत की ओर देखते हुए वह समय काट रहा था।

पच्चीस साल पहले कोठी का मालिकाना हक सामंती राजा से किसी धनी व्यापारी के हाथ चला गया था। इस समय उस पर अधिकार था सरकार के पर्यटन विभाग का। अपने निजी अनुभव के कारण मेरा मित्र अपनी जगह बहाल रहा। सैलानियों के लिए बने नक्शों में इस जगह को स्थान मिलने का कोई औचित्य न होने के कारण, तैरने और विश्राम के लिए यह एक आदर्श स्थान है, ऐसा कहकर सरकार द्वारा प्रचार किए जाने पर भी यहां कोई खास लोग नहीं आते थे। कभी-कभार आ जाते थे एक-दो लोग निर्जन-आश्रय-पिपासु, दो-चार दिनों के लिए।

'सरकार इसे बंद कर दे, यह प्रस्ताव रखने की बात मैंने कई बार सोची है। फिर सोचता हूं, ऐसा हुआ तो प्रोफेसर अंजन शर्मा कहां जाएंगे ?' मित्र ने

कहा था।

'क्या वे कभी कहीं जाते नहीं हैं ?' मैंने सवाल किया था। उस दिन बारिश बंद होने के बाद अपराह्न में एक साफ लेकिन जर्जर पैजामा पहनकर, पहाड़ी हवा के एक धक्के में उड़कर सरोवर में डूब जाने का वायदा करने वाला जो व्यक्ति घूमने निकला था, वह कौन है, कहकर मित्र से सवाल पूछने पर उसने अंजन शर्मा के बारे में बताया।

छात्रावस्था में सिर्फ एक बार अंजन शर्मा को देखा था मैंने। वे हमारे कॉलेज में आए थे और 'यदि भारत का कोई वैज्ञानिक आज शोध-प्रतिभा के लिए नोबुल पुरस्कार पाने का हकदार है, तो वह व्यक्ति अंजन शर्मा है' कहकर अतिथि का परिचय कराते हुए हमारे प्रिंसिपल ने हमें चौंका दिया।

उस समय अंजन शर्मा ने किसी युगांतकारी तत्व की भूमिका मात्र तैयार की थी। मध्याकर्षण शक्ति पर काबू करके उससे किस तरह कल-कारखाने और गाड़ियां चलाई जा सकती हैं, इस तत्व को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने एक हजार पृष्ठ का गणितीय हिसाब तैयार किया था। इतना ही नहीं, उद्योगपति बने अपने बचपन के किसी मित्र की मदद से अति गोपनीय ढंग से उन्होंने कुछ पुर्जे बनाने की दिशा में पहल भी की थी। लेकिन उसके लिए पर्याप्त पूंजी की जरूरत थी और उतनी अधिक पूंजी कोई एक पूंजीपति नहीं, बल्कि कोई पूंजीवादी देश या अंतर्राष्ट्रीय संस्था ही उपलब्ध करा सकती है, सोचकर उस दिशा में अंजन शर्मा और उनके शुभाकांक्षियों ने आवश्यक आवेदन करने की शुरुआत की थी।

लेकिन एक दिन अचानक आग लगने से उनकी महत्वपूर्ण लैबोरेटरी जलकर राख हो गई थी।

स्तब्ध रह गए थे अंजन शर्मा। धुंधली चांदनी में, आधी रात के समय इत्तफाक से जागते समय उन्होंने जिसे आग लगाते हुए देखा था, वह कोई भूत-प्रेत नहीं था, एक आदमी था, वे यह जानते थे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि एक आदमी यह काम करेगा। वस्तुतः उस आदमी को पेट्रोल की पिचकारी मारते और आग लगाते खुद अपनी आंखों से देखकर भी वे कल्पना कर रहे थे कि वह आदमी उनके सोचने से परे भी कोई रचनात्मक काम कर रहा है।

बहुत दिनों तक कई लोग उनकी आंखों में मानो उस आग की लपटों का प्रतिबिंब देखते रहे थे।

कुछ दिनों तक अग्निकांड के संभाव्य कारणों की जांच होती रही। एक सहकर्मी की झूठी ईर्ष्या से लेकर अंतर्राष्ट्रीय षड्यंत्र पर विचार किया गया था। यथासमय सभी वह घटना भूल गए।

पूंजीपति मित्र ने अंजन शर्मा को सपत्नीक हिमालय की वादियों की इस निर्जन कोठी में भेज दिया था। कोठी का मालिक एक से अधिक बार बदल जाने

पर भी कोई अंजन शर्मा को निकल जाने के लिए नहीं कहता था। हालांकि उन्होंने कोठी का कोई प्रमुख हिस्सा अख्तियार नहीं किया था। अहाते के एक कोने में बने एक छोटे से दुमंजिले मकान की ऊपरी मंजिल में वे रहते थे। उनकी विलासहीन जीवन-यात्रा का खर्च उपर्युक्त पूंजीपति वहन करता था।

यहां के शांत और लबालब भरे प्राकृतिक परिवेश में वे जीने और पुनः कोई अर्थपूर्ण कार्य करने का उत्साह दिखाने की दिशा में सफल हुए ही थे कि उनकी पत्नी इहलोक छोड़कर चली गई।

पत्नी द्वारा पाला गया एक सुंदर कुत्ता ही अब उनका अंतिम साथी था। लेकिन अपने पालनहार का वियोग न सह पाकर उसने भी खाना-पीना छोड़ दिया और मर गया। अंजन शर्मा उस रोज चीख-चीखकर रोए।

मित्र के बताए मुताबिक आगे की घटना यों थी :

अंजन शर्मा जंगल-उपत्यका में कभी-कभी अकेले घूमा करते। एक दिन मध्याह्न से कुछ देर बाद इसी तरह घूमते समय उन्होंने यह सोचकर पीछे मुड़कर देखा कि शायद कोई उनका पीछा कर रहा है। कहने की जरूरत नहीं कि उनका पीछा करने वाला उनकी परछाईं के सिवाय और कोई नहीं था। अचानक परछाईं पर खीझते हुए उन्होंने चिल्लाकर कहा, 'सभी के मुझे छोड़कर चले जाने के बाद अब तू मेरे पीछे-पीछे क्यों आ रही है ? जा, जा—कह जो रहा हूं।' उन्होंने अपनी परछाईं को इस तरह फटकारा कि वह उनसे अलग हो दौड़कर झाड़ियों में छिप गई। अंजन शर्मा ने कुछ देर तक परछाईं की सिसकियों-भरी रुलाई सुनी थी।

मेरा मित्र ही एकमात्र आदमी था, जिसे अंजन शर्मा ने यह घटना बताई थी। उसी दिन से अंजन शर्मा सूर्य की रोशनी या चांदनी में बाहर नहीं निकलते थे। सिर्फ अंधेरे में या फिर जब आकाश में बादल छाए होते, वे उपत्यका में अन्यमनस्क-से टहलते रहते। लेकिन आकाश से बादल छंटने के आसार दिखाई देते ही, वे अन्यमनस्कता भूलकर दौड़ते हुए तुरंत अपने कमरे में लौट आते थे। कोई उनसे मिलने आता तो वे तत्काल बत्ती बुझा देते थे।

'क्यों ?' मैंने सवाल किया।

'उनकी परछाईं नहीं है; यह बात वे किसी को बताना नहीं चाहते थे।' मित्र ने जवाब दिया।

'पर तुम तो जानते हो, उनका यह सोचना निरर्थक है। तुम यकायक टार्च जलाकर उनकी परछाईं उन्हें दिखाकर, उनकी यह धारणा निरर्थक है, कहकर प्रमाण क्यों नहीं देते ?'

मेरी बात सुनकर मेरा मित्र ऐसे चौंका, जैसे कि मैं उसे कोई दारुण विश्वासघात करने के लिए उकसा रहा हूं। उसे चौंकते देख मैं कुछ विस्मित और कुछ लज्जित हुआ। मैंने कैफियत देने जैसी आवाज में कहा, 'मतलब, उनका यह विचित्र मोह

किसी तरह टूटे इसीलिए कह रहा था।'

'विचित्र मोह ?'

'और क्या ?' इसी को डिल्यूजन कहते हैं। किसी की परछाईं भला कभी किसी से अलग हो दौड़कर कहीं छिप जाएगी, तुम तो इस बात पर विश्वास नहीं करते न ! तुम तो उनकी परछाईं देखते होगे ?'

मित्र चुप रहा। अपना आश्चर्य-भाव छिपाकर मैंने सवाल दोहराया। उसने कहा, नहीं, जानता।'

'नहीं जानता, मतलब ?'

'मैंने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया।'

'अरे भाई, ध्यान देने का सवाल ही कहां उठता है ? तुम्हारा सामान्य ज्ञान क्या कहता है ?'

वह कुछ नहीं बोला। मैं जानता था मुझे उस पर गुस्सा करना चाहिए। लेकिन कर नहीं पा रहा था। काफी देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। शाम होने लगी थी। निकट की पर्वत-श्रेणियों के शिखरों पर थोड़ी चांदनी बिखरी होने के कारण वे आकाश में बहते किसी स्वर्ग-द्वीप की सरहद का भ्रम पैदा कर रही थीं। अनेक अनजाने पक्षियों की विचित्र ध्वनियां सुनाई दे रही थीं। खामोश मित्र की ओर देखकर मुझे लगा, वाकई इस निर्जन इलाके में किसी निरर्थक विश्वास का सहारा न हो तो भला वे जीवन बिताएंगे कैसे ?

दूसरे दिन मित्र से विदा लेकर मैं लौट आया। अंजन शर्मा को और एक बार देखने की प्रबल इच्छा थी, पर वह पूरी होने की आशा दिखाई नहीं दी।

मनाली की वादियों में बिताए उन चंद दिनों के अपने उस मित्र से पांच साल बाद फिर मुलाकात हुई। नौकरी छोड़कर उसने अपने गांव में आदर्श कृषि-कार्यों में मन लगाया था। उसने अति स्वाभाविक रूप से मुझे कहा, 'अंजन शर्मा के चले जाने के बाद मेरे लिए वहां रहना संभव नहीं था।'

'अंजन शर्मा कहां चले गए ?'

'अपनी फरार परछाईं की तलाश में जा रहा हूं'—मेरे लिए यह लिखकर वे कहीं चले गए।

'उसके बाद ?'

'जाते भला कितनी दूर ? उस उपत्यका के अंतिम छोर पर बेहोश पड़े थे। उस हालत में उन्हें पाने के तुरंत बाद उन्होने अंतिम सांस छोड़ी थी।'

'उसके बाद ?'

'विधि अनुसार उनका दाह-संस्कार हुआ।'

'क्या अपनी परछाईं ढूंढ ली थी उन्होंने ?'

'नहीं।'

'तुम कैसे जानते हो कि नहीं ढूंढ पाई थी ? क्या मृत्यु के बाद उनके शरीर की परछाईं नहीं पड़ रही थी ?'

'उनके कमरे से जाने के बाद से उनके मृत शरीर का दाह-संस्कार खत्म होने तक आसमान में बादल छाए हुए थे। ठंडी हवा में हमारा शरीर कांप उठता था।'

'ठीक है। लेकिन परछाईं उनके पास नहीं लौटी थी, इस नतीजे पर तुम कैसे पहुंचे ?'

'मित्र ने यकायक कुछ नहीं कहा, पर यह लग रहा था कि वह इस ऊहापोह में पड़ा है कि कुछ कहे या न कहे। एकाध मिनट तक दुविधा में रहने के बाद उसने स्वगतोक्ति करने-सा मीठी आवाज में कहा, 'मैंने जंगली झाड़ियों से बीच-बीच में मानो किसी की सिसकी-भरी रुलाई सुनी थी।'

'क्या तुम यह कहना चाहते हो कि अंजन शर्मा की परछाईं रो-रोकर उन्हें ढूंढती फिर रही थी ?'

मेरे सवाल का कोई सीधा जवाब न देकर मित्र ने कहा, 'ऐसी हालत में भला मैं वहां कैसे रह पाता ? फिर सोचता हूं, मैंने अन्याय किया। वहीं लौट जाऊंगा।'

इतनी निरर्थक बातें वह जितनी आसानी से कहता जा रहा था, उसके लिए मैं उसे डांटकर धमकाना चाहता था। लेकिन यकायक मेरी निगाह खुद अपनी परछाईं पर जा पड़ी। मेरी परछाईं ने मानो मुझे वैसा कुछ करने के विरुद्ध आगाह कर दिया।

व्याघ्रारोहण

राजधानी के सन्निकट राजउद्यान में सुबह एक अभूतपूर्व दृश्य देखा गया। कई रातों तक लगातार सुंदर उद्यान में हुड़दंग मचाने वाले एक बारहसिंगा को पकड़ने के लिए दोनों मालियों ने जो जाल बिछाया था, उसमें फंस गया था एक प्रचंडदर्शी बाघ।

ऐसा लगता था कि निकट के जंगल से सपरिवार रात्रि भ्रमण के लिए उस उद्यान में आया था वह बाघ और जाल में फंस गया। काफी देर तक छटपटाने के बावजूद न छूट पाने पर अंत में अंधेरा छंटने लगने पर अपने परिवार को वहां से विदा करके स्वयं एक अनासक्त दार्शनिक की मुद्रा में खड़ा रहा।

जब एक माली ने पहले पहल वह दृश्य देखा, भय से चीत्कार करते हुए बेहोश होते-होते बचा। बाद में उसे याद आया कि बारहसिंगा को फांसने के लिए जो मजबूत जाल बिछाया गया था, उससे छूट पाना बाघ के लिए कतई संभव नहीं था। भय बदल गया पुलक में, पुलक सिहरन में। उसके कंठ से निकला एक पुलकोन्माद संगीत।

चीत्कार और उसके बाद के संगीत से आकर्षित हो दूसरा माली वहां दौड़ते हुए आ पहुंचा। इससे पहले कि भोर के धुंधलके में वह महाबली बाघ को देखे, पहले माली ने कहा, 'वह देख, बाघ !'

'हंह' कहकर अवहेलना सूचक उक्ति करने के तुरंत बाद अंधेरे में दो नीलाभ ज्वलंत आंखें देखकर दूसरा माली घबराकर चीख उठा।

'हाः हाः हाः'—अट्टहास कर उठा पहला माली ! कई सालों से उसका मजाक उड़ाने वाले और तरह-तरह से उसे परेशान करने वाले अपने सहकर्मी को ऐसी शर्मनाक हालत में देखने के अवसर का सही उपयोग करने की सोचकर उसने जारों-से हंसना शुरू कर दिया।

दूसरे माली ने कहा, 'इस तरह हिनहिनाने की जरूरत नहीं, दूसरे घोड़े भी चले आएंगे।'

पहले ने उत्तर दिया, 'तुझ जैसे कायर गधे को देखकर मुझ जैसा घोड़ा भला कैसे नहीं हंसेगा ?'

दूसरे ने प्रत्युत्तर दिया, 'मुझे लगता है कुछ देर पहले यहां किसी और गधे ने भी इसी तरह की आवाज निकाली थी।'

यह सुनकर पहला माली सहसा चिढ़ गया। उसने झल्लाते हुए कहा, 'इतना साहस हो गया है तुझमें जो तू यह कहे कि मैंने भी डरकर तेरी ही तरह चिल्लाया था ? जानता है तू मैंने किस तरह इस बाघ को वश में किया है ? वह जाल में फंसना नहीं चाहता था। मैं छलांग लगाकर उसकी पीठ पर सवार हो गया, उसके कान उमेठकर उसे इस ओर लाकर जाल में फंसाया है मैंने—समझा ?'

इस बार अट्टहास किया दूसरे माली ने। पांच मिनट बीत जाने पर भी जब हंसी रुकने की कोई उम्मीद दिखाई नहीं दी तब पहला माली गुस्से से रुआंसा-सा होते हुए बोला, 'देख, मैं बाघ पर सवार हो सकता हूं या नहीं !'

इस बीच उद्यान के आस-पास रहने वाले लोग वहां इकट्ठे हो गए थे। पहला माली कांछ बांधकर बाघ की ओर चल पड़ा।

एकत्र जनता में दो लोग बोल पड़े, 'असल बाप का बेटा !'

यह बात दूसरे माली के कानों में पड़ी। क्षण भर किंकर्तव्यविमूढ़ रहने के बाद वह चिल्लाया, 'ठहर जा !' पहला रुक गया। दूसरे ने कहा, 'मेरे आगे बहादुरी दिखा रहा है ? मैं बाघ पर सवार हो रात-रात भर जंगल-पहाड़ों में घूमता रहा हूं। देख ले, सच है या झूठ !' वह भी बाघ की ओर चल पड़ा, पहले वाले से कुछ तेज।

लोगों ने कहा, 'यह भी बाप का बेटा है !'

दोनों बाप के बेटे बाघ से कुछ ही दूरी पर पहले एक-दूसरे को रोकने और बाद में पटखनी देने की कोशिश करने लगे। पंद्रह मिनट तक इसी तरह गुत्थम गुत्थी चलती रही। कोई बाघ के पास नहीं पहुंच सका, दोनों लहूलुहान हो गए।

सुबह की मुलायम रोशनी में एक ओर फंदे में पड़ा गंभीर बाघ ओर दूसरी ओर क्रमशः बढ़ती जा रही जिज्ञासु जनता की भीड़ उनकी लड़ाई का आनंद ले रही थी।

इतने में वहां दो राजकीय कर्मचारी कटुआल और रटुआल आ पहुंचे। 'क्या बात है ?' उन्होंने घोड़े से उतरकर पूछा। लड़ना छोड़कर दोनों प्रतिद्वंद्वी ने हाथ जोड़कर रोते हुए कर्मचारीद्वय को अपने झगड़ने का कारण बताया, तो वे ठहाका मार-मारकर हंसने लगे। 'तुम दो बकरों में भला कोई सवार होगा बाघ पर।' उन्होंने कहा।

पहले माली ने तुरंत कैफियत दी, 'हुजूर ! जब मैंने इससे यही कहा तो इसने मुझे मारा। मैंने कहा, बाघ पर कटुआल या रटुआल बैठेंगे, तेरे-मेरे जैसे बकरों को भला क्या अधिकार है उस पर बैठने का ?'

दूसरे ने कहा, 'ठीक यही बात कहने पर इसने मुझे मारा हुजूर ! मैंने कहा, बाघ पर रटुआल या कटुआल को बैठना चाहिए, हमारे जैसे तुच्छ बकरे बैठेंगे तो

क्या शोभा देगा ?'

कटुआल ने कहा, 'नहीं, तुम दोनों ने ऐसा नहीं कहा था। इसलिए तुम्हारे नसीब में बहुत दुःख लिखा है।'

रटुआल ने कहा, 'आश्चर्य है, तुम्हारे दिमाग में इतनी-सी बात नहीं घुसी कि मैं रटुआल हूं—स्वयं राजा का आदेश रटना जिसका काम है, बाघ पर पहले बैठने का हक उसी का है। हाथी पर बैठकर आदेश जारी करने पर लोग जितने ध्यान से सुनते हैं, बाघ पर बैठने से लोग अधिक सहमे हुए से सुनेंगे।

कटुआल ने रटुआल के प्रति एक तीखा कटाक्ष करते हुए मालियों से कहा, 'कटुआल या रटुआल क्यों ? सिर्फ कटुआल ही बाघ की पीठ पर बैठने का हकदार है, इतना भी नहीं मालूम था ?'

उसके बाद सहसा एक नाटकीय घटना घटी। कटुआल और रटुआल दोनों झटपट अपनी-अपनी लाठी तानकर आमने-सामने खड़े हो गए। एक ओर से अनासक्त मुद्रा में बाघ और दूसरी ओर से उत्कंठित जनता ताकती रही।

कटुआल और रटुआल एक अरसे से लाठी चलाना भूल चुके थे। इसलिए लाठियों से सिर्फ एक-दूसरे को धकेले रहने के सिवाए लगभग आधे घंटे तक वे लोग और कुछ न करने पर उन्हें उत्साहित करने के लिए आधी जनता नारे लगाने लगी, 'बाघ पर कौन चढ़ेगा ?—महावीर कटुआल !'

इतने में अचानक वहां आ पहुंचे राज्य के मंत्री और सेनापति। उन्हें देखकर लाटियां नीचे करके कटुआल और रटुआल ने प्रणाम किया और सिसकियां भरने लगे।

पहले रटुआल ने कहा, 'हुजूर ! मैंने कहा कि मंत्री-सेनापति को बाघ पर बैठना शोभेगा, हम बैठें तो कैसे लगेंगे ? भला हमारे चौदह पुरखों में कोई बैठा था बाघ पर ?'

कटुआल ने कहा, 'मैंने और क्या कहा था ? मैंने तो संशोधन करके बस यही कहा था कि—'हमारे अठावन पुश्तों से कोई बाघ पर चढ़ा था ?'

मंत्री बोले, 'नहीं, तुम दोनों ने ऐसा नहीं कहा। क्योंकि हमें नारे कुछ और ही सुनाई दे रहे थे। तुमलोगों की तकदीर में बहुत दुःख हैं'।

सेनापति बोले, 'पर यह सही है कि मेरे पूर्वज बाघ पर सवारी करने में उस्ताद थे। मेरे स्वर्गीय पिता अपने बचपन में एक मोटे मुलायम बाघ पर बैठकर पाठशाला जाया करते थे।'

मंत्री ने कहा, 'मेरे ननिहाल में हमेशा चार-छह बाघ-बाघिन पलते थे। मेरी मां बचपन में उन्हें बिल्ली की तरह सहलाया करती थीं।'

लोग मंत्री की बात सुनकर उनकी तारीफ करके हंसने लगे।

सेनापति ने कहा, 'संभव है, मैं अपने पिताजी के आदर्शों का अनुसरण कर अब बाघ पर बैठूंगा, तुम अपनी मां के आदर्श के अनुसार उसे सहला सकते हो'।

इसके बाद लोग सेनापति के हाजिर जवाब की तारीफ करते हुए हंसने लगे।

जनता की हंसी के बीच हठात् देखा गया कि मंत्री और सेनापति अपनी अपनी कमर से तलवार निकालकर एक-दूसरे के आगे तानकर खड़े हो गए और आत्मरक्षा के लिए चक्राकार घूमने लगे।

एक ओर से बाघ ने जमुहाई ली और दूसरी ओर से लोगों ने तालियां बजाईं।

उसी समय दूर से राजकीय अंगरक्षकों की आवाज सुनाई और लोगों ने पीछे मुड़कर देखा—राजा का रथ चला आ रहा है।

सेनापति और मंत्री तत्काल तलवारें म्यान में डालकर रथ के आगे लेट गए। उसके बाद जराग्रस्त, अतिकाय वृद्ध राजा को द्वादश परिचारकों ने सहारा देकर नीचे उतारा। रथ के पीछे दौड़ते हुए परिचारकों द्वारा लाए गए एक सिंहासन पर राजा बैठे।

मंत्री और सेनापति दोनों बड़ी तत्परता से कुछ कहने जा रहे थे। किंतु राजा ने उनसे कहा, 'मुंह खोलने की आवश्यकता नहीं। गुप्तचरों से मुझे सारी सूचना मिल गई है। तुम दोनों को इसी समय कार्यमुक्त किया जाता है। मेरे जंगल का बाघ, मेरे उद्यान में आकर फंदे में पड़ जाए और मैं उस पर न चढ़ूं, चढ़ो तुम लोग, क्यों ?'

मंत्री और सेनापति ने कान पकड़े और पगड़ी से आंसू पोछते हुए बोले, 'महाराज को छोड़ और किसी के चढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।'

'ठीक है, हम चढ़ेंगे।'

'आइए महाराज, चढ़िए।' मंत्री, सेनापति, कटुआल, रटुआल और मालियों ने कहा।

'किंतु हम चढ़ नहीं सकते। हम मोटे और अस्वस्थ हैं।'

'महाराज, आपका चढ़ना उचित नहीं होगा। महाराजा अत्यंत स्वास्थ्यवान और अस्वस्थ हैं।'

'मैं नहीं तो मेरा पुत्र चढ़ेगा। जाओ कुमार को बुला लाओ।' कटुआल घोड़े पर सवार हो चल पड़ा।

राजधानी के एक जनविरल हिस्से में सुंदर, सुकुमार राजकुमार निवास करते थे। राजा की एकमात्र संतान होते हुए भी प्रासाद का भोग-विलास शोर-शराबा उन्हें अच्छा नहीं लगता था। वे अध्ययन और एकांत चिंतन में अपना समय व्यतीत करते थे।

जन समुद्र दो भागों में बंट गया। राजकुमार की जय जयकार से संपूर्ण वातावरण गूंज उठा। राजकुमार घोड़े पर सवार हो जनता के बीच से होते हुए पिता के सम्मुख आकर उतरे और उनका अभिवादन किया।

'राजकुमार ! आज तुम राज्य के इतिहास में सर्वोच्च गौरव के अधिकारी बनने

जा रहे हो। इस व्याघ्र की पीठ पर आरोहण करो।'

राजकुमार ने धीमे स्वर में कहा, 'महाराज मुझे यह गौरव नहीं चाहिए।'

राजा ने धमकी देते हुए कहा, 'मुझे नहीं चाहिए का क्या अर्थ है ? भले ही एक व्यक्ति के रूप में तुम इस गौरव के प्रति लालायित न हो, किंतु मेरे पुत्र के रूप में, मेरे प्रतिनिधि के रूप में, हमारे राजवंश के प्रतीक के रूप में तुम्हें इस गौरव से विभूषित होना ही पड़ेगा।'

राजकुमार ने पुनः कहा, 'क्षमा करें महाराज, किंतु यह बिल्कुल निरर्थक है। यह समग्र घटना एक अंधे अहंकार की प्रतियोगिता मात्र है !'

'चुप रहो।' राजा ने कहा, 'हमारा पुत्र इतना मूर्ख हो सकता है कि इस विशाल जनसमूह के आगे व्याघ्रारोहण का मूल्य न समझ पाए, हमने तो कभी इस बात की कल्पना तक नहीं की थी।'

'जनसमूह से नारे लगने लगे, 'बाघ पर कौन चढ़ेगा ?—वीरोत्तम राजकुमार।'

'पधारिए राजकुमार !' मंत्री और सेनापति राजकुमार को बाघ की ओर ले जाने को तत्पर हुए।

एक लंबी सांस छोड़ते हुए राजकुमार बाघ की ओर बढ़े। हर्षित राजा ने इस बार स्वयं नारेबाजी का नेतृत्व संभाला और सभी लोग जोर-जोर से नारे लगाने लगे। मंत्री, सेनापति, कटुआल तथा रटुआल खुशी से झूम उठे।

राजकुमार बाघ की पीठ पर सवार हो गए। जनता की तालियों की गड़गड़ाहट के बीच सेनापति ने तलवार से बाघ का फंदा काट दिया। बाघ ने धीरे-धीरे चलना प्रारंभ कर दिया।

'हमारा पुत्र है !' राजा ने कहा।

'निश्चित ही आपका है, महाराज !'

बाघ ने अपनी रफ्तार बढ़ाई। उसके बाद पलक झपकते जंगल में अदृश्य हो गया।

नारे बंद हो गए। पांच मिनट की चुप्पी के बाद राजा ने पार्षदवर्ग की ओर देखकर कहा—अब क्या होगा ? पार्षद वर्ग ने एक-दूसरे की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा।

राजा ने व्याकुलता भरे स्वर में पूछा, 'राजकुमार लौटेंगे कैसे ?'

किसी ने कुछ नहीं कहा।

राजा सहसा चिल्लाए, 'जाओ, वन में जाकर उसे ले आओ।'

सेनापति और सेनानी घोड़े पर सवार हो अरण्य की ओर चल पड़े। जनता तालियां बजाने पर राजा ने खीझते हुए, 'खदेड़ दो इन सबको !'

अंगरक्षकों ने लपककर जनता को खदेड़ दिया।

दो घंटे बाद सेनापति जंगल से लौट आए, राजकुमार का रक्ताक्त उत्तरीय लिए।

लोहित गोधूलि

कभी-कभी ही होता है ऐसा अस्वाभाविक सूर्यास्त। आकाश दिखता है भयावह लाल।

उस समय यदि मैदान से होकर एकाकी गुजरना पड़े, यदि हवा के झोंकों के साथ निकट श्मशान से जलते शवों की गंध बहकर आती हो, तब मैदान के बीच निर्जन जलाशय और तटवर्ती भीमकाय बरगद और पीपल की शाखा-प्रशाखाओं पर नजर पड़ते ही रोने को जी करता है—यदि फिर उस जलाशय का स्थिर पानी लाल दिखता हो।

सिहर उठता था पुंडरीक। सारा जलाशय रक्त से लबालब भरा हुआ ! कुमुदिनी के पिंगल-छरहरे बदन में इतना रक्त था !

'मुझे क्षमा करना !' कहकर उसने चीत्कार करना चाहा था।

दूसरे ही पल बह आया था हवा का एक झोंका। उसने बरगद और पीपल के सारे पत्ते झड़ा दिए थे और पूरे जलाशय में संचरित कर दिया था सूक्ष्म तरंग। पुंडरीक समझा गया था कि कुमुदिनी के रक्त से नहीं, बल्कि लाल आकाश के प्रतिबिंब से इतना रक्तिम दिख रहा था जलाशय।

पश्चिम आकाश के अस्वाभाविक लाल समारोह में बादल के काले टुकड़े बह रहे थे—इधर उधर जलती चिताओं के प्रकाश से प्रकाशित श्मशान में किसी अज्ञात लक्ष्य के लिए दौड़ते दुस्साहसी शव-साधक यात्री-सा।

पुंडरीक की आंखों के आगे बादल का वह टुकड़ा सहसा बदल गया राघव शर्मा के मुखमंडल की आकृति में—फैला हुआ क्रोधित चेहरा, जिसे देखकर आतंकित थे पूरे इलाके के भूत-प्रेत, सालों से।

आज शय्या में पड़ा राघव शर्मा पुत्र पुंडरीक के चेहरे पर बहुत देर से अपनी नजरें टिकाए हुए था। पहली बार अपने उत्तराधिकारी के एकाकी अभियान के लिए निश्चय ही वह उसे अपनी इच्छा शक्ति देकर सहायता करना चाहता था। शायद वह अपनी उसी कठोर नजरों से पुंडरीक के भीतर अपने व्यक्तित्व का कुछ अंश संचरित करना चाहता था।

किंतु पुंडरीक राघव शर्मा की ओर बहुत कम देखा करता था, और कुमुदिनी की मृत्यु के बाद से तो उसने उसकी ओर देखा ही नहीं।

पुंडरीक ने एक बार पीछे मुड़कर देखा था। सांय-सांय हवा में जलाशय तट के वृक्षों की शाखाएं जोर-जोर से हिल रही थीं। मानो वह एक अव्यक्त बुलावा हो—लौटकर उस लोहित जलाशय का निरीक्षण करने के लिए जिसमें कुमुदिनी ने स्वयं को मिटा दिया था, पुंडरीक जानता था कि उस बुलावे को स्वीकार करने-सा पौरुष उसमें नहीं है। उसने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपनी स्मृति से भी पोंछ डालने की कोशिश की उन शाखा-प्रशाखाओं की प्रमत्त हिलारों को, जिस तरह उस दिन कुमुदिनी का मृत शरीर मिलने के बाद एक बार जाकर उसे देखने-का साहस तक न जुटा पाकर उसने सब कुछ भूलने की जी-जान से कोशिश की थी।

काली आग की आकृति-सी एक झाड़ी से सियार के रोने की आवाज सुनाई दी। उस उदास आवाज में पुंडरीक सुन रहा था अपने आर्तनाद की भाषा : 'मैं कायर हूं। मुझे माफ करो कुमुदिनी, माफ करो !'

दिगंत का अतार्किक रंग मुरझाने लगा था। कौओं का एक झुंड उड़ गया पुंडरीक के सिर के ऊपर से। उनका रैन बसेरा उसी तालाब किनारे बरगद-पीपल की ओर है। उड़कर जाते समय मानो वे लोग पुंडरीक को धिक्कार गए, क्योंकि शायद वे ही लोग थे कुमुदिनी के आखिरी कदम के गवाह।

पुंडरीक भी धिक्कार रहा था खुद को, भले ही कुछ भिन्न कारण से—अपनी कायरता के लिए। मुल्क के अप्रतिद्वंद्वी तांत्रिक राघव शर्मा का वह उत्तराधिकारी है, जिस राघव शर्मा की हुंकार से भूत-प्रेत, डायन-चुड़ैल की बात छोड़ो, ब्रह्मराक्षस तक आतंकित रहते थे, आश्रित आत्माएं आधार छोड़कर भाग जाती थीं, जिस राघव शर्मा का मात्र सहायक होने के बदले आज पहली बार उसे विकल्प होने का अवसर मिलने के कारण वह एकाकी निकला है अपना कार्य साधने। यह सही है कि उसका व्यक्तित्व राघव शर्मा जैसा नहीं है, किंतु वह सारे तंत्र-मंत्र से सिद्धकंठ है; जड़ीबूटियों में सिद्धहस्त।

शाल के पेड़-सा चेहरा, सिंदूर का बड़ा-सा बुंदा, मोटा रुद्राक्ष, पृथुल पेट और घरघराते कंठ के समन्वय से बना है राघव शर्मा का व्यक्तित्व। उस व्यक्तित्व के प्रति पुंडरीक ने बचपन से ही श्रद्धा करना सीखा था। एक दिन दोपहर में वह श्रद्धा, पल में घृणा में बदल गई थी, जिस दिन मां ने राघव शर्मा से निवेदन करते हुए कहा था कि पुंडरीक कुमुदिनी से विवाह करना चाहता है। राघव शर्मा ने चिल्लाकर कहा था, 'आज तक कितने लोगों के शरीर से मैंने कितने भूत उतारे हैं, जानती हो ना ? क्या अपने इकलौते बेटे के शरीर से...'

घोषणा पूरी होने से पहले पुंडरीक पर निगाह पड़ जाने के कारण शर्मा चुप हो गया था।

पुंडरीक ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया था। उसकी खामोशी ने शर्मा की चुनौती को चूर-चूर कर दिया। दूसरे दिन वह अपनी आवाज में स्वाभाविकता लाने की

कोशिश करते हुए बोला, 'देख बेटे, कुमुदिनी की मां थी बाल विधवा। कुमुदिनी का पिता कितना ही धनवान क्यों न हो, बाल विधवा से विवाह करने का कलंक ब्राह्मण वंश से नहीं छूटेगा। लेकिन यह सिर्फ वंश की मर्यादा का सवाल नहीं है, परंपरा के प्रति हमारी जिम्मेवारी का भी सवाल है। कुलहीन कन्या हमारे वंश में आने पर हमारी विभूति टूट जाएगी। मंत्र-तंत्र सही रूप से काम नहीं देंगे। हमारी तीन पुस्तों की प्रतिष्ठा का श्राद्ध हो जाएगा।'

हालांकि इस तर्क में कोई चमक या नवीनता नहीं थी, फिर भी पुंडरीक चुप था। उस चुप्पी ने शर्मा की आवाज को और भी नर्म कर दिया था। कुमुदिनी की मौत के बाद उसने पुंडरीक को बुलाकर कहा था, 'यदि कोई तुझसे कहे कि कुमुदिनी ने तेरी वजह से आत्महत्या की है, उस ओर ध्यान मत देना। यह उसके भाग्य का फल था।

बांबी से एक सांप निकलकर पुंडरीक की ओर से मुंह फेरकर एक झाड़ी में अदृश्य हो गया। सांप को दूर रखने का मंत्र पढ़कर वह पुनः आगे बढ़ गया।

सहसा उसका बदन सिहर उठा। उसने सिर घुमाकर चारों ओर देखा, अंधेरा घिर रहा था। जाड़े की शाम थी। गंतव्य गांव ज्यादा दूर नहीं था। धुंधलके में भी वह गांव दिख रहा था। टिमटिमा रहे थे कुछ प्रकाश-बिंदु।

वह जहां जा रहा था वह कुमुदिनी का गांव है। बड़ा साहस चाहिए इसके लिए। पुंडरीक ने लगभग दौड़ना शुरू कर दिया। आतंक मानो कोई भौगोलिक क्षेत्र है, जिसे वह तुरंत पार कर जाना चाहता है।

गांव की सीमा पर पहुंचते ही उसका दंभ लौट आया। ऐसा लगा जैसे एक युग के बाद सुना हो उसने मनुष्य का कंठ स्वर। रंग-मंच पर प्रवेश करने वाले नए-नए अभिनेता की तरह पहले खड़े होकर उसने एक लंबी सांस ली।

'शर्मा नहीं आ पाए ?' अपनी हताशा छिपाने की दिशा में कोई कोशिश न करते हुए गृहस्वामी ने पूछा।

'वे लगभग शय्याशायी हैं। पर आप चिंता न करें। मैं अपनी ओर से पूरी कोशिश करूंगा।' पुंडरीक ने उनके अंदर निर्भरता भरने की कोशिश की।

चेहरे पर अधीरता भरी मुस्कान लाते हुए गृहस्वामी ने कैफियत दी, 'नहीं, नहीं, मैं चिंता नहीं कर रहा हूं। कौन नहीं जानता कि तुम्हारे पिता तुमसे अधिक योग्य पुत्र पैदा नहीं कर सकते थे।'

'किस पर सवार है ? क्या लक्षण हैं ?' पुंडरीक ने पिता की ही तरह सवाल किए।

उसे कमरे में ले जाते समय गृहस्वामी ने सारा विवरण कह सुनाया। बेटी बेर तोड़ने गई थी, दो अन्य सहेलियों के साथ। कछार के जलाशय का तट कल के बेमौसम बादल से सहसा अंधेरे से ढंक गया था सूर्यास्त से पहले। दोनों सहेलियों

से बिछड़कर बिटिया एक झाड़ी के किनारे खड़ी थी। ऊपर से अचानक झुक आई थी विशाल पीपल की एक डाल। बिटिया चिल्लाकर बेहोश हो गई। दोनों सहेलियां किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही थीं। हाट से लौट रहे लोग उन्हें लिवा लाए थे। जब से बिटिया को होश आया है, वह रो रही है। न बातचीत करती है, न कुछ खाती-पीती है।

'तुम तो जानते हो भैया, उस पुराने जलाशय के किनारे पेड़ों पर तरह-तरह की रुहें रहती हैं।' कहते हुए गृहस्वामी ने एक कमरे की जंजीर खोल दी।

दीवार से टिकी, निस्तेज दीए की ओर पैर पसारे, अपने बाल अस्तव्यस्त किए कुनी बैठी थी। नौ वर्ष की छरहरी स्वर्ण वर्ण की लड़की आगंतुक की ओर ध्यान नहीं देकर हंस रही है।

'देख बेटी, इधर देख।' गृहस्वामी ने बड़े प्यार से बेटी से कहा।

बेटी ने एक नजर देखा। दूसरे ही क्षण उसने पैर समेट लिए, मैली-सी नन्ही साड़ी खींचकर पल्लू डालकर संभलकर बैठ गई।

'कौन है तू ? यदि कोई पुरानी है तो राघव शर्मा को जरूर जानती होगी। मैं उनका बेटा हूं। बप्पा में दया-माया है, मुझमें नहीं। क्या है तेरी इच्छा, बता पूरी की जाएगी। किंतु एक शर्त है, तू तुरंत यहां से चली जाएगी।' पुंडरीक ने यथासंभव अपनी आवाज विकृत और गंभीर करते हुए कहा।

उसकी आवाज की प्रतिध्वनि-सा निकट गांव की सीमा से सुनाई दिया कुछ सियारों का हुक्के-हो। हवा के एक झोंके ने आकर दरवाजों को और ज्यादा खोल दिया और कुनी के सिर का पल्लू हटा दिया। दीपशिखा बुझते-बुझते बची।

परंतु वह लड़की निश्चल रही। पुंडरीक को कुछ घबराहट-सी महसूस हुई। उसने पीछे मुड़कर कहा, 'यह आसानी से मानने वाली नहीं है। थोड़े जलते हुए कोयले लाओ।'

पुंडरीक ने अपनी अंटी से दो शिकड़ निकाले। तत्काल परिवार की महिलाओं में सुनाई दी आर्त गुंजन। शिकड़ के धुएं की असह्य वीभत्स गंध से अब कलप उठेगी लड़की। हालांकि अप्रत्यक्ष रूप से कष्ट होगा उस प्रेत को जिसने लड़की को अपने वश में कर रखा है। फिर भी लड़की का आर्तनाद सहना आसान नहीं है। शायद पुंडरीक राघव शर्मा की तरह प्रहार भी करेगा।

किसी ने एक तसले में जलते हुए कोयले लाकर कुनी और पुंडरीक के बीचों बीच रख दिए। कमरे के बाहर कोई रो उठा संभवतः कुनी की मां थी।

'मैं फिर पूछ रहा हूं—बता तुझे क्या चाहिए !' पुंडरीक ने डांट लगाई।

लड़की ने धीरे-धीरे सिर ऊपर उठाया। अपना घूंघट जरा ठीक से हटाकर उसने पुंडरीक की ओर देखा। बस क्षण भर, किंतु एक अद्भुत व्याकुलता से पुंडरीक घबरा गया। चमक और संदिग्ध आग्रह की समन्वित अपूर्ण अनुभूति से वह कमजोर

पड़ गया।

उसने किसी तरह कहा, 'चले जाओ सभी यहां से !'

संकट की ऐसी घड़ियों में ओझा का निर्देश अलंघनीय होता है।

पुंडरीक उठकर गया और उसने अंदर से दरवाजा बंद कर लिया। बाहर की दबी-दबी रुलाई अब साफ-साफ सुनाई देने लगी। उस रुलाई के साथ कई दूसरों के रोने की आवाज भी शामिल हो गई थी।

कुनी के सामने घुटनों के बल बैठ गया पुंडरीक। खूब आहिस्ता अपना सिर उठाकर उस लड़की ने पुंडरीक के चेहरे पर निगाह डाली। धीरे से मुस्कुराई।

वह निगाह और वह मुस्कान नौ वर्ष की बालिका की नहीं हो सकती। दूसरे ही क्षण पुंडरीक को यह भी लगा कि वह उसके अति अंतरंग और अति प्रिय है।

उस लड़की की निगाह और मुस्कान पुंडरीक पर ही टिकी रहीं। पुंडरीक ने बार-बार लंबी सांसें छोड़ते हुए भर्राई हुई आवाज में कहने लगा, 'कुमुदिनी ! कुमुदिनी !'

वह निगाह, वह मुस्कान क्रमशः अग्नि-सी जीवंत हो पुंडरीक को ग्रसने लगी थीं। पुंडरीक अब नहीं देख पा रहा था बालिका की आकृति। वह देख रहा था एक भिन्न रूप—लाल-लाल एक गुच्छ अग्नि-शिखा।

उस शिखा में कूदने को तैयार हो गया था पुंडरीक। उसके लिए और कोई चारा नहीं था।

किंतु वह लड़की उठकर खुद ही दरवाजा खोलकर बाहर निकल गई और दौड़ने लगी। पीछे-पीछे दौड़ने लगा पुंडरीक।

ग्रामवासियों के लिए उस दृश्य में कोई अस्वाभाविता नहीं थी। जब प्रेत अपना आधार छोड़कर चले जाना तय करता है, तब वह जिस जगह आधार पर सवार हुआ था, वहां तक आधार को ले जाकर वहीं पर उसे त्यागता है। हालांकि अंधेरे में आधार का इस तरह तेजी से दौड़ना शायद ही देखा गया है।

लालटेन लिए हुए उनके पीछे-पीछे चल पड़ा ग्रामवासियों का एक समूह। गांव के बाहर कछार है। कछार के बीच जलाशय। वह लड़की पीपल के पेड़ के नीचे धम्म से गिर पड़ी। उस पर पानी के छींटे मार-मारकर होश में लाने में व्यस्त थे लोग।

जब वह लड़की आंखें खोलकर, उठकर बैठ जाएगी, तब पहले-सी रानी बिटिया बन चुकी होगी। ताकने लगेगी विह्वल-सी। रोएगी। उसके बाद सामान्य हो जाएगी।

ओझा की भूमिका समाप्त हो चुकी है। शायद वे लालटेन और मशाल की रोशनी की परिधि से बाहर खड़े इंतजार कर रहे होंगे। लोग यथासमय उन्हें याद करके अपनी अभ्यस्त भाषा में कृतज्ञता प्रकट करेंगे ओर पारिश्रमिक देंगे—जो कि वास्तविक प्राप्य की तुलना में अक्सर कम ही होता है।

किंतु पुंडरीक ने किसी की प्रतीक्षा नहीं की थी। यंत्रचालित-सा तालाब के

किनारे जाकर उसने पानी में झांका। पानी में तैर रहा था व्याकुल चांद का प्रतिबिंब।

एक प्रचड विस्मृति उस पर छाई हुई थी। वह भूल चुका था वह कौन है।

उसके बाद मुड़कर वह अपने गांव की ओर तेजी से चल पड़ा। उसके पदचाप क्रमशः उसे सुनाई दे रहे थे अधिक से अधिक प्रचंड। शीघ्र ही वे पदचाप उसे वज्रपात-से सुनाई देने लगे। अपनी सांसें भी उसे सुनाई दे रही थीं प्रबल और भयंकर।

कानों को हथेलियों से भींचकर बंद करके उस शोर से छुटकारा पाने की कोशिश करते हुए वह पहुंच गया था अपने घर—सीधे चला गया राघव शर्मा के कमरे में।

राघव शर्मा बिस्तर पर उठकर बैठ गए थे। बेटे पर नजर पड़ते ही वह जोर से चिल्लाए—'पुंडरीक ! क्या हो गया तुझे ? कौन ? कौन है तू ? क्यों हंस रहा है ऐसे ? मैं तैयार नहीं था। छोड़ दे मुझे !'

पास-पड़ोस के लोग स्तब्ध रह गए थे। प्रतापी, रहस्यपूर्ण, गंभीर व्यक्तित्व वाले राघव शर्मा एक दिन इस तरह चीत्कार करेंगे, इसकी कल्पना भला कोई कैसे करता !

भाई

'आप अक्तूबर से पहले तो आ नहीं रहे ? तब तक हमारे शहर में टेलीविजन शुरू हो जाना चाहिए। इसलिए अपना सेट ले आना। हालांकि इलेक्ट्रॉनिक चीजों पर काफी ड्यूटी लग जाती है। फिर भी जब आप लगातार छह साल तक विदेश में रहने के बाद अपने देश लौट रहे हैं, आपके साथ कस्टम वालों का व्यवहार नर्म होने की आशा की जाती है। मैं सोचता हूं, जो भी लगे अपना सेट साथ ले आना अच्छा है, क्योंकि हमारा देसी सेट निकट भविष्य में उसके समकक्ष नहीं पहुंच सकता। मैंने देखा, वहां मां भी टी.वी. देखने की काफी अभ्यस्त हो चुकी हैं। इसलिए यहां उन्हें खटकेगा।'

भतीजे की चिट्ठी है। वह चाची को मां कहकर संबोधित करता है।

उत्तर लंदन के एक फ्लैट में सामान वगैरह पैक करते समय क्षीरोद बाबू पढ़ रहे थे।

अन्यान्य सूचनाएं व हिदायतों के बाद अंतिम पैरे में लिखा : 'पिताजी की बातें सुनकर आप विचलित हो उठेंगे। इस बीच वे काफी तेजी से अपना मानसिक संतुलन खोने लगे हैं। हालांकि थे ही कब वे पूरी तरह सामान्य ! फिर भी आजकल बेहद लापरवाह और गैर जिम्मेवार हो गए हैं।'

गैर जिम्मेवार ! भैया, किशोरावस्था में जिनके अस्तव्यस्त बाल स्वयं यह बताते थे मानो उन्होंने पूरी मातृभूमि की अदृश्य जिम्मेवारी अपने सिर पर ढो रखी हो ! विभिन्न संगठनों में जो दायित्व दूसरे लोग लेने से कतराते थे, भुवनबाबू बड़ी सहजता से उन सबको स्वीकार कर लिया करते थे।

लापरवाह तो भैया शुरू से ही थे इसके लिए उन्हें डांट भी कम नहीं पड़ी है। पिताजी थे सरकारी हाईस्कूल में 'ब्रिटिश शासन की उपलब्धियां' शीर्षक पाठ पढ़ाने वाले इतिहास शिक्षक। चाचाजी थे जज के पेशकार। एक ऐसे परिवार का युवक विदेशी कपड़े जलाकर कारावास जाएगा—यह बात उस परिवार के लिए किसी भूकंप से कम नहीं थी।

एक दिन आपस में एक दूसरे का चेहरा न दिखने-सा अंधेरा हो जाने के बाद पिताजी ने भरे गले से कहा था, 'भुवन मेरी परवाह तू भले ही मत कर। मेरी

नौकरी चली भी गई तो मैं ट्यूशन से दो पैसे कमाकर ला सकता हूं। लेकिन तेरे चाचा कचहरी में पेशकार हैं। उनके बारे में न सोचना निष्ठुरता होगी। जिसके साम्राज्य में सूर्यास्त नहीं होता, वह अंग्रेज तुमलोगों से डरकर भारत छोड़कर चला जाएगा, यह बात सोचना बचपना है। हालांकि तेरी इस वाचालता से तेरा छोटा भाई भी परेशान होगा। बेचारा कभी सेकेंड नहीं हुआ। किंतु तेरा भाई होने की वजह से वह बदनसीब भी सरकार का कोपभाजन बनकर रहने को बाध्य है। उन्नति नहीं कर सकता।'

'युग बदल रहा है। क्या जाने एक दिन उसे मेरा भाई होने का गर्व हो !' भैया ने जवाब दिया था।

क्रोधित होने पर पिताजी हकलाते थे। उस हकलाहट भरी आवाज में उन्होंने अपने मास्टर जीवन का अमोघअस्त्र प्रयोग किया था—'रास्कल ! मोड़ अपने कान, ट्विस्ट, आइ से !'

आदेश पालन करने के बाद भैया ने कहा था, 'मोड़ लिए, किंतु पिताजी, आपने जो वास्तविक समस्या उठाई है, यह उसका समाधान नहीं है। उसके समाधान को लेकर मैं कम चिंतित नहीं हूं। हमारे नेता ने एक उत्तम सलाह दी है। आप मुझे त्याग दीजिए। कहीं किसी ने ऐसा ही करके 'राय साहब' का खिताब पाया है। मैंने तो कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि आपकी भी यही लालसा है। बहरहाल यह सलाह मान लेने से आपकी मास्टरी, चाचाजी की पेशकारी और क्षीरोद की भावी नौकरी सुरक्षित रहेगी।'

पिताजी आगे कुछ नहीं बोल पाए। नजले की वजह से पिछले पांच साल से छोड़ा सांध्यकालीन स्नान उसी दिन उन्होंने सहसा फिर से शुरू कर दिया था।

नहा लेने के बावजूद पिताजी ने कुछ नहीं खाया। मां के रोते वक्त स्वयं खाने की रट लगाकर बालक क्षीरोद ने मार खाई और फिर मनाने पर भी खाना नहीं खाया।

नेपथ्य में रहकर पिता-भैया की बातचीत सुन रहे क्षीरोद का सारा गुस्सा केंद्रित हो गया था भैया पर। भैया के कारण फर्स्ट न होकर सेकेंड होने के बावजूद उसका भविष्य अंधकारमय है, यह उसने उसी दिन शाम को पहली बार समझा था। हालांकि भविष्य से अंधेरे का संबंध क्या है, उस अंधेरे को उपयुक्त लालटेन से क्यों दूर नहीं किया जा सकता था, उस बारे में उसकी धारणा बड़ी अस्पष्ट थी।

किंतु इन सबके बावजूद उसकी चेतना में जो विचार कुछ स्पष्ट थे, वे थे पिताजी और चाचा से भैया अलग हैं। भैया उसके भविष्य के शत्रु अवश्य हैं, फिर भी वे हैं महान।

पेशकार चाचा ने शायद देर रात को घर लौटकर भुवन और अपने अग्रज में हुई बातचीत तथा अग्रज में उसकी प्रतिक्रिया के बारे में सुना था। सुबह उन्होंने

भुवन को पास बुलाकर कहा था, 'तुम त्याज्य पुत्र बनने का प्रस्ताव रख रहे थे ? तुम जैसे आदर्शवादी युवक से ही ऐसे सुचिंतित प्रस्ताव की उम्मीद की जा सकती है। लेकिन बात क्या है, जानते हो ? तुम शादी-शुदा हो। और एक-दो साल बाद बहू घर आएगी। त्याज्यपुत्र के रूप में तुम हमारी बहू का भरण-पोषण कर सकते हो, काश ! विधाता की कृपा से इतना विश्वास हममें होता !

उस कम उम्र में भी क्षीरोद को लगा, चाचा की वह बात अनावश्यक थी। केवल भैया को उनकी अयोग्यता के बारे में सचेत करने के उद्देश्य से ही मानो उन्होंने वह बात कही हो। जबकि भैया जवाब दे सकते थे कि विवाह करवाया गया है। इसलिए बहू के भरण-पोषण का दायित्व कर्त्ताओं का होना चाहिए। लेकिन वे चुप रहे। वे चाचा को नजरंदाज करते रहे।

भैया को चौदह वर्ष की आयु में विवाह करना पड़ा था। उस समय भाभी की उम्र थी नौ साल। सत्रह साल की उम्र से भैया देश प्रेमी तथा समाज सुधारक बने तथा बाल विवाह के अपराध में उन्हें अपराधी बनाने की वजह से बात-बात पर वे मां के आगे चिड़चिड़ाने लगते।

जब भैया की उम्र बीस साल थी, तब भाभी आई थीं। क्षीरोद बाबू समझते थे कि भैया के लिए अप्रयोजनीय होने के कारण, भैया की कमाई से वंचित रहने के कारण, उनके कारागार में होने के कारण भाभी स्वयं को इस परिवार के लिए अभिशाप समझती थीं और यथासंभव सारा कुछ चुपचाप सहकर, कठोर परिश्रम कर, क्रमशः कमजोर होते हुए ससुराल आने के आठ साल बाद परलोक सिधार गईं। छोड़ गई थीं दो साल का बच्चा।

उन्हीं दिनों देश आजाद हुआ और लगा कि भुवन का भविष्य उज्ज्वल है। उनकी दूसरी शादी के लिए कई रुचिकर प्रस्ताव भी आए थे। किंतु भुवन ने वे सब ठुकरा दिए।

मृत्यु शय्या पर पड़े पिता की इच्छानुसार क्षीरोद को कुछ पहले विवाह करना पड़ा—बहू आकर भुवन की असहाय संतान की जिम्मेवारी संभालेगी। आज पच्चीस साल बाद क्षीरोद बाबू देख रहे हैं, वह जिम्मेवारी उनकी पत्नी ने बखूबी निभाई है। भतीजा एक होनहार युवक है। उसने कानून की परीक्षा पास की है। लेकिन वकालत न करके एक छोटा उद्योगपति बन गया है। स्थानीय रोटरी क्लब का सेक्रेटरी। परिवार में वही एकमात्र लड़का है। क्षीरोद बाबू तीन-तीन सुंदर कन्याओं के जनक हैं।

भैया की गतिविधियों ने क्षीरोद बाबू का भविष्य न तो अंधकारमय किया है और न ही अधिक प्रकाशमय। क्षीरोद मेधावी छात्र के रूप में हर स्तर पर छात्रवृति पाकर बड़ा डाक्टर बन गया है, तीन बार विदेश गया है—एक बार उच्च शिक्षा के लिए, एक बार किसी प्रतिनिधि दल में और इस बार तालीम से जुड़ी किसी

नौकरी के सिलसिले में।

क्षीरोद बाबू का स्वागत करने के लिए स्टेशन पर भतीजा सपत्नीक मौजूद था और उसके साथ थे बड़ी लड़की-दामाद तथा डाक्टर अध्यापक बंधुगण। कार में बैठकर क्षीरोद बाबू ने पूछा, 'भैया घर पर ही हैं ना ? कैसे हैं ?'

'हैं—किंतु घर पर होते ही कब हैं ? उन्हें मालूम है कि आज आप आ रहे हैं। स्टेशन तो आ सकते थे ? हालांकि अच्छा ही हुआ, नहीं आए। कब क्या कहते हैं कुछ ठीक नहीं।' भतीजे ने बताया और एक लंबी सांस के साथ क्षण भर को स्टियरिंग छोड़कर असहाय मुद्रा में बोला, 'क्या किया जाए, मेरी तो कुछ समझ ही में नहीं आता। अब तो जो भी करना हो आप ही कीजिए।'

'बात तो ठीक है।' थोड़ा रुककर ग्लानिबोध महसूस करते हुए बोले, 'पर समय कहां है ? बंबई में ज्वाइन करके सामान इसी तरह फेंककर आया हूं। बस तुमलोगों से एक बार मिलकर लौट जाना है।

'परंतु मैं नहीं जानेवाली। लंदन में छह साल रहने के बाद फिर एक महानगर, बंबई। हमारा तो यह छोटा शहर ही अच्छा है। लगता है कुछ नहीं बदला। पिछले छह साल की कैद के बदले कम से कम छह महीने तक मैं यहां से जानेवाली नहीं।' क्षीरोद बाबू की पत्नी ने कहा।

'तुम्हें जाने ही कौन देगा, मां !' भतीजे ने भावुक होते हुए कहा।

'पिताजी का अब तक पता नहीं !' घर में घुसते हुए भतीजे ने कहा।

'आ जाएंगे ? इतने बेसब्र क्यों हैं ?' संस्कृतिवादी वधू ने ससुर के अपराध की मात्रा घटाकर दिखाने की कोशिश की।

क्षीरोद बाबू भाई के व्यवहार से निश्चित ही खीझ रहे थे, किंतु बहू का समर्थन करते हुए बोले, 'और नहीं तो क्या ? आ जाएंगे।'

चाय आई। पत्नी अंदर चली गई थी बहू के साथ। भतीजे ने आवाज धीमी करके कहा, 'किसी तरह पिताजी को रांची ले जाना होगा। बिलास बाबू इस समय सुपरिनटेंडेंट हैं। पिताजी उन्हें बहुत चाहते थे। यहां वे किसी से इलाज नहीं करवाएंगे। बंबई जाने से पहले आप कोई व्यवस्था करके जाइए।'

'हां, यही करना होगा अब। क्या इस वक्त ज्यादा खराब हो गई है ?'

'वही चुनाव वाली घटना के बारे में आपको विस्तार से लिखा था। दिमाग खराब होने की बात तभी से स्पष्ट हुई। उसके बाद...'

भतीजा एक-एक करके भुवन के पागलपने की बातें कहने लगा। क्षीरोद बाबू कुछ-कुछ सुन रहे थे, काफी कुछ अनसुना कर रहे थे। उन्हें याद आ रहा था—

स्वाधीनता के बाद प्रथम चुनाव में जब भैया के खड़े होने की बात तय हुई तब उनके नेता ने उन्हें बुलवाकर कहा, 'ध्यान से सुनो और सोचो। यदि तुम चुनाव जीत गए तो वित्तमंत्री बनोगे। अर्थात् तुम्हारे हाथों में क्षमता आ जाएगी। तुम जैसे

असली देशवासी यदि क्षमता की डोर से बंध गए तो संगठन का काम क्या कालू राय जैसे नकली लोग देखेंगे ?

जीवन में दूसरी बार आदर्शवाद से उद्‌बुद्ध हुए। इसलिए चुनाव जीता और वित्तमंत्री बना कालू राय। भुवन बने पार्टी के जिला संगठन अध्यक्ष। धीरे-धीरे कालू राय और उसके अपने लोग अध्यक्ष व सचिव बने। हालांकि भुवन को पूरी तरह हटाना संभव या आवश्यक नहीं था। वे बने सम्मानित कोषाध्यक्ष।

क्रमशः देशव्यापी राजनीति के प्रति लोगों का सम्मान कम होने लगा। एक ओर राजनीति मात्र क्षमता प्राप्ति का मार्ग बनी तो दूसरी ओर जनता उस स्थिति को संभालने के बदले मौका मिलते ही राजनीतिज्ञों की खिल्ली उड़ाने, खिंचाई करने की कोशिश व उत्साह में अपना गणतांत्रिक कर्तव्य खो बैठी।

भुवन प्रथम दल में शामिल नहीं हो सके। परंतु जनता के आगे राजनीति के एक सुलभ प्रतिनिधि के रूप में परेशानियों से घिरे रहे।

धीरे-धीरे वे चिड़चिड़े हो उठे। क्षीरोद बाबू जानते थे—भैया सत्तारूढ़ नेताओं को अपनी ही तरह ईमानदार समझते थे, उनकी बातों को गंभीरता से लेते हुए उनकी ओर से लोगों के आगे सफाई देने जैसी मूर्खता करके लोगों के उपहास को भी महत्व दिया करते थे। इसलिए चिड़चिड़े होने के सिवाए उनकी और कोई गति नहीं थी।

उनके उसी तरह चिड़चिड़े व बौखलाए-से दिखने के दौरान ही क्षीरोदबाबू छह साल के लिए विलायत चले गए थे। वहां उन्हें भैया के चमत्कारपूर्ण पागलपन का विवरण मिला था।

शहर में हो रहा था कोई उप-चुनाव। इस बार कालू राय के मार्ग में था एक विशेष गर्जन-वीर प्रतिद्वंद्वी। कालू राय भी आक्रामक रूप से गर्जन-वीर का मुकाबला कर रहा था।

वोट पड़ने के लगभग दो दिन पहले आधी रात को राय ने आकर भुवन को जगाया। दुमंजिले में एक किनारे बने भुवन के कमरे में जाकर उन्हें एक नया सूटकेस पकड़ाते हुए कहा, 'यह तुम्हारे पास सुरक्षित रहेगा। काफी विस्फोटक कागजात हैं इसमें—परसों रात जरूरत पड़ेगी इसकी।'

जीप में बैठते समय कालू राय ने अपनी जेब से दो चाबियां निकालीं और उनमें से एक चाबी भुवन को देते हुए कहा, 'डुप्लिकेट तुम रखो।'

घंटे भर बाद भुवन के पानी का घड़ा सूटकेस पर ढनग गया और सूटकेस कुछ गीला हो गया।' 'कागजात' खराब होने की आशंका से भुवन ने सूटकेस खोला।

उसके बाद कुछ देर तक सुन्न रहकर उन्होंने कालू राय को फोन किया।

'क्या बात है ?' कालू राय ने थकी हुई आवाज में पूछा।

'तुमने कहा था कागजात—इस सूटकेस में तो नोटों की गड्डियां हैं।'

'मैंने क्या सिर्फ कागजात कहा था ? कहा था विस्फोटक कागजात—हाः हाः -पर हुआ क्या ?'

'कुछ नहीं, पर मैं सोचता हूं कि ये लगभग पचीस हजार होंगे।'

'हाः हाः, उससे भी अधिक हैं भुवन बाबू, बहुत अधिक हैं।'—कहा कालू राय ने। वे जानते थे कि भुवन बाबू को गोपनीय बातें बतानी उतनी ही सुरक्षित हैं जितनी कि घर की पालतू बिल्ली को।

'क्या पचास ?'

उससे भी अधिक हैं ! आप महापुरुष हैं, आपको उससे क्या लेना देना ?'

'क्या एक लाख ?'

'हो सकता है। किसी शुभचिंतक ने दिए हैं।'

'इसका करेंगे क्या ?'

'मैंने कहा तो था, परसों रात काम आएंगे।'

'क्या लोगों को रिश्वत देंगे ? इसका मतलब लोग जो कुछ कहते हैं, वह सच है ?'

'हेः हेः भुवन बाबू, आपसे पार पाना बड़ा मुश्किल है। जाइए, सो जाइए।'

भुवन सोए नहीं। रिक्शे में सूटकेस रखकर रात दो बजे स्थानीय अनाथाश्रम के सेक्रेटरी से मिलकर पचीस हजार रुपए देते हुए बोले, 'बच्चों को ठीक से एपल और अंगूर खिलाइए। दो-चार दुधारू गाय खरीदिए।'

रात तीन बजे उसी शहर में स्थित राज्य के सबसे बड़े विधवाश्रम की संचालिका के हाथों में चालीस हजार रुपए देते हुए बोले, 'आपके यहां सौ अंतेवासी हैं—इससे उन सबके लिए एक-एक साइकिल की व्यवस्था हो जाएगी।'

भोर साढ़े चार ब   की आवाज तथा एलसिसिएन कुत्ते के जवाब से घबराकर जिलाधीश के जगने पर भुवन ने उन्हें चौंतीस हजार रुपए देते हुए कहा, 'ये रुपए प्रधानमंत्री के राहत कोष में भिजवा दीजिए।'

उसके बाद घर पहुंचकर सूटकेस से बाकी के हजार रुपए रिक्शेवाले को देकर विदा कर दिया।

यथासमय कालू राय ने गुस्से में भुवन बाबू की कमीज फाड़ दी और तीन बार जीतने के बावजूद इस बार चुनाव हार गए। पार्टी का अनुशासन तोड़ने तथा मानसिक स्थिति ठीक न होने का आरोप लगाकर भुवन की सदस्यता समाप्त कर दी गई।

क्षीरोद बाबू चाय खत्म करके बाथरूम की ओर जा रहे थे। पीछे से सुनाई दिया अंतरंग कंठ स्वर, 'आ गया रे ? रहने दे, रहने दे, बैठ !'

भुवन का स्वर पहले जैसा तेज था। हृदय से निकली शब्दावली की ध्वनि को कंठ के पास कोई जान-बूझकर नियंत्रित नहीं करता, एकाध शब्दों को धक्का

देकर हृदय की गहराई में डालकर मगज के भीतर से शब्द खींचकर खाली जगह नहीं भरे जाते।

'सुबह-सुबह निकलकर कम से कम दस मील घूमना पड़ता है। तुझे कउ मछली अच्छी लगती है ना। छह सालों से तूने नहीं खाई होगी। तीन गांव ढूढने के बाद इतनी मिली हैं।'

भुवन 'घूमा', 'ढूंढा' आदि न कहकर घूमना या ढूंढना पड़ा जैसी अभिव्यक्ति के जरिए अपने व्यक्तित्व को अंतराल में रखते हैं।

'क्यों किया इतना कष्ट ?' क्षीरोद ने कहा।

'अब आजकल कष्ट कोई नहीं करता। इसीलिए मैं तेरे आने की बाट जोह रहा था। तेरे आने के बाद हम साथ मिलकर कष्ट करेंगे। गरीब और असहाय लोग काफी कष्ट भोग रहे हैं। तू मेरे साथ गांवों में जाएगा, उनकी सेवा करेगा, दवाइयां देगा। हालांकि तू रुपए भी कमाएगा। मैं बांटूंगा। रुपयों को सेवा में लगाने में जो आनंद है, सहेजकर रखने में कहां ? लोग समझते ही नहीं।'

भुवन अनर्गल कहे जा रहे थे। चेहरे का आधा हिस्सा गुस्से से लाल था। क्षीरोद बाबू को दुःख हो रहा था, अच्छा भी लग रहा था। भुवन की बातें क्रमशः अधिक से अधिक असंबद्ध हो चली थीं। रुपए सहेजकर रखने के प्रसंग में एक लोभी कंजूस की हास्यास्पद कहानी कहने लगी। उसके बाद भागवत से सैकड़ों पंक्तियां उद्धृत कर गए। फिर चला भारत के अतीत तथा भविष्य का प्रसंग।

चुपचाप बैठे थे क्षीरोदबाबू। कभी भाई कितना मितभाषी और गंभीर हुआ करते थे। कभी-कभार ही इतने वाचाल होते थे।

क्षीरोद बाबू के चेहरे पर उभर आई थी दर्दभरी अन्यमनस्कता।

वही भाई हैं—जबकि आज उनकी उपस्थिति का अहसास ही नहीं हो रहा।

अन्यमनस्क क्षीरोद नहीं जान पाए कि कब भैया की बातें बंद हो गई थीं। क्षीरोद सिर झुकाए सिगरेट से लाइटर छुआ रहे थे। सहसा चौंक उठे। गाल पर पड़ा था एक जोरदार तमाचा।

भैया उठकर सामने खड़े थे। क्षीरोद उनका चेहरा ताकते रहे स्तब्ध हो।

भुवन बाबू ने गंभीर स्वर में डांट पिलाई, 'तुझसे कहा था ना, फिर कभी यह काम किया तो थप्पड़ खाएगा ?'

कहा था भैया ने। बालक क्षीरोद एक बीड़ी चुराकर धूम्रपान का परीक्षण करते समय भुवन के सामने पड़ गया था। भुवन ने उसका कान पकड़कर थप्पड़ मारने को हाथ उठाया था, पर जड़ा नहीं। सिर्फ आगाह करते हुए कहा था, 'फिर कभी यह काम किया तो जड़ दूंगा।'

चालीस साल बाद क्षीरोद बाबू सिगरेट फेंककर किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े थे। सामने खड़े थे भुवन। भुवन का चेहरा तमतमा उठा था। उन्होंने भग्नकंठ से कहा,

'ओह, तू कितना बड़ा आदमी बन गया है !'

'फिर कभी नहीं करूंगा ऐसी गुस्ताखी।'—क्षीरोद बाबू ने कोशिश करके अपनी सिसकियां दबा लीं। भैया ने उन्हें सीने से लगा लिया था।

बेटा और बहू अंदर आए। वे स्तब्ध हो खड़े हो गए।

'आजकल मैं कितनी गलतियां कर रहा हूं। क्षीरोद ! मैं जानता हूं, ये सभी लोग मुझे पागल समझते हैं, समझा ? भला इसमें इनकी क्या गलती है ?' भुवन ने कहा।

'इनकी गलती नहीं तो फिर किसकी गलती है ?' कठोर स्वर में कहा क्षीरोद ने।

'हमने तो कभी ऐसा नहीं कहा !' अपराधी-सा कहा बेटे ने।

'भैया ! आप मेरे साथ बंबई चलेंगे। मैं वहां रुपए कमाऊंगा—आप बांटिएगा। मुझे सहेजकर रखने का शौक़ नहीं है। और वह मिसनरी संस्था है। सप्ताह में मेरी दो दिन की छुट्टी है। चलेंगे हम शहर की झुग्गियों में, आसपास के गांवों में। लोगों की सेवा करेंगे। दवाइयां बांटेंगे।' क्षीरोद बाबू एक ही सांस में कह गए।

मानो यह एकमात्र स्वाभाविक प्रस्ताव हो, इसे हू-ब-हू स्वीकार करते हुए भैया ने कहा, 'ठीक है, चल अब जाकर नहा-धो ले, कउ मछली की भुंजड़ी खाना।'

पृथ्वीराज का घोड़ा

जब भी मुकुंदजी किसी बलवान और दीर्घकाल व्यक्ति को देखते, उसकी ओर देखकर जरा-सा मुस्कुरा देते—अभिवादन करने की मुद्रा में। वे खुद दुबले-पतले और कमजोर थे, इसलिए सिर्फ व्यक्तिगत सुरक्षा की दृष्टि से ही वे ऐसा करते थे, यह नहीं कहा जा सकता। उनके अव्यक्त उद्देश्य को भाषा में अनुवाद किया जाए तो वह इस तरह होगा—अहा ! इस यातनाभरी दुनिया में ये बलवान और दीर्घकाय लोग चाहें तो और भी बड़े-बड़े दंगे-फसाद कर सकते हैं। लेकिन ये लोग ऐसा नहीं करते। क्या ऐसे शालीन और विवेकपूर्ण आचरण के लिए ये सार्वजनिक कृतज्ञता पाने के अधिकारी नहीं हैं ?

ऐसे प्रत्येक तीन नमस्य लोगों में से यदि एक भी मुकुंदजी की मुस्कान स्वीकारने का संकेत देते—कुछ मुस्कुराकर या जरा सिर हिलाकर—तो मुकुंदजी बाकी के दो लोगों का अनमनीय आचरण भरा दुःख सहज ही भूल जाते थे। इसका अर्थ यह नहीं कि वे अनमनीय लोगों के प्रति श्रद्धा प्रकट करना छोड़ देते थे। उस दिशा में वे कम ढीठ नहीं थे। कई बार तो दूसरी या तीसरी मुस्कान से बलवान लोगों का दिल जीतने में कामयाब हो जाते थे।

मुकुंदजी नए-नए आए थे हरितपुर गोस्वामी अकादमी में इतिहास-अध्यापक के रूप में। आवास मिला था विद्यालय से ढाई मील दूर। उसके लिए असंतुष्ट होने की बात तो दूर, उन्हें बल्कि खुशी थी उस बात की। हरितपुर एक छोटा कसबा होने के बावजूद एक ऐतिहासिक शहर है। आवास से विद्यालय के बीच आवाजाही के दौरान जहां तक संभव होता वे अलग-अलग रास्ता अपनाते थे। मुख्य सड़क छोड़कर वे छोटे-छोटे गली-कूचों का चक्कर लगाकर झटपट सड़क पर लौट आते थे। कौन जाने पुराण युग में किसी ऋषि ने यहीं यज्ञ कुंड बनाया हो ! कौन जाने—इन पुरानी इमारतों में किसी बहुत पुराने किले या रनिवास से निकले पत्थरों के टुकड़े छुपे हों !

उनके पास समय का अभाव नहीं था। वे घर के पास ही एक छोटे से होटल में खा-पी लेते थे। रहते थे अकेले। विवाह के लिए जितने प्रस्ताव आए थे, उन्हें लगा सबमें कन्याएं उनसे बलवान थीं। सातवें या आठवें प्रस्ताव के बाद उन्होंने

विवाह न करने की घोषणा कर दी थी। कहने की जरूरत नहीं कि इसके लिए उन्होंने जो तर्क दिए थे, उनमें कन्याओं का बल भी शामिल था।

वे जब भी किसी विद्यालय में गए हैं, वहां पवित्र सज्जन के रूप में लोगों के श्रद्धा के पात्र हुए हैं। विदाई समारोह में हर बार छात्र वक्ताओं ने सजल आंखों से निष्कपट रूप से यह स्वीकार किया है कि उन जैसा निर्मोही भद्र व्यक्ति होना ही उन सबके जीवन का परम लक्ष्य है, मुकुंद का चरित्र ही उन सबके लिए आदर्श का ध्रुव तारा है।

शिक्षक के रूप में भी वे बड़े प्रभावशाली थे। मृत अतीत को वे गुदगुदी करके जिंदा कर सकते थे। खासकर अतीत के वीर राजा-रानियों के बारे में बताते समय वे भावुक हो उठते थे और छात्र-छात्राओं को भी भावुक कर देते थे। उनके सबसे प्रिय वीर थे पृथ्वीराज। जब वे इतिहासकारों को पृथ्वीराज-संयुक्ता के नाटकीय अध्याय को घटिया रूप से वर्णन करते सुनते तो उन्हें ठेस पहुंचती। उस प्रसंग को वे जान लगाकर प्रस्तुत करते हुए अरसिक इतिहासकारों से बदला लेते थे। पहली पंक्ति में बैठे छात्रगण उनका रोमांच आंखें फाड़कर देखा करते थे।

उस दिन क्लास से बाहर जाते समय उन्होंने सुन लिया था एक छात्र दूसरी छात्रा से कह रही थी : 'लगता है सर की पृथ्वीराज से अपने किसी पूर्वजन्म में काफी घनिष्ठता रही है।'

जीवन में इतना सुचिंतित, इतना चमत्कार विचार उन्होंने नहीं सुना था। वे सिहर उठे, उच्छ्वसित हो उठे, कृतज्ञ अनुभव किया था।

उस दिन हाल ही में ढूंढ़ निकाले नए रास्ते से आने के कारण वे दुगुने उत्साह में थे। उस रास्ते में उन्होंने देखा था एक विशाल-दर्शन व्यक्ति को। वाकई उस तरह के दुर्लभ व्यक्ति से मन ही मन मुस्कराते हुए बतियाना कितना बड़ा अवसर है।

पहली बार तो लगा कि वह आदमी उनकी मुस्कान समझ नहीं पाया है। दूसरी बार समझकर वह चकित हुआ था। तीसरी बार भी स्थिति में बदलाव नहीं आया था। उससे हताश होने के बदले मुकुंद उस आदमी की ओर अधिक से अधिक आकर्षण महसूस करने लगे। चौथी बार उसका निचला होंठ कुछ फैल गया था। अत्यंत बलवान लोगों के लिए शायद वही रही होगी सौजन्य प्रकट करने की रीति—कुछ को दिलासा देते हुए कहा था मुंकुद जी ने।

कौन है यह आदमी ? क्या करता होगा ? उसकी लाल-लाल आंखों से तो यही लगता था जैसे कुछ अरसे पहले तक रोजाना दो-चार नरहत्या करना ही उसका पेशा रहा हो। उसके हट्टे-कट्टे तथा पत्थर जैसे डील-डौल से लगता मानो वह किसी पर्वत का जवान बेटा हो। वस्तुतः मुकुंदजी ने मन ही मन उसका नामकरण किया था।

'पर्वतपुत्र।'

मुकुंदजी यथासमय सही जगह पहुंच चुके थे। एक बहुत पुराने आधे पत्थर आधे ईंट से बने मकान के चतूबरे पर वीर हनुमान की तस्वीर लगे किवाड़ के आगे बैठा था पर्वतपुत्र। नीचे चार-पांच ताकतवर लोग बैठे ताश खेल रहे थे। वे सभी दूर-दराज के लोग हैं शहर के अलग-अलग इलाकों में रहकर जीविका निर्वाह करते होंगे। लग रहा था कि बंधु-मिलन के अवसर पर एकत्र हुए हैं।

जैसे ही पर्वतपुत्र ने मुकुंद की ओर देखा, मुकुंदजी यथा-रीति मुस्कुराए। पर्वतपुत्र ने तुरंत छलांग लगाकर उनकी बांह पकड़ ली। मुकुंदजी को लगा जैसे उनकी बांह सहसा पिघल गई है।

'मेरी ओर देखकर क्यों मुस्कुराया करता है ?' उस आदमी ने अपनी भाषा के साथ मुकुंदजी की भाषा मिलाकर सवाल किया।

मुकुंदजी चुपचाप खड़े रहे। बड़ा अप्रत्याशित था वह सवाल और व्यवहार। किंकर्तयविमूढ़ता का ऐसा तीखा अनुभव जीवन में कभी नहीं हुआ था।

खिलाड़ी लोग ताश रखकर देखने लगे। मुकुंदजी को लगा कि बाघों का एक समूह उन पर घात लगाए बैठा है—उनका कौन-सा अंग कौन दबोचेगा, चुपचाप हिसाब लगा रहा है।

'मजाक समझ रहा है ?' पुनः सवाल किया पर्वतपुत्र ने।

मुकुंदजी ने एक मरणांत चीत्कार की। पर्वतपुत्र ने चौंककर उनकी बांह छोड़ दी। मुकुंदजी भागे वहां से। आश्चर्य ! किसी राक्षस खिलाड़ी की प्रचंड रैकेट से चोट खाए बैडमिंटन कॉर्क की तरह से वहां से सांय-सांय भागते चले जा रहे थे।

'क्यों साहब, क्या हुआ, दौड़ क्यों रहे हैं ?' सड़क के दोनों ओर से किसी-किसी ने पूछा। किंतु मुकुंद जी भागे चले जा रहे थे।

घर पहुंचकर वे लेट गए। उन्हें बड़ा अजीब लगा था। आठ-आठ बार विवाह प्रस्ताव से बचकर निकल आए, अपनी उम्र से दस वर्ष छोटे दिखनेवाले वे एक सुविदित सज्जन व्यक्ति हैं। उस घड़ी भी कलिंग युद्ध एवं चंडाशोक का धर्माशोक में बदलने का संभाव्य साल, कनिष्क का राज्यकाल, ड्युप्ले-क्लाइब संघर्ष का समय साफ-साफ याद कर पाने वाले एक सुयोग्य शिक्षक थे। भविष्य में एक सांस्कृतिक व्यायाम केंद्र के प्रतिष्ठाता-अध्यक्ष बनने के स्वप्नद्रष्टा थे वे। पर आज कुछ मनुष्य-बाघों ने अचानक उनके बहुमुखी प्राण हर लिए होते।

वे उत्तेजित हुए। उठकर बैठ गए। कांपने लगे और चहलकदमी करने लगे।

'किसने हर लिए होते मेरे प्राण ? कौन हूं मैं ? कितना पुरातन है यह प्राण, अबध्य !' उन्होंने खुद ब खुद साहस जुटाया। याद आ गया उस छात्रा का मधुर वक्तव्य मानो वे पृथ्वीराज द्वारा संयुक्ता के हरण के प्रत्यक्ष साक्षी हों।

वाकई। भला यह सच क्यों नहीं हो सकता ?

एक अनिवार्य आकर्षण उन्हें फिर से बाहर ले गया। अदम्य उत्साह से वे पुनः दौड़ने लगे नदी किनारे रास्ते में।

'त्रिकालज्ञ, भृगु संहिता विद्, पूर्वजन्म ज्ञान प्रवीण, काली-साधक, तांत्रिक-साधक श्री पुरंदर शर्मा' लिखे साइन बोर्ड पर एक धीमी रोशनीवाला बल्ब लटका हुआ था। किवाड़ कुछ खुले थे। पहले कई बार मुकुंद उस घर में घुसने की सोच चुके हैं, आज घुस गए।

पोथी में डोरी बांध रहे थे त्रिकालज्ञ। उन्होंने पैनी निगाह से देखते हुए पूछा, 'क्या है ?'

सामने बैठ गए मुकुंद। 'मेरे पूर्व जन्म की बात।' मुकुंद जी ने जवाब दिया।

'आज तो भृगुसंहिता में डोरी बांध चुका। एक बार बंध जाए तो फिर सूर्योदय से पहले नहीं खुलती—सम्राट पंचम जॉर्ज कहेंगे तो भी नहीं। आधा राज्य दे दें तो भी नहीं। किंतु'

'सिर्फ इतना ही कि चौहान वंश के अंतिम राजा पृथ्वीराज के समय मैं क्या था...'

'ओह...दस रुपए।'

मुकुंदजी ने पोथी के पास पैसे रख दिए। उत्सुकता से उनका वक्ष और कंठ रुद्ध हो आया था। जन्म तिथि और घड़ी पाटी पर टीपकर त्रिकालज्ञ ने कुछ जोड़-घटाव किया और नाक पकड़कर आंखें बंद करके कुछ उच्चारण करते हुए मानो उसका अनुच्चरित उत्तर सुना।

'तू था।'—उन्होंने आंखें खोलते हुए कहा।

'क्या था...महोदय ? क्या स्वयं पृ. पृ.'

'तू था पृथ्वीराज का घोड़ा, वत्स ! जा, फिर कभी आना। केवल प्रथम प्रश्न के लिए दस बाकी के प्रश्नों का जवाब पांच-पांच रुपयों में पा जाएगा।'

त्रिकालज्ञ उठकर खड़े हो गए और उन्होंने मुकुंद जी की पीठ थपथपाई।

'इसी पीठ पर कभी तूने पृथ्वीराज को बिठाया था।' उन्होंने कहा !

'संयुक्ता को भी तो !'

त्रिकालज्ञ ने समर्थन सूचक मुद्रा में सिर हिलाया। ऐसा लगा जैसे कि संयुक्ता के बारे में उन्हें जानकारी नहीं थी। फिर भी उन्होंने कहा, तू था अश्वादपि अश्व।'

मुकुंदजी बाहर चले आए। एक नया सिहरन फैल गया था उनके पूरे शरीर में। अब यह बात स्पष्ट हो गई थी कि वे पर्वतपुत्र के चंगुल से खिसककर इतनी तेजी से किस तरह दौड़ रहे थे । जन्मांतर का संस्कार था। उनकी जिस चीत्कार से घबराकर शत्रु ने उनका हाथ छोड़ दिया था, वास्तव में वह विस्मृत हेसारव का अचानक विस्फोट था।

पृथ्वीराज का घोड़ा ! पृथ्वीराज का घोड़ा ! कितना तेज, बुद्धिमान होगा !

रात्रि का प्रथम प्रहर लगभग बीत रहा था। चांद आकाश को वश में करता जा रहा था। वे पुनः दौड़ने लगे। दो पैरों की कमी होने पर भी उन्हें लग रहा था वे घोड़े की तरह दौड़ रहे हैं। नदी-तट पीछे छोड़ अर्ध आलोकित बस्ती पीछे छोड़ते हुए वे जा पहुंचे थे वीर हनुमान के चित्र से मंडित एक टूटे घर के बरामदे पर।

उन्होंने खिड़की से देखा। लालटेन की टिमटिमाती रोशनी में बैठा पर्वतपुत्र रोटी चबा रहा है।

वे झट किवाड़ धकेलकर अंदर घुस गए। चौंकते हुए देखा पर्वतपुत्र ने।

'तूने मुझे समझ क्या रखा था ? जानता मैं कौन हूं ? पैरों से कुचल-कुचलकर मैं तेरा बुरादा बना सकता हूं ? देखेगा ? चल आ उठकर, दिखाता हूं।' मुकुंदजी ने कमर में दोनों हाथ रखकर कहा।

पर्वतपुत्र के गले में रोटी अटक गई थी। वह गुर्राने लगा।

दीवार के आईने में मुकुंदजी ने अपना धुंधला चेहरा देखा। अपना भयंकर रूप देखकर वे चकित हुए और अट्टहास कर उठे।

'तू सोचता था हाथ मोड़कर मुझे डरा देगा ! गोस्वामी अकादमी के एक साधारण से मास्टर को हड़काना कौन-सी बड़ी बात है, क्यों ! अरे भूत, अरे अतिकाय अज्ञानी ! तू बैठा रोटी क्या चबा रहा है रे ! मैं तुझे चबाकर शर्बत की तरह गुटक जाऊंगा।'

मुकुंदजी दो कदम आगे बढ़े और पर्वतपुत्र की एक बांह पकड़कर जोरदार झटका दिया। पर्वतपुत्र वहीं लुढ़क गया।

फिर से हंसते हुए मुकुंदजी बाहर चले गए। घर पहुंचकर शांति से सो गए।

दूसरे दिन भूगोल शिक्षक की अनुपस्थिति के कारण उस क्लास में 'चेरापूंजी में अधिक बारिश' विषय समझाते समय हेडमास्टर साहब का बुलावा आया। कॉमन रूम में इकट्ठे थे सारे शिक्षक।

मैनेजिंग कमेटी के वृद्ध प्रेसिडेंट ने सबको संबोधित करते हुए कहा, 'अजीब बात है—क्या कहूं ! खुद को हमारे स्कूल का शिक्षक बताते हुए कल आधी रात को किसी गुंडे ने नौकरी की तलाश में आए एक लाचार प्रवासी की पिटाई कर दी है। अपनी एसोसिएशन के सेक्रेटरी के साथ वह मुझसे मिलने आया, मैंने कहा कि अपने शिक्षकों की परेड करवा दूंगा—वह जान ले कि हममें वैसा दुर्दांत कोई नहीं है।'

वृद्ध कुछ मुस्कुराए और खिड़की के पास जाकर चश्मा पोंछते हुए बाहर खड़े पर्वतपुत्र और उसके गार्जियन को अंदर आने का इशारा किया।

मुकुंदजी को लगा कि पर्वत पुत्र कांप रहा है। सहमा हुआ-सा उसने शिक्षकों की ओर देखा। मुकुंद जी पर निगाह पड़ते ही वह चौंक उठा।

'यही है ! यही है वह !' उसने रोते हुए-सा कहा।

'कौन, मुकुंद बाबू ?'—मैनेजिंग कमेटी के प्रसिडेंट ने पूछा।

ठहाका मारकर हंस पड़े अठारहों शिक्षक। प्रेसिडेंट भी हंसे। 'तुम यदि मेरी ओर संकेत करके कहते कि मैं ही वह गुंडा, तो भी उसका कोई अर्थ होता।' अपनी राय दी वृद्ध ने। उसके बाद पर्वतपुत्र के गार्जियन की ओर देखकर गंभीर होते हुए बोले, 'मेरी राय मानिए। इसे अस्पताल ले जाइए। मुझे शक है...' उन्होंने दिमाग की ओर संकेत किया।

जब पर्वतपुत्र अपने गार्जियन के साथ रोता हुआ-सा जाने लगा, शिक्षकों ने कोलाहल करते हुए मुकुंदजी को चारों ओर से घेरकर इस तरह ठहाका मारकर हंसा कि आधे फर्लांग की दूरी पर कर्त्तव्यरत लगभग बहरा दरवान तक चौंक उठा।

वर्षा

तीस साल बाद जयपाल रोमांचित हुए थे। नदी की अति मृदु तरंगों और ऊपर बेपरवाह विहंग दल के साथ-साथ ठंडी-ठंडी हवा में अनायास ही कोई भूला गीत उनकी स्मृति में गूंज उठना चाहता था। उसके बोल ढूंढने के दौरान उन्होंने प्रस्तावित कारखाने के दो भावी हिस्सेदारों से कहा, 'मैं यहां कुछ देर बैठता हूं, तुमलोग जाकर उसका पता लगाओ।'

एक ओर हरे-भरे मैदान और दूसरी ओर नदी। वे एक लकड़ी के ठूंठ पर बैठ गए। जिसकी मदद से उनलोगों को वहां जमीन खरीदनी थी, उसी दलाल की तलाश में दोनों दोस्त कार लेकर मैदान के उस ओर गांव की तरफ चले गए।

जयपाल नदी के वक्ष पर अपनी निगाह टिकाए बैठे थे। स्वरलिपि की एक पंक्ति उभरी हुई दिखती तो दूसरी पूरी तरह मिटी हुई। फिर भी स्मृति में उतना ही आलोड़न था, खूब मधुर।

उनके मन का आलोड़न मानो सचमुच प्रतिबिंबित हो रहा था नदी के वक्ष पर। क्षण भर पहले की मृदु लहरें यथाशीघ्र उत्ताल लगने लगी थीं

जयपाल चौंके—आकाश, विशाल बादलों के टुकड़ों के बीच पर्वतमय दिख रहा था। जयपाल के सिर के बीचों-बीच जहां गंजेपन का विकास हो रहा था, वहीं पड़ी वर्षा की एक बूंद। वे सिहर उठे; एक शब्दहीन शीतल विस्फोट की कौंध ने उनके समस्त स्नायु में कंपकंपी फैला दी।

खड़े होकर फिर से ऊपर की ओर देखते ही वर्षा की असंख्य बूंदों ने उनका पूरा चेहरा बींध डाला। वे घबरा गए। बारिश सहन करना वे कब का भूल चुके थे। घबराते हुए उन्होंने इधर-उधर देखा। निकट ही एकमात्र बरगद के सिवाय उन्हें और कोई आश्रय नहीं दिख रहा था।

वे दौड़े। दौड़ना भी भूल चुके थे। उनके लिए दौड़ने को सदा तैयार रहते थे अनेक वाहन, अनेक वाहक।

दौड़ते हुए वे बरगद के नीचे पहुंचे और उसकी विशालता देख आश्वस्त हुए। ऊपर से ऊपर व्याप्त पत्तों की इतनी घनी परतों को भेदकर वर्षा उन पर जुल्म ढाए, उससे पहले ही कार और बंधुद्वय लौट आएंगे, उन्हें यह उम्मीद थी।

लेकिन उस आश्वस्ति को आतंक में बदलने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। पेड़ की मोटी-मोटी जड़ों पर एक खोह की दोनों ओर बैठे जलती आंखों से जो दो तंदुरुस्त लोग उनकी ओर टकटकी बांधे देख रहे थे, मानो उन्हीं दो लोगों की इच्छा से प्रकृति जयपाल को उस जगह ले लाई हो।

जयपाल उन दोनों के अस्तित्व को अस्वीकारने का अभिनय करते हुए हाथ उठाकर घड़ी की ओर देखने लगे।

'साहब !'

'क्या है ?' उन दोनों की ओर जरा-सा देखते हुए जयपाल ने पूछा।

'कीमती है घड़ी ?' कुछ ज्यादा तंदुरुस्त व्यक्ति ने पूछा।

चौंक उठे जयपाल। उनकी आशंका सही लगती है। ये लोग गुंडे हैं। उन्होंने वह हाथ पैंट की जेब में डाल लिया जिसमें घड़ी पहन रखी थी। पर वे समझते थे—अब कोई लाभ नहीं, विलंब हो चुका है। घड़ी कितनी सस्ती हुई होती कि वे लोग मुंह फेरकर अपनी राह चले जाते ? घड़ी की कीमत के बारे में वे झूठ कह भी दें तो भला वे लोग जाएंगे क्यों ?

'कीमत के बारे में पूछ रहे हो ? मतलब...'

जयपाल के बोल नहीं फूट रहे थे। सिर्फ दो दिन पहले बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की बैठक में उनका विद्वतापूर्ण अभिभाषण सुनकर जिन लोगों ने वाहवाही की थी, वे सहसा उनलोगों से घृणा करने लगे।

जयपाल ने जेब से हाथ निकालकर घड़ी की ओर देखा। दुनिया की मशहूर कीमती घड़ियों में है यह घड़ी, लेकिन यह घड़ी इन दोनों गुंडों को सौंपकर भी यदि इस संकट से बच जाएं तो भी उन्हें कोई अफसोस नहीं होगा।

बिजली की एक तेज कौंध सुन जयपाल की आंखें पुनः उन दोनों पर जा पड़ीं। उन दोनों की निगाहों की भयावहता ने उनके खून को शीतल कर दिया। सिनेमा में देखे कई भयावह अपराधियों के चेहरे उन्हें याद आ गए।

वे यथाशीघ्र अपनी दृष्टि कहीं और डालने को बेचैन हुए। उस क्षण जिन चीजों पर उनकी दृष्टि कुछ देर को रुक सकती थी, उनमें से एक थी पुलिस वाहिनी अर्थात् उनकी दुनिया को सुरक्षा प्रदान करने वाले रक्षक समूह।

बिना अधिक प्रचार किए जगह देख जाने के उद्देश्य से वे अपने साथ अंगरक्षक नहीं लाए थे।

काश ! कार जल्दी लौट आती। एक भागीदार की जेब में एक पिस्तौल है।

वे घबराए हुए से चारों ओर देखने लगे। बारिश का झीना पर्दा कारागार की अलंघ्य दीवार-सा लग रहा था। यह भी लग रहा था, मानो ऊपर मंडराते बादलों में उन्हें मसल डालने के लिए किसी पैशाचिक शत्रु की मांसपेशियों का कंपन हों !

क्या वे भाग लें ? लेकिन उस दिशा में कोशिश करते ही ये दोनों गुंडे उन्हें

पकड़ लेंगे, भला इसमें कोई संदेह है ?

'साहब !'

'क्या है ?'

'बहुत रुपया है जेब में ? गड्डी है नोट की ?'

'क्या ?' जयपाल का हाथ शर्ट की ऊपरी जेब में चला गया। फिर बिजली के स्पर्श जैसी तेजी-से नीचे चला आया। काश, जेब की सारी संपत्ति लेकर भी यदि जेब के नीचे के हृदय को ये लोग अक्षत छोड़ देते !

'साहब की जेब में नोटों की गड्डी है !' बड़े गुंडे ने छोटे गुंडे से कुछ कहा और उसके बाद फिर कुछ कहा, किंतु जयपाल उसकी बाद की बात नहीं सुन पाए; वजह यह थी कि दो वर्ष हुए बीच-बीच में उनकी हृदय गति इतनी तेज हो जाती है कि कुछ सुनाई नहीं देता। अभी भी वही हुआ।

छोटा गुंडा तीर की तरह दौड़कर चला गया।

जयपाल का सिर चकराने लगा था। भीतरी सिहरन के साथ ऊपरी गरमी की वैसी तीव्र विरोधात्मक अनुभूति उन्हें कभी नहीं हुई थी। वे मूर्ख नहीं हैं। छोटा गुंडा जरूर कोई हथियार लाने गया है, वे पलक झपकते यह समझ गए।

हथियार की जरूरत ही क्या थी ? उनके दोनों निकट आते ही जयपाल अपनी घड़ी और नोटों की गड्डी निकाल कर दे देते। लेकिन बदमाश लोग कभी-कभी सिर्फ लूटकर ही खुश नहीं हो जाते। खून-खराबा से उन्हें सुकून मिलता है। यह बात उन्होंने अपने पुलिस कमीश्नर साहू से सुन रखी थी।

वर्षों की इतनी सावधानियों, सुरक्षा व्यवस्थाओं, जान-माल के तरह-तरह की बीमाओं का अर्थ ही क्या रहा, यदि जरा-सी वर्षा ही उनका सर्वनाश कर सकती हो !

बहुत दूर बिजली गिरने की ध्वनि क्रमशः शांत हो जाने पर परिचित कार की आवाज सुनाई दी। आह, मरे शरीर में जान पड़ जाना महज चौंकाने वाली कल्पना नहीं है, जयपाल ने स्वयं इसका अहसास किया है। सीने के भीतर की वह तेज गति कार के धीरे-धीरे ब्रेक लगाते हुए आकर पेड़ के नीचे खड़ी हो जाने की गति के साथ ताल मिलाकर शांत हो गई।

जयपाल दरवाजा खोलकर कार की सीट पर धम् से बैठ गए। अंदर काफी उमस थी, उन्होंने कांच नीचे किया।

उसी समय छोटा गुंडा लौट आया। यदि एक मिनट पहले वह वर्षा से फूटकर इस तरह निकला होता, तो जयपाल बेहोश हो गए होते।

'गाड़ी आ गई साहब ? अच्छा हुआ। साहब, आपकी कीमती घड़ी और नोटों की गड्डी भीग जाएगी सोचकर मैं छाता लाने दौड़ गया था। घड़ी पर रुमाल लपेट लिया था ना ? अच्छा किया ?'

चिप्पी लगा छाता अब जाकर खोला था उस युवक ने। जल्दी पहुंचने के लिए वह छाता अपने बगल में दबाए दौड़ता हुआ आया था।

'नमस्कार साहब !' बड़े गुंडे ने भी नजदीक आकर कहा।

हालांकि वर्षा के कारण कांच फिर उठाना पड़ा। जयपाल निश्चल बैठे हुए थे। सिर से सारी चिंताएं सहसा दूर हो गई थीं। क्षण भर पहले जिस तरह के दो विरोधात्मक सिहरन उन्होंने अंग-अंग में भोगा था, इस समय वही मन में भोग रहे थे। यह भी था अभूतपूर्व।

कार झिझक के साथ ऊबड़-खावड़ रास्ता पार करती सड़क तक जा पहुंची।

'क्यों भई जयपाल !' कार लगभग रोकते हुए दोनों भागीदारों ने एक साथ पीछे मुड़कर देखते हुए कहा, 'क्या तुम्हें सुनाई नहीं दे रहा ?'

'क्या ?' जयपाल संभलकर बैठ गए और वर्षा के छींटे पड़ने पर भी दोनों ओर के कांच नीचे कर दिए।

'उस दलाल से आज बात नहीं बनी। फिर कभी आएंगे ?'

'नहीं, अब नहीं आएंगे, हमें नहीं चाहिए यह जगह, 'जयपाल ने दृढ़ स्वर में कहा।

गाड़ी की गति तेज होते-होते फिर धीमी हो गई।

'क्यों ?' एक हिस्सेदार ने पूछा और चालक हिस्सेदार सुनने को कान डेरे रहा।

'फिर बताऊंगा।'

गति फिर तेज हो गई। जयपाल की प्रबल इच्छा हो रही थी, मैदान पार होने से पहले एक बार गाड़ी रुकवाकर वे वर्षा में खूब भीगेंगे, कीमती घड़ी और नोटों की गड्डी के बावजूद।

लेकिन उनके मित्र ऐसा नहीं करने देंगे—जबर्दस्ती ऐसा करने पर यह संदेह करेंगे कि दिमाग खराब हो गया है।

बल्कि वे दुबारा आएंगे अकेले। अभी तो बरसात की शुरुआत ही है।

यहां वे कभी नहीं लगने देंगे कारखाना। दीर्घजीवी हो वह बरगद, दीर्घजीवी हों बरगद के नीचे के वे लोग; दीर्घजीवी हो वह छाता।

उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। वर्षा में वह विशाल बरगद खो गया था, मां की गोद में बच्चा खो जाने-सा।

बेंत

उस दिन की उस बसंती सांझ की बात याद आते ही ग्रह-नक्षत्रों का योग और हम जैसे लोगों पर उन सबका प्रभाव मानो अवश्यंभावी है, एक ऐसा विचार मन में क्रमशः दृढ़ होने-सा लगता है।

हालांकि जब यह लेखक 'हम जैसे लोगों' की बात कहता है तब वह मानव समाज के एक व्यापक क्षेत्र की ओर संकेत कर रहा होता है। उस क्षेत्र में रामा, दामा, शामा से लेकर उच्चशिक्षित राम बाबू (जिन्होंने कि एडीशनल सेक्रेटरी तक पहुंच कर अवकाश ग्रहण करते ही बैरियों के षड्यंत्र की वजह से सेक्रेटरी न बन पाने के कारण यह कह सकने का साहस जुटा लिया था), दामबाबू (जो कि एक चतुर्थ श्रेणी के वकील के रूप में बीस साल तक काली टोपी पहनने के बाद सफेद टोपी पहनकर प्रथम श्रेणी के मंत्री हुए होंगे, लेकिन विपरीत स्थिति सच होने पर भी आश्चर्य की बात नहीं) और श्यामबाबू (जिनका परिचय यह हुआ कि वे एक विशिष्ट व्यक्ति हैं और लगभग सभी समितियों के पेशेवर सभापति हैं) जैसे लोग तक शामिल हैं। आध्यात्म मार्ग के यात्री या जिन लोगों के जीवन में प्रतिभा का अभूतपूर्व विकास हुआ है, उनकी बात भिन्न हो सकती है।

यह उस बसंती संध्या की बात है। शहर के प्रशस्त नदी तट पर जो कुछ जैसा घटित होना चाहिए वह हो रहा था। अलग-अलग उम्र के नर-नारी के जोड़े वायु-सेवन कर रहे थे। हम तीनों अपने हर रोज के सीमेंट की बेंच पर बैठकर उन विचरणशील जोड़ियों के प्रसाधन और वेश-भूषा से निकली महक का सेवन कर रहे थे। चनाजोर और बेलून बेचने वाले यथा-रीति अपना व्यापार करने में जुटे थे।

थोड़ी-सी दूर एक दूसरे बेंच पर एकाकी बैठे हुए थे सेवा-निवृत अध्यापक रूद्र बाबू, अपने बेंत पर दोनों हाथ और सिर टिकाए।

एक समय वह भी था जब रुद्रबाबू कई कॉलेजों के कड़े और गुस्सैल प्रिंसिपल के रूप में मशहूर थे। रुद्रबाबू जैसे प्राध्यापक सेवा-निवृति तक सही-सलामत बच निकलेंगे—यह नहीं सोचा जा सकता था।

खैर, मूंगफली चवाने के बाद घूम-घूमकर चाय बेचने वाले से एक-एक कप चाय पीने के दौरान अन्य दिनों की तरह सिनेमा या खेल समाचारों पर बातचीत

न करके सहसा न जाने क्यों हमने रुद्रबाबू पर निगाह टिकाई और न जाने क्यों किशोर ने रिंटू के समक्ष एक निर्दिष्ट प्रस्ताव रखा, वह बात सोचते समय ग्रह-उपग्रह के प्रभाव के सिवाय भला और कौन-सा तर्क संतोषजनक होगा ?

'रिंटू, यदि तू रुद्रबाबू को खिझा देगा, तो तुझे एक कप चाय और मिलेगी।'

रिंटू तैयार नहीं हुआ, ऐसा सोचकर कि एक कप चाय पर्याप्त नहीं है। इसलिए होटल में खिलाने के वायदे पर बात तय हो गई।

उठकर पैंट झाड़ते हुए रिंटू रुद्रबाबू के पास जाकर बैठ गया। रुद्रबाबू ने एक बार बेंत पर से ठोड़ी उठाकर उसकी ओर देखा और मुस्कुरा दिया।

'नमस्कार सर। आपके इस बेंत को देखकर मुझे ऐसा लगा...' रिंटू ने एक बार उद्देश्य भरी निगाह से हमारी ओर देखा। वृद्ध ने प्रश्नभरे अंदाज में एक बार सिर हिलाया ऊपर से नीचे की ओर।

'ऐसा लगा सर, शायद यह आपका जुड़वां भाई है। मतलब देखने में ठीक आपकी तरह।'

वृद्ध ने खांसा और कुछ मुश्किल से अपनी खामोशी तोड़ी, ऐसा लगा।

'नहीं, मेरा कोई जुड़वां भाई नहीं था। हम सात भाई हैं, बहन एक भी नहीं। मुझसे बड़े तीन भाई हैं। सबसे बड़े भाई डिप्टी मजिस्ट्रेट थे—हरिहर नाम सुना है ? उनसे बाद वाले भाई महेश, हेडमास्टर थे। उनके बाद महेंद्र, ठेकेदारी करते थे। तीनों मर चुके हैं। नीचे से भी...'

सर, मैं कह रहा था कि वह बेंत आप ही की तरह है देखने में। यह ऊपर से जिस तरह टेढ़ा है, आप भी...'

'यह बेंत है। टेढ़े हुए बिना भला इसकी बात कहां बनती है ? यह तो जन्म से ही टेढ़ा है। पर मैं तो उम्र की वजह से झुक गया हूं,' वृद्ध ने मुस्कुराते हुए समझा दिया।

'ठीक है सर, रखिए संभालकर आप अपना बेंत।'

रिंटू उठकर चला आया। हम उसकी दयनीय हालत देखकर हंस पड़े।

'चल, अब तू खिला चलकर।'

किशोर ने कहा, 'शर्त तो यह थी कि मैं वृद्ध को खिझा देता तो तू मुझे खिलाता। यह तो नहीं थी कि न खिझा पाने पर मैं खिलाऊंगा।

रिंटू ने विरोध करते हुए कहा।

'अरे, शर्त की स्वाभाविक अन्य दिशा क्या इतनी नहीं होती ?' मैंने कहा। गवाह के रूप में भोज से अपना प्राप्य छोड़ने के लिए मैं तैयार नहीं था।

सहसा हमारी शर्त बाधित हुई। हाथ में बेंत लिए रुद्रबाबू आकर हमारे सामने खड़े थे। खीझ के लक्षण तो दूर, बल्कि वे मुस्कुरा रहे थे।

'आज तुमने कितनी बड़ी बात कह डाली ! देख ली तुमने मेरे साथ इस

बेंत की समानता ! मानो हम यमक हों ! उपमा में जो दर्शन छिपा है, जिसने वह समझ लिया, उसके लिए ज्ञान का एक नया दिगंत खुल जाता है। हम कहा करते हैं कर-कमल, पलाशलोचन। कर के साथ कमल की वास्तविक समानता है ही कितनी ? क्या कभी कोई सामान्य-ज्ञान-संपन्न व्यक्ति अंगुलियों की तुलना पद्म-पंखुड़ी से कर सकता है ? और फिर पलाश से आंखों का भला क्या संबंध ? नहीं, यहां व्यावहारिकता या सामान्य ज्ञान का सवाल नहीं है। दो अलग-अलग चीजों में एक सूक्ष्म संबंध है। जब हम उपमा से चकित होते हैं, तब उस सूक्ष्म संबंध का ही अनुभव करते हैं। क्या तुम दर्शन के छात्र हो ?' वृद्ध ने रिंटू से पूछा।

'नहीं सर, क़ानून का।' हमलोग उठकर खड़े हो गए थे।

'तब तो इस सामने वाले हॉस्टल में रहते होगे। चलो।'

वृद्ध ने हमारा नेतृत्व संभालते हुए हमें उपमा, उपमेय के बारे में और भी कई महत्वपूर्ण बातें बताई। हॉस्टल के फाटक पर लगभग एक घंटे तक अपना भाषण देने के बाद वे चले गए।

हम रोएं या हंसें, समझ नहीं पाए।

कौन किसे खिलाएगा वाली समस्या भी अपने आप खत्म हो गई। हॉस्टल के मामूली खाने से ही हमें संतुष्ट होना पड़ा।

सुबह रिंटू के दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। देर से बिस्तर छोड़ना रिंटू की आदत थी। उसने खीझते हुए दरवाजा खोलकर देखा, सामने रुद्रबाबू खड़े मुस्कुरा रहे थे। नहा-धोकर साफ कपड़ों में वे पवित्र लग रहे थे।

'चलो प्रातः भ्रमण करेंगे। दो अलग-अलग चीजों में सूक्ष्म समानता क्या होती है, यह नहीं बताई है मैंने तुम्हें।'

'सर। अभी तो मैंने स्नानादि नहीं किया है।'

'तो मैं इंतजार करता हूं।' वृद्ध कुर्सी खींचकर बैठ गए।

रिंटू को यथासंभव शीघ्र तैयार होकर उनके साथ जाना पड़ा।

'कल तुमने एक और महत्वपूर्ण बात कही थी ! याद है ? मुझसे कहा था कि रखिए संभालकर आप अपना बेंत। वास्तव में बेटा, पोता और बेंत में क्या अंतर है ? तुम बेटे के साथ हो। तुमने सोचा लिया है कि बेटा तुम्हारी श्रद्धा-भक्ति करता है। तुम यही सोचते हो तभी बेटा तुम्हें प्यारा लगता है। यह तुम्हारी आसक्ति, तुम्हारी भावना के कारण है न कि बेटे का तुम्हारे प्रति वास्तविक मनोभाव क्या है, उसकी वजह से। तुम्हारी भावना तुम्हारी है। इसलिए बेटे के बारे में जो कुछ सोचते हो, बेंत के बारे में भी वही सोचना काफी है। वास्तविक दृष्टि से देखें तो भी, बेटा कभी-कभार बस कुछ ही देर को पास आकर खड़ा होता है, पर मेरा बेंत ? चाहते ही सहायता के लिए पास आकर खड़ा हो जाता है। बेटे पर मैं जितना

निर्भर करता हूं, निश्चित ही बेंत पर उससे अधिक करता हूं।'

वृद्ध ने इस तत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला।

उस दिन शाम को अपने उस प्रतिदिन वाले बेंच पर न बैठकर हमने एक दूसरी जगह तलाशी थी। हम बातचीत में मशगूल थे। कुछ ही दूरी से यूरेका जैसे उत्साह से पुकारा रुद्रबाबू ने, 'हलो, युवको।'

हमसे बतियाते हुए वे हमें हॉस्टल तक खदेड़ लाए।

अब वे रोजाना रिंटू को प्रातःभ्रमण के लिए ले जाने लगे। परीक्षा निकट आने लगी थी। पहले अप्रत्यक्ष रूप से और बाद में प्रत्यक्ष रूप से बताने पर भी रुद्रबाबू पर उसका कोई असर नहीं हुआ।

रिंटू घबड़ाने लगा। उसके लिए हम भी घबड़ाने लगे। बीच-बीच में वह किशोर को कोसता रहता। उसी के उकसाने पर वह उस वृद्ध को खिझाने गया था !

किशोर ने सुझाव दिया कि रिंटू कुछ दिनों के लिए हॉस्टल छोड़कर चला जाए। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं था।

हमने अपने एक शहरवासी सहपाठी से बात की। रिंटू उसके घर में मेहमान बन गया।

विडंबना यह थी कि सहपाठी के पिता रुद्रबाबू के छात्र थे। रिंटू को उनके घर गए अभी तीन ही दिन हुए थे कि उस सज्जन को रुद्रबाबू रास्ते में ही मिल गए और वे उन्हें चाय पिलाने अपने घर ले आए। फलस्वरूप रिंटू से वहां मुलाकात हो गई।

खुशी से फूले न समाते हुए वृद्ध ने कहा, 'तुमने मेरे साथ अन्याय किया जो मुझे बिना बताए वहां से चले आए। वे दोनों तुम्हारे कैसे मित्र हैं कि तुम्हारा पता भी नहीं जानते ? कम ढूंढा है मैंने तुम्हें ? बहुत कुछ कहना है तुमसे।'

वे किस हद तक बेंत में अपने अस्तित्व की प्रतिच्छवि देख रहे हैं—अपनी भावनाओं की प्रतिध्वनि सुन रहे हैं, अर्थात् बेंत किस तरह वास्तविक अर्थों में उनका बेटा है, चाय पीने के बाद उस दिन रुद्रबाबू ने रिंटू को नदी किनारे ले जाकर अपनी यह उपलब्धि सुनाई और दूसरे दिन फिर आने का वायदा कर गए।

रिंटू की हालत सोचनीय थी। परीक्षा को सिर्फ एक सप्ताह बचे थे। पूरे साल की पढ़ाई उन्हीं कुछ दिनों में कंठस्थ करने की योजना एक बसंती सांझ की सामान्य वाचालता के कारण ढह जाएगी, किसने की थी इस बात की कल्पना ?

दूसरे दिन एक अप्रत्याशित संदेश मिला।

जब रिंटू ने सुना कि रात को हृदय गति रुक जाने से वृद्ध का जीवनावसान हो गया, तब क्षण भर के लिए वह दुःखद समाचार उसे सुखद समाचार जैसा लगा था। हालांकि उसके बाद वह बहुत उदास हो गया था।

रिंटू हॉस्टल लौट आया।

तीन दिन बाद हॉस्टल के सामने एक चमचमाती कार आकर रुकी। उससे बाहर आए रुद्रबाबू के ज्येष्ठ पुत्र जो किसी विदेशी संस्था में काम करते थे। उनके साथ वकील।

'आप भुवन बाबू हैं ?' रिंटू को ढूंढ निकालने के बाद उसे उसके अच्छे नाम से संबोधित करते हुए कहा रुद्रबाबू के पुत्र ने। उसके बाद वकील के हाथ से बेंत लेकर रिंटू को पकड़ा दिया उसने। 'मेरे पिताजी कुछ दिन पहले एक विल कर गए हैं। हालांकि यह महज एक खयाल भर है। फिर भी, मैं यथासंभव उनकी इच्छानुसार काम कर रहा हूं।'

श्राद्ध पर भोज के लिए हमें निमंत्रण देकर वे दोनों चले गए। किंकर्तव्य विमूढ़-सा बार-बार उस बेंत की ओर देखने के बाद रिंटू ने उसे अपने कमरे में ले जाकर रख दिया।

रिंटू आधी रात तक पढ़ा करता था। उसके बगलवाला कमरा मेरा था। भय और विस्मय भरी एक अस्फुट ध्वनि सुनकर मैं उसके कमरे में घुसा। उसके सामने किताब खुली पड़ी थी। लेकिन वह एक उद्भ्रांत दृष्टि से ताक रहा था रुद्रबाबू की बेंत की ओर।

'क्या बात है ?' मैंने पूछा !

रिंटू चौंककर सहम-सा गया। उसने बेंत में रुद्रबाबू की आकृति देख ली थी।

किशोर भी आ गया था वहां। हम दोनों खूब हंसे और रिंटू को भी हंसाने की कोशिश करके चले गए।

भोर में किशोर ने आकर मुझे जगाया और चुपचाप अपने पीछे-पीछे आने को कहा।

रिंटू बेंत लेकर सुबह-सुबह टहलने निकला था। निर्जन नदी के किनारे-किनारे वह ठीक रुद्रबाबू की तरह चला जा रहा था।

हम उसके साथ-साथ चलने लगे। उसने चौंकते हुए देखा।

'कमाल है, तू इतनी सुबह-सुबह प्रातःभ्रमण के लिए कैसे निकल पड़ा ?' किशोर ने पूछा। रिंटू ने विह्वल होते हुए हमारी ओर देखा।

झट उसके हाथ से बेंत छीनकर किशोर ने नदी में फेंक दिया। उसके बाद तीनों चुपचाप उस ओर देखते रहे। बेंत बहता चला जा रहा था। उसका सिर बारंबार इधर-उधर डोल रहा था। उसकी वह भंगिमा मुझे और किशोर को बड़े जीवंत रूप से रुद्रबाबू की याद दिला रही थी।

मैंने रिंटू को झकझोरते हुए कहा, 'चल, उस रेस्तरां में। चाय पीते हैं।'

मंथर जल प्रवाह में उस बेंत की अनैच्छिक यात्रा का वह दृश्य इतने दिनों बाद भी कभी-कभी स्मृतियों में उभर आता है। तब लगता है मानो किसी आतर्किक प्रेरणा के वश में आकर किशोर ने उस बेंत को विसर्जित कर दिया था।

पिता और पुत्र

बारिश हो रही थी लगातार। कांच की खिड़की से होकर बीच-बीच में क्षितिज की गंभीरता अति स्पष्ट हो उठती थी, उसके बाद मानो कोई फूंककर सब कुछ मिटा देता था।

काफी समय तक समीरबाबू एकांत अतिथि-गृह से खिड़की के उस पार की दुनिया के रह-रहकर दृश्यमान और अदृश्य होने का खेल देख रहे थे। वास्तविकता और माया में कितना सूक्ष्म अंतर था, मानो यह बता रहा हो वह खेल।

बीच-बीच में चमक उठती थी बिजली। उस समय अवसर पाकर वास्तविकता खुद को कुछ अधिक मात्रा में जाहिर करती थी। किंतु उसके तुरंत बाद चारों दिशाएं मानो कुछ क्षणों के लिए अंधकाराच्छन्न हो जाती थीं, यह था माया के पक्ष में।

बीच-बीच में समीरबाबू खुद से सवाल किया करते : क्या सच है और क्या माया ?

पर्वत तक पसरा मैदान। मैदान के बीच में थोड़ी-थोड़ी दूर पर एक-एक ताड़ या खजूर के पेड़—मानो किसी ललित कविता की दो-तीन पंक्तियां दृश्य रूप धारण कर चुकी हों।

बीच-बीच में स्तूप से दिखाई दे रहे थे बड़े-बड़े पत्थरों के ढेर और झाड़ियां।

लेखक समीरबाबू सोच रहे थे, इस चमत्कार दृश्य को किस तरह की कहानी की पृष्ठभूमि के रूप में इस्तेमाल करना अच्छा होगा ? दूर बरगद के नीचे एक युवक युवती मिल रहे हैं—बारिश के पर्दे के अंतराल में वे लोग छिप गए थे—इस तरह की किसी रोमांचकारी घड़ी से—या बीच-बीच में सहसा तेज हवा से प्रकृति जिस तरह रोमांचकारी हो उठती है, उसी के वर्णन से कहानी की शुरुआत करना ठीक होगा ?

लेकिन उन्हें उस समस्या के लिए परेशान नहीं होना पड़ा। बारिश में बिजली की गति से एक बालक अतिथि-गृह की ओर दौड़ा चला आ रहा था। समीर बाबू ने उसे पांचवीं बार देखा था। दो घंटे पहले उन्होंने उसे सांय-सांय हवा के साथ उड़ते हुए देखा था। एक तेज बिजली दिगदिगंत चमकाते समय उस बालक को विश्राम गृह की ओर दौड़कर आते हुए उन्होंने दूसरी बार देखा था। बिजली अंतर्ध्यान

होने के बाद की प्रचंड गड़गड़ाहट में वह एक मिनट के लिए बरामदे में चढ़ आया था। गड़गड़ाहट खत्म होने के बाद वह मुस्कुराया। किंतु वह मुस्कुराहट कोठी के अतिथि के लिए नहीं थी। समीरबाबू को ऐसा लग रहा था कि हवा, बारिश और बिजली के प्रति अति आत्मीय था उस बच्चे का वह उल्लास।

किसी साहित्य सम्मेलन में उपहार के रूप में मिले कश्मीरी शॉल से खुद को ढकते हुए समीरबाबू बरामदे में चले गए। एक बार उन पर नजर डालने के बाद उस बच्चे ने अपनी नजरें लौटा लीं। जंगल के सीमांत पर बनी उस कोठी में विभागीय हाकिम या उनके संभ्रांत मित्रों के अलावा कोई आम आदमी नहीं रहता था। इसलिए असाधारण अतिथि की श्रेणी में आनेवाले समीरबाबू किसी अति मामूली बालक का ध्यान आकर्षित करेंगे, उनका यह सोचना स्वाभाविक है। किंतु जब उस बालक के हाव-भाव से यह स्पष्ट हो गया कि उस समय आकाश, पर्वत और मैदान में घट रही व्यापक तात्पर्यपूर्ण घटनाओं की ओर से नजरें हटाकर समीरबाबू के समक्ष समर्पण करना उसके लिए संभव नहीं है, तब वे कुछ हद तक हताश हुए।

'ए लड़के !' उन्होंने कुछ ऊंची आवाज में पुकारा।

उस बालक ने जिस ढंग से सिर्फ एक बार उनकी ओर देखा, उससे उनकी कश्मीरी शॉल, भरे-भरे चेहरे और ऐंठी हुई मूंछों की बात तो दूर, अपने गले की आवाज के जोर का प्रभाव तक फीका पड़ते देख उन्हें अच्छा नहीं लगा।

'क्या नाम है तेरा ?' समीरबाबू ने पूछा।

'नहीं मालूम।'

दूसरे ही क्षण हवा के तेज झोंकों में कोठी पर झुक आए आम के पेड़ के साथ थोड़ी ही दूर पर खड़े झांव के कुछ पेड़ों ने अनर्गल बातें करनी शुरू कर दी और उसी बीच मानो वह बालक मैदान में फुर्र से उड़ गया। एक टीला पार करके उसके अदृश्य हो जाने तक समीरबाबू हतप्रभ-से उसकी ओर ताकते रहे।

निकट ही रहने वाले एक लकड़ी-व्यापारी के घर से उनके लिए खान-पान उपलब्ध कराने की व्यवस्था वन-अधिकारी ने करा दी थी। क्षण में चाय-नाश्ता लिए हुए आ पहुंचा चौकीदार। वह आदिवासी है, अति गंभीर और कर्तव्यनिष्ठ। समीरबाबू को बार-बार यह लगता मानो वह उनका एक शिक्षक है।

उस अदृश्य बालक की ओर अंगुली दिखाते हुए समीरबाबू ने सवाल किया, 'कौन है वह ?'

'बेटा है।'

'अच्छा, बड़ा चंचल है तो ! क्या नाम है उसका ?'

'किसी भी नाम से वह नहीं सुनता, साहब।'

'तुम या उसकी मां उसको काबू में क्यों नहीं रखते ?'

'उसकी मां नहीं है, साहब।'

'ओ।'

कुछ दबने के बाद समीर बाबू ने पुनः कहा, 'ऐसी बारिश में क्या वह इसी तरह दौड़-फांद करता रहेगा !'

चौकीदार ने जवाब नहीं दिया। किंतु उसकी देखने की मुद्रा से समीरबाबू दुगुने दब गए। मानो वह उन्हीं से सवाल कर रहा था : क्यों न करे बच्चा यह सब ?

चौकीदार चला गया। किवाड़ उढालकर समीरबाबू आधे पढ़े उपन्यास के पन्ने पलटने लगे। स्वास्थ्य लाभ करने के लिए वे यहां सात दिन एकांतवास में पढ़ने के लिए सात किताबें साथ लाए हैं। तीन दिन बीत चुके हैं, एक भी खत्म नहीं हुई।

खत्म करने की उम्मीद भी उन्होंने छोड़ दी। क्योंकि उस बालक का सुदूर आकर्षण उन्हें बारंबार खिड़की से बाहर देखने को बाध्य कर रहा था। कांच से होकर साफ दिखाई न देने के कारण उन्होंने खिड़की खोल दी। बारिश में भीग कर लाचार दिखते दो कुत्तों ने बरामदे में आश्रय ले रखा था। खिड़की खुलते ही कुत्ते नीचे कूद पड़े। लेकिन उसी समय दौड़ते हुए बरामदे में चढ़ आया वह लड़का। कुत्ते भी उसके सान्निध्य के साहस से फिर से चढ़ आए।

पोशाक के रूप में एक फटा हाफ पैंट। बदन पर और कुछ नहीं। वह बतिया रहा था। पर उन दो कुत्तों से या पेड़ से, यह जानने का उपाय नहीं था।

तीव्र आकर्षण से, इस बार कश्मीरी शॉल के बिना ही समीरबाबू बरामदे में चले गए। हवा ने हालांकि उनकी कनपटी में एक थप्पड़ जड़ दिया, फिर भी वे उस लड़के की ओर बढ़ गए।

'क्या बोल रहा है ?' उन्होंने सवाल किया।

'बातें कर रहा हूं।'

'किससे ?'

बच्चे ने इस सवाल का जवाब नहीं दिया।

'अरे किससे बातें कर रहा हैं ?'

'खुद से।'

'बड़े अजीब लड़के हो ! अंदर आओ। मुझसे बातें करोगे ?'

'शाम को।'

'यदि तू नहीं करेगा, मैं करूंगा, चल आ।'

'शाम को।'

इस बार आकाश में ढेर सारी बिजलियां एक साथ कौंध गईं। मानो कोई महान जादूगर अपनी दसों धधकती अंगुलियां घुमाकर दुनिया को सम्मोहन निद्रा

में धकेलने का प्रयास कर रहा हो।

वह लड़का अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर तुरंत नीचे कूद पड़ा। जैसे कि वह स्वयं उन तमाम बिजलियों को पकड़कर ले आएगा—मानो उनमें उलझने का आनंद ही उसका एकमात्र लक्ष्य है।

वह बारिश में दौड़ रहा था। साथ-साथ दो कुत्ते। उनकी रफ्तार को शाबाशी देने की मुद्रा में हवा भी अचानक अपनी दिशा बदलकर बहने लगी—जैसे कि वह बच्चा ही आकर्षित कर रहा हो हवा को।

क्षण भर के लिए समीरबाबू माहौल भूलकर बरामदे से कूदने ही वाले थे। लेकिन हवा-बारिश की छड़ी की मार ने उन्हें शॉल की याद दिला दी। पीछे खिसकते हुए उन्होंने मैदान में देखा। वह बालक और दोनों कुत्ते अदृश्य हो चुके थे।

हालांकि बच्चे ने कहा है, शाम को आएगा। बादल और बारिश के कारण उस दिन का सारा समय ही शाम में बदल गया था। पर असली शाम होने में भी अब अधिक देर नहीं थी, समीर बाबू ने कलाई घड़ी देखते हुए समझा।

अंधेरा घिर आया था। बारिश थम गई थी, लेकिन हवा नहीं। आराम कुर्सी में बैठे समीरबाबू इंतजार कर रहे थे। न जाने कब नींद आ गई। शाम एक घंटा बीत गया। बरामदे पर किसी के आने की आहट सुनकर वे उठ गए और हड़बड़ाकर टेबुल-लैंप जलाया।

'देर हो गई, साहब।' टिफिन कैरियर टेबुल पर रखते हुए चौकीदार ने कहा, 'मुझे लकड़ी वाले साहब के घर पहुंचने में ही देर हो गई थी।'

'कोई बात नहीं। तुम्हारा बेटा कहां गया ?'

'चला गया, साहब।'

'कहां ?'

'चला गया। बिजली ले गई उसे।'

'नदी किनारे उसने खजूर के पेड़ को जकड़कर पकड़ रखा था। जब मैंने देखा, बिजली उसे कबकी ले जा चुकी थी।'

समीरबाबू कम से कम पांच मिनट कुछ बोल नहीं पाए। बच्चे को बिजली ले गई—इस समाचार ने मानो आकस्मिकता को धक्का देकर उन्हें शिथिल कर दिया था। जिस ढंग से चौकीदार उस घटना का वर्णन कर रहा था, उससे वे हक्के-बक्के रह गए।

'अब कहां है वह ?'

चौकीदार ने आसमान की ओर संकेत किया। उस समय भी एक बार आसमान में बिजली चमकी थी। उसके बाद उसने चुपचाप अपनी झोपड़ी की ओर हाथ दिखा दिया।

'सुबह आऊंगा, साहब।'

रात किस तरह बीत गई, इस बात का जिक्र करने की कोशिश समीरबाबू ने कतई नहीं की। वे आराम कुर्सी पर ही अधसोए-से लेटे हुए थे। निश्चिंत। यदि चिंता करना शुरू करते थे तो असीम से कचाड़ खाकर नीचे गिरने जैसी अनुभूति उन्हें होती थी।

फिर भी वे स्वयं को चिंता की कौंध से रोक नहीं पाते थे। क्यों आया था वह लड़का ? बिजली की तरह आकर, बिजली की तरह आचरण करके बिजली के साथ चले जाने में क्या लाभ हुआ—किसे हुआ ? बच्चे की आंखों की स्मृति मानो बारंबार उन्हें कह रही थी—क्या तुम अपनी चिंता और मन के मानदंड से मेरे अनुभव का मर्म समझ लोगो ? बच्चे की वे आंखें निश्चित ही उसके मन का प्रतिबिंब नहीं थीं—थीं कुछ गहन सत्ता की। संभवतः वह सत्ता पलभर में जो अनुभव अर्जित करती है, जी लगाकर पूरे जीवन में भी वह संभव नहीं हो पाता।

समीर बाबू अपने अंदर उसी तरह की किसी सत्ता की तलाश की कोशिश करते हुए रात के अंतिम प्रहर में कश्मीरी शॉल के नीचे सो गए थे।

सुबह बारिश और बिजली शांत थी। लगातार तीन दिनों तक कोठी में घिरे रहने के बाद समीरबाबू बाहर मैदान में निकले। पतली नदी तीन दिनों तक बारिश का उपभोग कर बिल्कुल स्वस्थ दिख रही थी।

'साहब ?'

कुछ ही दूरी पर कुदाल से टिका चौकीदार खड़ा था। समीर बाबू उसके पास गए। मिट्टी खोदी जा चुकी थी। अंदर चुपचाप लेटा था वह लड़का। मुंह नीलाभ।

उन्हें लगा कि चौकीदार का कोई सगा-संबंधी वहां नहीं है। सहसा उन्हें लगा कि वे उसके अति आत्मीय हैं। चौकीदार ने माटी डाल दी। उन्होंने भी स्वतःस्फूर्त सहायता दी अपने हाथों से। वह बालक क्रमशः खो गया माटी के कण-कण में।

'जो कुछ था वह पृथ्वी-मां ले गई।' निष्कंप स्वर में कहा चौकीदार ने।

दोपहर को उस कोठी से चल पड़े समीरबाबू। वे भूल चुके थे अपने स्वास्थ्य की बात, बल्कि अपने बारे में सोचने में ही उन्हें शर्म आ रही थी।

कभी-कभी बारिश और ठंडी हवा का स्पर्श मिलने पर या फिर किसी विशेष निर्जन क्षण में क्षितिज की ओर देखने का अवसर मिलने पर समीरबाबू की स्मृति में उस बच्चे का चेहरा उभरने लगता है और उसके बाद पिता का चेहरा। मानो वे लोग एक-एक सुदूर सीमाहीन दिगंत हों।

ऊंट

लगभग अस्सी साल पहले पाठशाला में पढ़े किसी आदर्श साहित्य में शिवकुमार ने पढ़ा था—ऊंट को रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है। किताब में ऊंट का एक चित्र भी बना था। शिवकुमार को उस चित्र ने मोहित किया था। ऊंट का कूबड़ उनमें सहानुभूति जगाए या भय, इस सवाल पर वे निश्चिंत नहीं हो पा रहे थे।

ऊंट देखने की उनके मन में प्रबल इच्छा जागी थी। मौका भी जल्दी ही मिल गया। एक महिमा संपन्न साधु ने कई कोस दूर हाट के मैदान में डेरा डाल रखा था। उनके साथ थे निरंतर भजन गाने वाले शताधिक शिष्य और खुलकर दूध देने वाली एक दर्जन गाय। किसी अज्ञात कारण से उनके साथ एक हृष्टपुष्ट ऊंट भी था।

लेकिन पिछले रविवार को बहुत समय तक नदी के बरसाती पानी में तैरने और डुबकी लगाने के कारण शिवकुमार बीमार पड़ गया था। गांव के अन्य बालक अपनी-अपनी पोशाक पहनकर ऊंट-दर्शन के लिए जाते समय उनकी आंखों से आंसू निकल आए थे।

प्रत्यक्ष ऊंट-दर्शन से अपना-अपना सम्मान बढ़ाने वाले हाट से लौटे बालकों ने ऊंट के बारे में तरह-तरह की ज्ञानवर्धक बातें बताई थीं। एक ने कहा था कि ऊंट गिरगिट की तरह अपना रंग बदल सकता है। किसी दूसरे ने कहा था कूबड़ में एक ऐसी आश्चर्यजनक चीज होती है जिसकी महक से दिशाएं महकती रहती हैं।

यह सब झूठ है—यह समझने में शिवकुमार को एक वर्ष लगा था।

अध्ययन के लिए शहर आते ही शिवकुमार ऊंट-दर्शन का दूसरा मौका पाकर पुलकित हुआ था। किंतु वह मौका भी थोड़े से के लिए उसने गंवा दिया था। शहर में आया था एक सर्कस। कम से कम कपड़े पहनी एक युवती के साथ एक सजा-धजा ऊंट नृत्य करने-सा कोई वायदा लिए हुए रंगीन विज्ञापन में दिखाई दे रहा था।

मधुर सूर्यास्त में शिवकुमार निकल रहे थे सर्कस देखने।

सहसा शिकारी के चंगुल से निकलकर भागे हिरन की गति से कोई सज्जन

उनके घर में घुस आए और उनकी खाट पर बैठकर उन्हीं के अंगोछे से अपने ललाट का पसीना पोंछने लगे।

शिवकुमार हाल ही में गांव से आए थे। शहर के बहुत-से तौर-तरीके जानने बाकी हैं, मन ही मन यह कहते हुए वे आंखें फाड़-फाड़कर आगंतुक की ओर ताकते रहे।

'वे लोग पूछें तो कहना, तुमने किसी को नहीं देखा। यदि वे लोग अंदर आकर मुझे देख लें तो कहना कि मैं तुम्हारा मौसा हूं, श्वास-रोगी, इलाज के लिए गांव से आया हूं।' आगंतुक ने बिन मांगे सलाह दी।

'मौसा ? श्वास रोगी ?'—शिवकुमार ने घबराते हुए पूछा।

'क्या हुआ ? मौसा को श्वास-रोग होने की मनाही है ?' आगंतुक ने सीधे लेटते हुए उलटकर पूछा।

तीन मिनट भी नहीं हुए होंगे कि पसीने से लथपथ दो पुलिस कर्मी आए और उन्होंने शिवकुमार से उनके घर पर किसी के आश्रय लेने के बारे में पूछा।

'जी हां,' शिवकुमार ने कहा। तब तक उन्होंने यही सोचा था कि आगंतुक को पकड़वा देना ही उचित होगा। लेकिन उन्होंने विस्मित हो अपनी ही आवाज सुनी, 'मौसा हैं—श्वास रोगी।'

पुलिस के जाते ही आगंतुक कूदकर खड़ा हो गया। उनके चेहरे पर चमक रही थी आविष्कार की एक दीप्ति।

'तुम बहुत चालाक हो। यदि तुरंत कह देते कि 'कोई नहीं है' तो वे लोग मुझे देखकर शक करते। बहुत अच्छे। तुम्हें तो पुरस्कार मिलना चाहिए। चलो। आगंतुक ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा।

'मुझे पुरस्कार नहीं चाहिए साहब, मैं सर्कस जा रहा हूं।' शिवकुमार ने हड़बड़ाते हुए कहा।

आगंतुक हंसा। हंसी इतनी प्रभावशाली और तात्पर्यपूर्ण हो सकती है, यह बात शिवकुमार को अब तक मालूम नहीं थी। उस हंसी से पहले तो वह लजाया, फिर लाज की जगह ले ली एक नई उपलब्धि ने, पराधीन भारत के युवक के लिए सर्कस देखने के अलावा भी महत्वपूर्ण काम हैं।

जल्दी ही शिवकुमार का वह छोटा-सा कमरा क्रांतिकारियों के छुपने का अड्डा बन गया। शिवकुमार के मन में भी भर गया सार्थकताबोध।

यथासमय पुलिस ने उनका घर घेर लिया और उन्हें तुरंत कैद कर लिया। किंतु क्रांतिकारियों की कार्यप्रणाली होती थी चतुराई भरी। उन सबके विरुद्ध कोई भी आरोप साबित नहीं हो सका।

छूटने के बाद शिवकुमार दुगुने उत्साह से काम में जुट गए। अखाड़े और मनोरंजन केंद्र के नाम पर उन्होंने अंचल-प्रति-अंचल क्रांतिकेंद्र स्थापित किए। प्रचार

करने लगे एक बात—स्वाधीनता के लिए चाहिए देशव्यापी सशस्त्र क्रांति।

बेटे की गतिविधियों से आतंकित हो माता-पिता ने तुरंत विवाह करवा दिया। लेकिन विवाह और एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति होने के बाद भी शिवकुमार ने अपना कार्यक्रम जारी रखा।

अंत में, एक दिन रात को वे पकड़े गए—इस बार कुछ महत्वपूर्ण कागजात के साथ। सेना की एक छोटी टुकड़ी से उनके दल की बातचीत प्रमाणित हो गई। उन्हें द्वीपांतरित कर दिया गया।

अंदमान की यातना और निराशाओं के बीच उनकी स्मृति में फिर से लौट आया था ऊंट। जिस दिन उन्होंने एक अन्य कैदी से सुना कि ऊंट पर कितना ही निर्मम बोझ क्यों न लादा जाए वह बेचारा सिर्फ लंबी-लंबी सांसें लेने और आंसू बहाने के सिवा और कोई विरोध नहीं जताता, उस दिन उनकी आंखों में आंसू छलछला आए थे।

अंदमान से छुटकारा मिला काफी वर्षों बाद। उस समय वे अपने ही प्रेत जैसे दिख रहे थे। कारागार में खाद्याभाव, अस्वास्थ्यकर परिवेश और प्रशासन ने उन्हें लगभग पंगु बना छोड़ा था। क्रांति के भविष्य को लेकर उनकी आशाएं टूट चुकी थीं। माता-पिता और पत्नी, जिन्हें समझने का अवसर उन्हें बहुत कम मिला था—तब तक परलोक सिधार चुके थे।

देश में एक नए तरीके के स्वाधीनता-संग्रामी संप्रदाय का उदय हो चुका था। शिवकुमार उन्हें समझ नहीं पा रहे थे।

जिस एकमात्र घटना से उनके मन में प्रसन्नता थी, वह थी स्वाधीनता संग्राम में उनके इकलौते पुत्र का योगदान। हालांकि वह प्रसन्नता उतनी गहरी नहीं थी, क्योंकि संग्राम के प्रति पुत्र का दृष्टिकोण उन्हें पसंद नहीं आ रहा था।

'हम शत्रुओं का सामना प्रेम और अहिंसा से करेंगे।' पुत्र ने मुस्कुराते हुए कहा था।

पुत्र की शालीन अभिव्यक्ति और सफेद पोशाक पर वे मुग्ध थे, लेकिन तर्क से वे प्रभावित नहीं हुए।

'देखो बेटे, मुझे डर है, जो लोग पराक्रम को पराक्रम से काबू करने को तैयार नहीं हैं, सिर्फ उन्हीं को यह नीति पसंद आएगी। अनगिनत डरपोक लोगों को देश-प्रेमी कहलाने का मौका मिलेगा। यह देश की बदकिस्मती होगी। एक वीर को भी गौरव मिलना चाहिए, सच्चे त्याग से ही तो भारतमाता प्रसन्न होंगी, ऐसे नकली अर्घ्य से भला वे कैसे संतुष्ट होंगी ?' शिवकुमार ने कहा था।

किंतु समय की धारा बदल चुकी थी। इस विचार को स्वीकार करने की बात तो दूर, सुनने वाले भी शिवकुमार की नजरों में नहीं पड़ते थे।

शिवकुमार बार-बार देश-भ्रमण के लिए निकलने की योजना बनाते थे। उनके

आदर्शों के प्रति आस्थावान कुछ लोग अभी भी इधर-उधर रह रहे हैं, उनकी खोज-खबर लेना और बीते समय को याद करना ही उनकी योजना का उद्देश्य था। एक और अभिलाषा जो उनके भी मन में आधी छुपी हुई थी, वह भी राजस्थान अंचल में जी-भरकर ऊंट देखना।

लेकिन शरीर की हालत ने उनकी योजना पूरी नहीं होने दी।

उधर पुत्र खूब तेजी से प्रसिद्धि पा रहा था। विशिष्ट लोग कहते थे, पुत्र-भाग्य के कारण उन्हें गर्व करना चाहिए। शिवकुमार ने कर्तव्य की दृष्ट से गर्व-बोध की चेष्टा की थी।

किंतु स्वाधीनता से कुछ पहले आयोजित एक विराट जनसभा में वे अपने भाव-विस्फोट को रोक न सके। उन्होंने कहा, अहिंसा की दुहाई देकर देश भर में जिस कायरता और छलावे को बढ़ावा दिया गया, उसी का परिणाम है भारत विभाजन तथा सांप्रदायिक रक्तपात।

'अहिंसा अपनाने के लिए जिस आध्यात्मिक साधना की जरूरत होती है, वह रत्ती भर भी न होते हुए तुमलोगों ने अहिंसा का ढिंढोरा पीटना शुरू कर दिया। तुम्हारी आत्मघाती प्रतारणा और अभिनय देखकर हिंसा का शैतान जो अट्टहास कर रहा था, अपने ढिंढोरे की शोर में तुमलोग वह सुन नहीं पा रहे थे। असल समय में शैतान ने तुम्हें हास्यास्पद बनाकर छोड़ दिया।'—उन्होंने घोषणा की।

सभा मंच पर बैठे पुत्र समेत भावी मंत्रियों को बहुत अटपटा लग रहा था। उसके बाद शिवकुमार को सभा-समितियों में नहीं बुलाया गया।

पुत्र उपमंत्री बना और यथासमय मंत्री। गद्दीदार बिस्तर, गर्म पानी की सुविधा से संपन्न स्नानागार तथा रेडियो लगे एक मनोरम कमरे में स्थान मिला शिवकुमार को। कमरे से बाहर वे भुलाए जा चुके हैं। बीच-बीच में उन्हें लगता था जैसे कि वे अब भी अंदमान में ही हैं। हालांकि वे समझते थे कि वह भ्रम अतार्किक है।

सहसा एक दिन शोर-शराबे के साथ लोगों ने उन्हें याद किया। उन्हें एक सुसज्जित मंच पर ले जाया गया। वे पुष्प और कर्पूरमाल्य से भूषित हुए। तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उन्हें एक ताम्रपट भेंट किया गया।

उस खुशी भरे माहौल में कुछ अप्रिय बातें बाहर आई : शिवकुमार का मानसिक संतुलन गड़बड़ा रहा था। इस बात का पता चला पुत्र के विलक्षण तथा चिकने सेक्रेटरी को, जो कि शुरू से ही वृद्ध के पीछे खड़े होकर उनकी सहायता कर रहे थे। ताम्रपट ग्रहण करने के बाद वृद्ध को गुनगुनाहट भरे स्वर में कहते हुए उसने सुना, 'यह क्या ? मैंने तो सोचा था, ये लोग मुझे ऊंट दिखाएंगे।'

यह घटना सुनने के बाद मंत्रीजी ने लंबी सांस छोड़ते हुए कहा था, 'सचमुच, जिस तरह पिताजी को मेरी देखभाल का समय नहीं मिला था, मुझे भी उनकी देखभाल का समय नहीं मिल पाया।'

'सर ! देश के लिए जीवन समर्पण ही दोनों की गलती का कारण है।' सेक्रेटरी ने कहा।

शिवकुमार फिर भुला दिए गए। वे अपना अधिकांश समय ऊंघने या फिर पोते से परियों की कहानी सुनने में बिताते थे। पोते के सौजन्य से उन्हें देखने को मिल जाया करती थीं ऊंट की तरह-तरह की सफेद-काली तथा रंगीन तसवीरें।

मंत्री जी के बंगले के सामने सत्याग्रह चल रहा था। सत्याग्रही कई समूहों में बंट गए थे और प्रत्येक समूह बारी-बारी से एक वक्त उपवास करते थे। उपवास का सारा समय वे सिर्फ ताश खेलकर बिताते थे। बीच-बीच में वे अपनी यूनियन के गुणगान और प्रबंधन की मृत्युकामना भरे नारे लगाते थे।

शाम को शिवकुमार बालकनी में चले आए थे। उन्होंने बेटे से पूछा, 'क्या चाहते हैं ये लोग ?'

'अधिक वेतन !'

'दे क्यों नहीं देते ?'

'पिताजी, इनमें से कोई भी बाईस सौ पच्चीस से कम नहीं पाता।'

'तो फिर चाह क्यों रहे हैं ?'

पिता के इस सवाल के उत्तर में मंत्रीजी खांसने लगे।

'मैं जाता हूं उनसे पूछूंगा और समझा दूंगा।' वृद्ध सहसा अपनी अंतरंग बेंत को पूरी ताकत से पकड़ते हुए रास्ता ढूंढने लगे।

'पिताजी, सुनिए पिताजी ! आपको इन चीजों में सिर खपाने की जरूरत नहीं है। ये सब बातें हम पर छोड़ दीजिए।'

'तुम पर ?' वृद्ध ने तमतमाते हुए कहा, 'तुम पर ?' उस प्रश्न में इतना क्रोध भरा था कि वे आगे और कुछ बोल नहीं पाए।

शिवकुमार सीढ़ी के पास पहुंच गए। एक नौकर दौड़ पड़ा उनकी मदद करने। किंतु मंत्रीजी के इशारे से वह पीछे खिसक गया।

नीचे उतरने में शिवकुमार को पांच मिनट लग गए। हठात् दौड़ते हुए आकर पोते ने उनका हाथ पकड़ लिया।

'दादाजी ! ऊंट देखेंगे ? बहुत सारे आए हैं। नदी के उस पार मैदान में इकट्ठे हुए हैं। चलें ?' पोते ने आहिस्ता से पूछा।

'ऊंट ? बहुत सारे ? जरूर चलेंगे, किंतु...'

'देर हुई तो ऊंट चले जाएंगे, दादाजी', पोता दादाजी की बेंत खींचने लगा।

पिछले दरवाजे से दोनों चले गए। कार और शौफर तैयार थे। नदी किनारे पहुंचने में आधा घंटा लगा। उतने समय तक शिवकुमार लगातार 'आः आः' करते रहे। बहुत दिनों की कोई आशा पूरी होने की संभावना दिखते ही ऐसी संक्षिप्त अभिव्यक्ति प्रकट करना उनकी आदत बन गई थी।

सामने पर्वतश्रेणी पर उतर रही थी शीतल संध्या।

'वे रहे ऊंट !' पुल के पास कार से उतरकर पोते ने क्षितिज की ओर अंगुली से दिखाया।

'कहां है ? कहां ?' शिवकुमार ने इधर-उधर निगाह दौड़ाते हुए पूछा।

'वो देखिए ना, चले जा रहे हैं ! आपकी आंखों की जो हालत है, उससे क्या आप उन्हें अच्छी तरह देख सकेंगे ?' पोते ने समझाया।

'अरे हां, दिख तो रहे हैं पर...' शिवकुमार धुंधले सुदूर की ओर आंखें गड़ाकर देख रहे थे।

'चलिए हो गया—अब चलें—कहीं और ? पार्क की ओर चलें ?' पोते ने कहा।

'और कहीं ? क्यों ? ऊंटों को अच्छी तरह देखे बिना मैं दुःखी हो क्यों लौट जाऊं ? कितने अच्छे होते हैं वे।'

'नहीं दादाजी, चलिए लौट चलें।' पोते ने जिद्द की।

किंतु शिवकुमार टस से मस नहीं हुए। पोते के लगातार उनकी बेंत, उनका हाथ और कुर्ता खींचने पर भी वे व्याकुल हो कहीं सुदूर आंखें गड़ाए हुए थे। बार-बार अपना चश्मा साफ कर रहे थे।

उनकी व्याकुलता क्रमशः गंभीरता में बदलने लगी। उन्होंने पोते पर निगाह टिकाई।

'कहां है ऊंट ?' उन्होंने पूछा।

इससे पहले कि पोता कुछ कहता उन्होंने तेज आवाज में कहा, 'जवाब दे, झूठे।'

दादाजी की वैसी आवाज पोते ने कभी नहीं सुनी थी। वह सहम गया।

'पिताजी ने ऊंट दिखाने के बहाने आपको घर से बाहर ले जाने को कहा था। उसके लिए उन्होंने यह दिया था।' पोते ने जेब से चॉकलेट निकालकर दिखाई।

शिवकुमार वहीं बैठ गए तथा और भी जोर से चिल्लाए, 'क्या कहा, मुझे तो उन्होंने ताम्रपट देकर ठग लिया—मैं अतीत था—लेकिन तू ? सिर्फ एक चॉकलेट से ठग गया ?'

पोता रोने लगा।

शिवकुमार ने उसे गोद में बिठा लिया। 'तुझे तो रोना चाहिए।' उन्होंने बस इतना ही कहा। अंधेरे की परवाह किए बिना दोनों बैठे रहे काफी देर तक।

कृपाण

उम्र चार साल से कम होने पर भी पल्टू बहुत-सी जटिल बातें समझ लेता था। उस दिन शाम को कोई खास तरह की बात होने जा रही थी और वह बात पुलकित करनेवाली थी, यह समझने में उसे कोई दिक्कत नहीं हुई।

इसके अलावा वह यह भी समझ रहा था कि शाम को जो कुछ होने जा रहा है उससे उसके पिता सुकुमार भी विशेष रूप से जुड़े हुए हैं।

महानगर से महीने भर से छुट्टी पर आया सुकुमार उसके साथ रोजाना शाम को खेलने का मूल्यवान अवसर अधिकतर छोड़कर कहीं चला जाता था, यह भी आज की शाम की घटना से जुड़ा था, इस बात का हल्का-सा अंदाजा पल्टू को हो गया था।

अपनी मां को देखकर उसने भी खुश होना शुरू कर दिया था। शाम को चार बजे सुकुमार ने कुछ मुस्कुराते हुए कहा, 'ज्यादा देर की तो तुम्हारी बालकनी की सीट पर और कोई जम जाएगा' कहकर पत्नी को आगाह करके बाहर जाने लगा तो पल्टू ने भी उसके साथ जाने के लिए जिद्द की पर मां-बाप ने एक-दूसरे की ओर देखकर मृदु मुस्कान का आदान-प्रदान किया और मां ने कहा था, 'अरे, पिताजी से रात को मिलना। पहचान तो लेगा ना ?'

'बाप का बेटा होगा तो पहचानेगा।' कहकर पत्नी को शर्मिन्दगी की हालत और पल्टू को कुछ अटपटी उत्कंठा में छोड़कर सुकुमार चला गया था।

उसके बाद पल्टू को खेलने के लिए बहुत-सी चीजें दी गई थीं तथा तस्वीरों वाली किताब फाड़ने की स्वाधीनता भी दी गई थी। किंतु उसका मन उनमें नहीं लग रहा था। उतनी देर दुर्लभ पिता के साथ होता तो कितना मजा आता ! पिता जैसा चमत्कारपूर्ण बंधु उसने होश संभालने के दिन से नहीं पाया था। खेलने के लिए पल्टू उत्सुक होने के बावजूद उसके साथ न खेलता, सुकुमार उसे उपहार के रूप में टॉफियां दिया करता था। पल्टू से मार खाने पर कुमकुम, पेट्र, जैक आदि पड़ोस के अन्य साथियों की तरह बदले में पिता मारता या नोचता नहीं, खुद ही दोषी की तरह मुस्कुरा देता।

आज पल्टू सुकुमार के सानिध्य से किसी भी तरह वंचित नहीं होना चाहता

था, क्योंकि वह जानता था कि कल सुकुमार महानगर लौट जाएगा।

लेकिन उस दिन दोपहर बाद उसे अधिक देर तक बिना साथी के नहीं रहना पड़ा था। घंटे भर बाद उसे ले जाकर मां ने साबुन से उसका मुंह धोकर पाउडर लगा दिया और फिर खुद लगा लिया। उसे चमाचम साफ पैंट और बैडमिंटन खेल रहे खरगोश के चित्र वाली शर्ट पहना दी और खुद एक जगमगाती हुई भड़कीली साड़ी पहन ली।

यथासमय दोनों प्रेक्षागृह के द्वार पर जा पहुंचे।

'आओ बेटी, आओ आओ।' क्लब के वृद्ध अध्यक्ष भूतपूर्व विधायक ने स्वागत करते हुए कहा, 'हमारे सुकुमार ने कमाल किया है। क्या नहीं देखोगी ? मैंने उससे कहा था कि बेटे, तू यदि सिनेमा में चला गया होता तो दो-चार अभिनेत्रियां अकाल उल्का बनकर गिर चुकी होती। जाओ बेटी, ऊपर चली जाओ।'

'पिताजी कहां हैं ?' बालकनी में घुसते ही पूछा पल्टू ने। मां कुछ मुस्कुराई। बगलवाली कुर्सी पर बैठी एक संभ्रांत महिला खड़ी होकर मां का अभिवादन कर जब बैठने को हुई, उसका पूरा चेहरा सिर्फ मुस्कुराहट के कच्चे माल से बने होने जैसा लगने के बावजूद, पल्टू ने अपने दोनों हाथों का प्रयोग कर आतंकवाद के जरिए उन्हें हटाने की कोशिश की और यह कहते हुए चिल्ला उठा 'वहां पिताजी बैठेंगे।'

बड़ी मुश्किल से उसके दोनों हाथों को मां ने नियंत्रित किया और रंगमंच की ओर उंगली दिखाकर बताने को वाध्य हुई—वह देख, पिताजी वहां से निकलेंगे।

पल्टू ने अचंभे से देखा। विशाल पर्दे पर नीला पर्वत और सूर्योदय या सूर्यास्त का दृश्य। दोनों सिरों पर दो औरतें उस ओर ध्यान न देकर एक-दूसरे की ओर दीपक दिखाने का दृश्य। पर्दे के अंदर से सुनाई दे रहा था तरह-तरह के वाद्ययंत्रों का स्वर ऐक्यतान : खिला हुआ था उज्ज्वल प्रकाश।

वहां दिखाई देगा उसका अपना पिता, यह सोचकर पल्टू रोमांचित दिखाई दे रहा था।

'पिताजी निकलेंगे तो मैं बुलाऊंगा।'

'छिः, मुंह मत खोलना।' माँ ने कहा। यह सुझाव पल्टू को निरर्थक लगा।

पर्दा उठा। मेवाड़ की रानी कर्णवती अपने शिशु-पुत्र भावी महाराणा उदय सिंह को धाई पन्ना के हाथों में सौंपकर स्वयं सती होने चली गई।

रो पड़ी पन्ना धाई।

'पिताजी कहां हैं ? यह रो कौन रही है ?' पल्टू ने पूछा।

'चुप, चुप ! वे रेबा मैडम हैं। तेरे किंडरगार्डन वाली दीदी। अभी उस रोज उन्होंने तुझे खिलौने नहीं दिए थे ?'

विस्मित हुआ पल्टू। जो रेबा दीदी किसी भी रो रहे बच्चे को गोद में लेकर

हंसा सकती हैं, सबके सामने उन्हीं को इस तरह क्यों रोना पड़ा ? उनका चेहरा इस तरह कैसे बदल गया ?

पिताजी की प्रतीक्षा में वह एक के बाद एक दुर्बोध्य दृश्य सहन करता गया।

थोड़ी-थोड़ी दाढ़ीवाला एक युवक कुछ पेय पदार्थ पीने के बाद अपना स्वर गंभीर करके बोल रहा था, 'आज रात्रि करूंगा अपना यात्रा-पथ निष्कंटक।' उसने पगड़ी बांध रखी थी। कमर में उसकी लटक रहा था कृपाण। उसने अट्टहास किया।

'बदमाश।' टिप्पणी की पल्टू ने।

मां कुछ मुस्कुराई, 'देख, देख।' उसने पल्टू का ध्यान मंच की ओर आकर्षित किया।

'नहीं, मैं नहीं देखूंगा—पिताजी कहां हैं ? तुमने झूठ क्यों बोला ?'

उस समय निष्ठुर बनवीर कृपाण म्यान से निकालकर राजपुत्र उदयसिंह के कक्ष में प्रवेश कर रहा था। हालांकि निद्रित राजपुत्र को कुछ क्षण पहले चुपचाप कहीं और भेजकर पन्ना धाई ने दुग्धफेनिल शय्या पर अपने पुत्र को सुला दिया था। प्रेक्षागृह में निस्तब्धता थी। कोई जरा-सी भी शरारत बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था। कुछ दर्शकों ने पल्टू की ओर अलग-अलग मुद्रा में देखकर अपना असंतोष उसकी मां को समझा दिया था।

'देख, देख।' मां स्वयं ही अति उद्विग्न दिखाई दे रही थी। पल्टू को लग रहा था कि वह और कुछ बोलेगी, लेकिन मां की आंखें रंगमंच पर टिकी थीं।

बनवीर ने तीव्र स्वर में पन्ना धाई से सवाल किया : 'कहां है उदय ?' उसके हाथ का कृपाण दो बार चमक उठा।

'मां ! यह बदमाश उस बच्चे को क्यों ढूंढ़ रहा है ?' गहरी उत्कंठा से पूछा पल्टू ने।

'इस तरह क्या बक रहा है ? पहचान नहीं पा रहा ?' मां ने लाड़ से उसका गाल थपकाते हुए कहा।

कृपाण तान ली बनवीर ने। पन्ना धाई के शिशु पर प्रहार करने से पहले उसने अट्टहास किया।

उसी पल पल्टू के अंदर प्रस्फुटित हो रहा था एक अभूतपूर्व भयावह आविष्कार की सिहरन। परिचित को भीषण अपरिचित के रूप में देखने के प्रचंड विधान की ताड़णा से उसकी दोनों आंखें विस्फारित हो उठी थीं।

वह मुंह खोलने ही वाला था कि उसके चेहरे की अभिव्यक्ति देखकर मां झटपट उठते हुए उसे लेकर बालकनी से बाहर चली गई। मचलते हुए जोर-जोर से रोने लगा पल्टू और मां को भींचकर पकड़ लिया।

सुकुमार कृपाण ताने हुए था निद्रित शिशु पर। उस स्तब्ध नीरवता को तोड़ते हुए बाहर से जो क्रंदन सुनाई दिया, उस स्वर को वह पहचानने पर भी उसे लगा

मानो वह स्वर उसके कृपाण के नीचे से निकला हो। क्षण भर को वह भूल गया कि जिसके बदन पर उसने कृपाण चलाया है, वह कपड़ों का एक गुड्डा मात्र है। उसे थकान लगने लगी।

रात्रि के अंतिम प्रहर में घर लौटकर सुकुमार ने देखा, सो रहे पल्टू का चेहरा अब तक फूला-फूला दिख रहा है।

सुकुमार को लगा कि दोपहर तक न रहकर, पल्टू के उठने से पहले ही गाड़ी पकड़कर महानगर चले जाना उसके लिए ठीक होगा। कितना ही जोरदार अभिनय करने पर भी वह पल्टू का भरोसा नहीं लौटा सकता, वैसा आत्मविश्वास उसमें नहीं था।

भोला नाना

भोला नाना के बारे में पहली घटना मेरी सुनी हुई नहीं, आंखों देखी हैं। चंद्रमा-पुलकित रात्रि के प्रथम प्रहर में हम मेले से लौट रहे थे। शिशु होने के कारण तब तुझे हमारे गांव के बलवान वयस्कों के कंधों पर बैठकर दूर-दूर तक घूमने के असंख्य अवसर मिलते थे।

पिताजी एक गणमान्य व्यक्ति थे और उनके साथ चलने में लोग गर्व अनुभव किया करते थे। भोला नाना भी। कुछ लोगों का एक दल पिताजी के पीछे-पीछे चला करता था। पिताजी जो कुछ कहते, वे लोग सिर्फ हामी भरते हुए 'जी हां', 'और नहीं तो क्या' आदि कहते हुए साथ-साथ चलते।उस समय भोला नाना का सहसा भों करके चिल्ला उठना मुझे साफ-साफ याद है।

सभी ठिठककर रुक गए। पता चला भोला नाना अपने नाबालिग पोते को लेकर मेला देखने गए थे। पोते की दो अंगुलियां वे अपने बाएं हाथ में पकड़े हुए थे। लेकिन मेले की भीड़ में वे दोनों अंगुलियां कब उनके हाथ से निकल गईं वे जान नहीं पाए। जब आधे रास्ते में किसी सहयात्री ने पूछा कि 'क्या पकड़े हुए हो' तो उन्हें पोते की याद आ गई और वे चिल्ला उठे थे।

पिताजी के कहे अनुसार गांव के अन्य चार होशियार लोग भोला नाना के साथ मेले लौट गए। पोता गाय के पेट तले आराम से बैठा मेले के सैकड़ों अपरिचित नर-नारियों की ओर टुकुर-टुकुर ताकते हुए मिल गया था।

बाकी की दूरी तय करते समय पिताजी ने भोला नाना के बारे में जो बातें बताई थीं, उनमें से उल्लेखनीय बात थी, एक दिन दोपहर को उस युग के युवा भोला नाना को हमारे चबूतरे पर जीभ बाहर निकालकर सोते देख सभी सशंकित हो उठे थे। पूछने पर पता चला कि घंटे भर पहले अपने विवाह से संबंधित कोई प्रस्ताव सुनकर उन्होंने शर्म से जीभ दबा ली थी और फिर नींद में सो जाने की वजह से जीभ अंदर ले जाना भूल गए थे।

एक दिन फिर पिताजी भोला नाना के किशोरावस्था की किसी अन्य घटना का वर्णन करते समय भोला नाना के चुप रहने की बात मुझे याद है। भोला नाना पिताजी से कुछ ही साल बड़े थे। एक दिन वर्षा-मुखर सांझ को उन्होंने अपने कई

विश्वासी युवकों से कहा, 'मैंने अपने घर के सामने समुद्र में नाव से आए एक डाकू दल को रेत के टीलों में कहीं कुछ गाड़कर जाते हुए देखा है।'

संदूक में अपार धन होने के बारे में निःसंदेह हो युवाओं ने लगातार बारिश की झड़ी लगी होने के बावजूद चुपचाप उस संभावित जगह को खोदना शुरू कर दिया था। लगभग आधी रात तक खोज होती रही। पूर्णिमा के साथ बारिश के मेल से एक तरह का रहस्यमय परिवेश बना हुआ था।

अदम्य उत्साह से खोज-कार्य देख रहे भोला नाना को सहसा अन्यमनस्क होते और उसके बाद मुंह सुखाकर बैठे हुए देखा गया।

भोला नाना कभी झूठ नहीं कहते थे। वे मान गए कि डाकुओं के गिरोह और सूंक संबंधी पूरी घटना को उन्होंने बदरारी दुपहरी में सोते समय सपने में देखा था—सपने में देखे होने का ध्यान नहीं रहा।

भोला नाना के जीवन की अविस्मरणीय घटना घटित हुई थी सुंदरवन के इलाके में। वहां कई पुश्तों से हमारी जमीन-जायदाद थी। हममें से जो लोग बीच-बीच में जाकर उसकी देख-भाल किया करते थे, उनमें भोला नाना भी एक थे।

उस जमाने में सुंदरवन का अधिकतर इलाका घने जंगलों से भरा था और जगह-जगह बाघ-मगरमच्छ-सांप भरे पड़े थे। उस इलाके में दिन में भी लोग अकेले नहीं आते-जाते थे, सूर्यास्त के बाद तो सवाल नहीं उठता था।

साप्ताहिक हाट से लौट रहा था लोगों का एक दल। भोला नाना भी। लेकिन अपनी अन्यमनस्कता के कारण न जाने कब वे उस दल से पीछे रह गए।

अपने असहायपन का अहसास उन्हें तब हुआ जब केवल पांच गज की दूरी पर एक महाबली बाघ उनकी ओर देखकर आनंद सूचक दबी आवाज में गुर्राया।

दुबले-पतले भोला नाना बड़ी तेजी से पेड़ पर चढ़ जाया करते थे। सौभाग्य से हाथ के निकट ही एक सीधा बरगद था। भोला नाना झटपट चढ़ गए। महाबली ने गर्जन-तर्जन कर करीब सौ बार पेड़ का चक्कर काटा और थोड़ी दूर जाकर पेड़ की ओर ताकते हुए बैठ गया।

चांद की रोशनी में भोला नाना बाघ की ओर और बाघ भोला नाना की ओर ताक रहे थे। चांद आगे बढ़ता जा रहा था। रात भी।

भोर के समय भोला नाना धीरे-धीरे पेड़ से उतरे। निकट ही एक पहाड़ी टीले पर संथालों की छोटी-सी बस्ती थी। टीले पर चढ़कर सबसे पहली झोपड़ी के पास जाकर उन्होंने बीड़ी सुलगाने को आग मांगी।

उस झोपड़ी में रहनेवाले ने पूरी घटना देखी थी और सारी रात घबराया हुआ-सा उस ओर ताक रहा था। काफी देर तक वह भोला नाना का चेहरा बड़ी-बड़ी आंखें निकाले देखने के बाद अंत में बोला, 'बाबू ! तुम कौन-सा गुण जानते हो, महाबली बाघ के पास से लौट आए, बाघ देखता रहा—पर तुम्हारा कुछ कर न सका।'

तब जाकर भोला नाना को होश आया कि वे बाघ के बारे में भूल ही गए थे। उन्होंने उस ओर देखा, रात भर उनींदा होने के कारण बाघ जमुहाई लेते हुए चला जा रहा है।

उस वक्त कुछ देर के लिए भोला नाना बेहोश हो गए थे।

उसके लगभग आधी शताब्दी के बाद एक दिन सुबह भोला नाना बिस्तर से नहीं उठे। मृत्यु के समय उनकी उम्र पंचानबे थी। फिर भी हमलोग रोए थे। हमने तरह-तरह से दुःख प्रकट किया था।

लेकिन उनकी बीमार बुजुर्ग सहधर्मिणी का विचार सबसे मौलिक था, 'बुड्ढा जरूर सांस लेना भूल गया होगा।'

पोती

गुलमोहर और देवदार से भरे लॉन में जनरल ने अपने अधीनस्थ सैनिक अफसरों की एक जरूरी बैठक बुलाई थी। पीछे रखे टेबुल से टिके हुए अपनी बाई हथेली पर बैटन से चोट करते हुए बोलते समय उनकी काली मूंछों पर जमी ओस की नन्हीं-नन्हीं बूंदें हीरे के चूर्ण जैसी चमक रही थीं।

और हीरे की गुड़िया-सी चमक रही थी उनके पीछे चुपचाप टेबुल पर चढ़कर पलथी मारकर बैठी उनकी पोती। उसने पहन रखी थी रूपहले जार्जेट की फ्रॉक, सिर पर बांध रखा था नारंगी रंग का रिबन।

उसने सहसा जनरल के हाव-भाव का अनुकरण करना शुरू कर दिया। जनरल उसे भले ही न देख पा रहे हों, वहां एकत्र सभी अफसर उसे देख रहे थे। इधर जनरल के गंभीर भाषण को अपने-अपने मुखमंडल पर आज्ञाकारिता और आंतरिकता के भाव दिखाकर सुनने के साथ उधर पोती की शरारत के कारण पेट में जिद्दी हंसी के आलोड़न को दबाए रखने की आवश्यकता—इस विषम परिस्थिति में पड़े अफसर अजीब से दिखाई दे रहे थे।

किंतु उनके अदृष्ट में शुभ था। जनरल ने एक मध्यम श्रेणी के मजाक की बात कही। उसका लाभ उठाकर सभी अधिकारी हंसी के आग्नेयगिरि की तरह फूट पड़े। एक घटिया मजाक को इस कदर असरदार होते देख जनरल अपने अफसरों की सदिच्छा और अपने नेतृत्व को लेकर निश्चिंत हुए।

अफसरों की हंसी थमने के बाद भी खिलखिलाकर हंस पड़ी थी पोती।

'अरे गुड्डी ! तू कब आ गई ?' जनरल ने पलटकर देखते हुए कहा।

'तू कब आ गई।' पोती तुतलाकर कहते हुए चिढ़ाने लगी।

उसी वक्त एक संदेशवाहक ने आकर सैलूट मारा और चुपचाप कोई सूचना दी।

'ओहो'...जनरल ने भौंहें सिकोड़ी और मूंछों से ओस की बूंदें पोंछते हुए एकत्र अफसरों से कहा, 'आपलोग जरा इंतजार कीजिए—जरूरी बुलावा आया है। शायद आप-लोगों को सुनाने लायक कोई महत्वपूर्ण समाचार या निर्णय लेकर लौटूं।'

उन्होंने बैटन बगल में दबाया और अबाउटर्न किया।

'दादाजी ! मैं भी चलूंगी।' गुड्डी ने अपने दोनों नन्हें हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा।

'अरे, तू कहां जाएगी।'

'तू कहां जाएगी।' गुड्डी जनरल के सवाल को दोहराते हुए टेबुल पर लेफ्ट-राइट करने लगी।

जनरल ने उसे अपने करीब खींचते हुए चूमा। कहा, 'छिः। तू और मैं दोनों चले गए तो ये अतिथि क्या सोचेंगे ? मेरे प्रतिनिधि के रूप में तू इनके साथ रहेगी, इन्हें खुश रखेगी ! वरना ये लोग यहां क्या करेंगे ! मैं तेरे लिए टॉफी लेकर आऊंगा।'

जनरल चले गए।

गुड्डी का कमल-कली-सा चेहरा धीरे-धीरे फूलने लगा। जनरल की कार फाटक के उस पार फुर्र से चली जाने के बाद उसने दुगुनी रफ्तार से लेफ्ट-राइट की और फिर आंखें बंद करके चिल्ला उठी, 'मैं भी दादाजी के साथ जाऊंगी।' उसके बाद वह रोने ही वाली थी।

'अरे बेटी, रो मत ! हाथी देखेगी, हाथी।' मेजर जनरल जोसेफ ने पूछा।

गुड्डी ने सिर हिलाकर हामी भरी।

'यह देख हाथी' जोसेफ ने अपने सबसे मोटे सहकर्मी अरोरा को गुड्डी के सामने खड़ा कर दिया।

'आ बेटी, अच्छा ! बाघ कैसे दहाड़ता है ?' कहते हुए हबीबुल्ला और वे आगे आकर हाऊं-माऊं करने लगे।

'क्या बाघ दो पैरों पर खड़े होकर चुरुट पीते हुए दहाड़ता है ?' रुआंसी-सी आलोचना भरी आवाज में सवाल किया गुड्डी ने। और फिर तुरंत बोल पड़ी, 'मैं दादाजी के पास जाऊंगी।'

हबीबुल्ला का संकट देख सभी अफसर हंसने लगे। चुरुट फेंकते हुए हबीबुल्ला ने स्वीकार किया कि बाघ द्वारा तंबाकू पीने का कोई प्रमाण नहीं है और वह चार पैरों से चलता है। उसके बाद हबीबुल्ला ने लॉन पर अपने हाथ टिका दिए।

'ये देख बेटी, बाघ को इस तरह मारा जाता है, रहीम ने कहा। घुटने टिकाकर बैठते हुए बैटन को बंदूक की तरह पकड़कर उसने गुडुम-गुडुम आवाज की। हबीबुल्ला ने चितपटांग होने का अभिनय किया।

अफसरों ने तालियां बजाई। लेकिन एक लंबी सिसकी खींचते हुए गुड्डी ने सवाल किया, 'यदि उसी वक्त भालू आ जाए ?'

'तो फिर शिकारी से उसकी इस तरह लड़ाई होगी,' कहते हुए जसबीर सिंह रहीम के ऊपर झपट पड़े। फिर से हंसी का ठहाका फूट पड़ा पूरे लॉन में।

फिर भी गुड्डी के चेहरे पर आनंद की कोई विशेष लहर नहीं दिखाई दी।

हालांकि जनरल के लौटने तक पोती को संभालने की जिम्मेवारी से सभी अफसर एकमत थे। इसलिए वे ऊंट बने, गोरिल्ला बने, न जाने क्या-क्या बने। गुड्डी पल भर को खुश होती–फिर तुरंत रोने लगती।

वे आ गए जनरल।

'दादाजी। तुमने इतनी देर लगा दी !' गुड्डी का चेहरा अचानक स्वाभाविक लगने लगा। दादाजी के सीने पर सिर रखकर धीमी आवाज में बोली, 'मेरे सिर पर इतनी बड़ी जिम्मेवारी सौंप गए, अपने इन बच्चों को खुश रखने के लिए–मुझे कितनी देर तक झूठमूठ रोना पड़ा इनके सामने, तुम्हें क्या मालूम। लाओ, दो टॉफी।'

शत्रु

एक

क्षण भर के लिए चमक उठा था दिगंत। घने अंधेरे का सीना लगभग सौ नुकीली अंगुलियों से चीर डाला था, बिजली ने।

फिर सिहर उठा था बिलास सिंह। बिजली के उस विस्फोट ने उसके अंदर पैदा किया था भयावह, परस्पर विरोधी भाव। आग की कूची के उस सर्पाकार तेज अंकन में मानो झलका हो बहादुर का चेहरा। बिजली की उस तेज छुरेबाजी ने उसे पुनः झकझोरा था—बहादुर का सीना उसी तरह अचानक चीरने के लिए।

वह सो नहीं पाया। रह-रहकर मन में एक और जीवन-स्फूर्ति-दृश्य घुस आता। अपना गांव, उसमें अपना घर। लेकिन कमरे के आगे चहलकदमी करते हुए रुआंसा हो उसने फिर प्रतिज्ञा की थी, वह बहादुर से बदला लेगा ही लेगा। इस जीवन में बस यही उसका एक मकसद है।

बिजली चमकने पर बिलास सिंह ने फिर आंखें मूंद ली थीं। असह्य है यह बिजली !

जिस तरह बिजली चमककर विलीन हो जाती है, उसे पकड़ा नहीं जा सकता, उसी तरह बहादुर भी बार-बार उसकी पकड़ से छूटकर भाग चुका है। लेकिन उसने हौसला नहीं छोड़ा, प्रत्येक हार के बाद उसकी जिद्द भीषण से भीषणतर होती चली गई थी।

रात रहते उसने फिर चलना शुरू कर दिया था। भोर में थककर बैठ गया था शशिकला की झोपड़ी के चबूतरे पर।

'क्या, मिला वह ? बदले की आग बुझी ?' शशिकला ने चाय का गिलास बढ़ाते हुए अंतरंगता भरे स्वर में पूछा।

'नहीं !' बिलास सिंह का जवाब धमकी भरा लगा।

'न जाने मुझे क्यों बार-बार ऐसा लगता था, तुम एक-न-एक दिन इस ओर जरूर आओगे, और मुझे एक बार मौका मिलेगा तुम्हें सब कुछ समझाकर कहने का। तुम अब भी नवयुवक के सिवाय क्या हो ! तुम्हारे आगे पूरी जिंदगी पड़ी है। जिस तरह रणक्षेत्र पीछे रह गया है, उसी तरह रह जाएं उससे जुड़े अन्य सारे

कामकाज। सिर्फ एक ही साल हुआ है तुम्हारी शादी को। घर-गृहस्थी छोड़कर एक हत्यारे का पीछा करने में महीनों बर्बाद करना क्या किसी बुद्धिमान का काम है ?' शशिकला के स्वर में था विवेक का बल।

बिलास सिंह गर्म चाय उसके चेहरे पर फेंकने को वाला था, किंतु उसने खुद को संभाल लिया।

'यह जला हुआ चेहरा और अधिक नहीं जलेगा !' यह कहकर मुस्करा उठी शशिकला।

आगे खुला मैदान था। उसे अगोर रखा था कांस के अनंत फूलों ने। अंधेरे से क्रमशः उन्हें वापस मिल रही थी उनकी कमनीय शुभ्रता। दिगंत में पक्षियों के प्रथम झुंड का संचरण दिखाई दे रहा था।

'सुनो बिलास, मेरी बात पर ध्यान दो। देखो किस तरह रात बीत रही है। वह कूड़ा-करकट भरा अतीत भी उसी तरह बीत गया। बीत जाने दो। इस सुंदर भोर की तरह नई ज़िंदगी शुरू करो।' यह कहते हुए शशिकला ने बिलास सिंह के कंधे पर हाथ रखा। लेकिन बिलास सिंह ने उसे झटक दिया और खड़ा हो गया।

'चाय तो पूरी पीकर जाओ !' शशिकला ने अनुरोध किया।

इस बार बिलास सिंह मुस्कुराया। उस मुस्कान में था घृणा और विद्रूपता का नाटकीय समावेश।

'शशि ! तुम्हारे मुंह से यह अनुरोध शोभा नहीं देता। इंसान के होंठों से गिलास छीन लेना तुम्हारा धर्म है। सुमति के करीब तुम्हीं ले गई थीं मुझे। अब जब सुमति मेरी सारी सत्ता अगोरे बैठी है, तुमने बहादुर को लाकर उससे भिड़ा दिया। वह बदमाश जादू करके छीन ले गया सुमति को।'

मानो मुस्कुराहट तितली की तरह चट्ट से उड़ गई हो बिलास सिंह के चेहरे से और जाकर बैठ गई शशिकला के होंठों पर, लेकिन वहां हंसी बहुत चटकीली लग रही थी।

'तुम आरोप भले ही लगा रहे हो बिलास, लेकिन उस अभिशप्त समय में मेरी भूमिका क्या थी, वह तुम भूल रहे हो। जितने सम्मान से एक दिन तुम्हें सुमति के पास ले गई थी, उतने ही आदर से एक दिन बहादुर को भी ले गई थी। तुम्हें याद दिलाने की जरूरत नहीं कि तुमसे पहले उसी तरह और कइयों को भी ले गई थी। मेरा मनोभाव सबके प्रति समान था। सुमति का भी ऐसा ही होगा, मैं आशा करती थी। लेकिन अभागिन ने मुझे निराश कर दिया। वह बहादुर के चंगुल में फंस गई। बेचारी समझ न सकी, उसका जो जीवन है, उसमें किसी के चक्कर में पड़ना कितनी बड़ी भूल है। एक बार पड़ गए तो बार-बार पड़ते रहोगे। उतनी बड़ी भूल के लिए प्रायश्चित करने के सिवाय और चारा ही क्या था ? यह तो

तुम जानते ही हो...।' शशिकला ने तिरछी नजर से देखा।

'जानता हूं। उसी दिन से जानता हूं जिस दिन बहादुर से उसकी हत्या की थी।'

शशिकला दुबारा बिलास सिंह से सटकर खड़ी हो गई। उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोली, 'जो बात नहीं जानते हो, वह बताती हूं। तुम तो बहादुर को मारने के लिए ढूंढ रहे हो, यह सुमति को ले जाने की वजह से जितना नहीं है, उससे कहीं अधिक इसलिए है कि उसने सुमति को मार डाला। सुमति को मारकर उसने उस पर अपना अंतिम अधिकार साबित कर दिया, जो कि तुम नहीं कर सके।'

'कदापि नहीं। सुमति को दस-दस शिकारी कुत्ते भी नोच-नोचकर खा जाते तब भी मैं कोई विरोध नहीं करता।' गरज उठा बिलास सिंह।

'ठीक है, पर यदि वे कुत्ते तुमने लगाए होते। है न ? किंतु तुम यह जान लो बिलास, किसी को मारकर उस पर अपना अंतिम अधिकार जताने की उम्मीद असफल होती है। जो मर गया, सो तर गया, तुम्हारा अधिकार स्वीकार करने या उसके विरुद्ध विद्रोह करने के लिए जो जीवित ही नहीं होगा, उस पर अधिकार जताने का गर्व करोगे कहां से ? सुमति को मार डालने के बाद बहादुर उसके लिए दिन-रात तड़पा है और बेइंतहा कष्ट सहा है, विश्वास करो।'

'मैं यह सब नहीं सुनना चाहता। सिर्फ सुमति को मुझसे छीन लेना ही बहादुर का एकमात्र अपराध है, ऐसा नहीं है। यह क्यों भूल जाती हो कि वह मेरी दस साल की बचत भी चुराकर ले गया ?' बिलास सिंह आत्मरक्षा करने की मुद्रा में हाथ हिला रहा था।

'बेकार की बात मत करो, बिलास ! उसके बदले क्या तुमने उससे बदला नहीं लिया ? पिछली बार उसका सिर नहीं फोड़ डाला था ?' शशिकला ने पैनी निगाह से उसे देखा।

बिलास सिंह जोर-जोर से हंसने लगा।

'शशि ! उसके बाद तुमने उसे देखा है ? क्या यह लगता है कि उसके ललाट से वह निशान कभी मिटेगा ?' हंसी के बीच बिलास सिंह ने पूछा—जिस हंसी से उसे अथाह संतोष मिल रहा था।

'शायद नहीं, इस जन्म में नहीं।'

बिलास सिंह हंसते-हंसते बेदम हो गया। उसने अपनी कमर से तेज चाकू निकाला और उसे खोलकर पकड़ा। धुंधले दिगंत की पृष्ठभूमि में वह असहनीय, वीभत्स दिख रहा था।

शशिकला हठात् अत्यंत उदास हो गई।

दो

शाम तक बिलास सिंह अपनी मंजिल बाजार के करीब पहुंच चुका था। हालांकि इस बार घर से निकले सिर्फ पांच ही महीने हुए हैं, आज हाथ की पहुंच तक आई इस सफलता के पीछे है लगातार पांच वर्षों का पीछा। इस पीछा का इतिहास कम कोफ्त भरा नहीं है। वह कई बार ठगा गया है, कई बार तो शिकार सूत भर की दूरी से बच निकला है।

आज आखिर में बिलास सिंह अपने लंबे प्रयास पर एक स्वच्छंद इति लिखने जा रहा है। इस बार शिकार की खोज जितनी सटीक है, शिकार है भी उतनी ही अप्रस्तुत स्थिति में।

बिलास सिंह जानता है, बहादुर यह सोच रहा है कि मैं शादी करके अपना घोंसला बनाकर सब कुछ भूल चुका हूं। कई तरह की गतिविधियों के जरिए खुद बिलास सिंह ने ही उसके मन में यह सोच पैदा की है।

रात्रि के प्रथम प्रहर में, यथाविधि नकली दाढ़ी लगाकर वह निर्दिष्ट शराब के ठेके में जा पहुंचा। वह एक छोटा-सा होटल है। वहीं आया करता है बहादुर दूसरे नाम से रोजाना। उसके आते ही बग़ैर कुछ कहे, बग़ैर समय बर्बाद किए बिलास सिंह काम तमाम करने के लिए तैयार बैठा था। ठेके के पीछे अंधेरा था। उस इलाके को हठात आलोकित करने की व्यवस्था नहीं थी। वह बच निकलेगा आसानी से। बहादुर के शराबी साथी, हत्यारे को पकड़ने के लिए उत्साह दिखाएंगे, यह बात विश्वास योग्य नहीं। जांच पड़ताल का मतलब है मरे व्यक्ति का असली परिचय सामने आना, अर्थात उसके ठेके के साथियों का भी।

फिर भी, भागने से पहले लड़खड़ाते हुए बहादुर को एक बार अपना असली चेहरा दिखाना अंतिम काम होगा।

दूसरे लोग शराब पी रहे थे। बिलास सिंह पीने का बहाना कर रहा था। उसकी निगाह टिकी थी दरवाजे पर। धीरे-धीरे वह अधीर हो उठा था।

और आधे पहर के बाद, दो व्यक्ति थके-मांदे कदमों से अंदर आए। उनमें से एक को बिलास सिंह पहचानता था। वह बहादुर का दोस्त था। उसी की वजह से पिछली बार बहादुर बिलास सिंह के हाथों मरते-मरते बचा था।

अन्य लोगों ने जिज्ञासाभरी निगाह से आगंतुकों की ओर देखा। धीमी रोशनी में भी लग रहा था कि दोनों आगंतुक उदास हैं।

'क्या ख़बर है ?' किसी ने पूछा।

'खत्म !' जवाब दिया दोनों ने।

सबकी प्रतिक्रिया से लगा कि यह समाचार अप्रत्याशित नहीं है। फिर कइयों ने लंबी सांसें छोड़ीं और सभी खड़े हो गए।

बिलास सिंह भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। किसी अनिश्चित आतंक से

वह घबरा रहा था। असमतल रास्तों पर खासकर पहाड़ी टीला चढ़ते वक्त उसे बार-बार ठोकर लग रही थी।

टीले पर एक छोटा-सा कमरा था। सबके पीछे-पीछे वह अंदर चला गया। खाट पर पड़ा था एक शव।

चारों ओर रखी दवाइयों से साफ था कि वह आदमी काफी दिनों की बीमारी के बाद मरा है।

किसी ने लालटेन ऊपर उठाई।

चमक उठा था शव के ललाट का निशान।

चीख़ उठा था बिलास सिंह—उस निशान का स्रष्टा।

भागते हुए बाहर आकर, निकट के जंगल और अंधेरे की ओर देख असहाय-सा पछाड़ खाकर गिर पड़ा था, चिल्लाया था। पागलों-सा प्रलाप किया था। उसके वक्तव्य का मर्म जिसने चाहा, उसने समझा। बदमाश बहादुर उसे चकमा देकर भाग गया। उसकी पांच साल की अनवरत प्रतिहिंसा के प्रयास को व्यर्थ करके अंत में फिर बचकर भाग गया धोखेबाज। अब वह क्या करे ? कहां, किस तरह चरितार्थ करे अपने लेलिहान क्रोध का दावा ?

वह उद्‌गार, असंबद्ध भाषा, श्रोता सुन भर रहे थे, पर उसका तात्पर्य कोई समझ नहीं रहा था।

सारी रात उस टीले पर बैठा रहा बिलास सिंह। नक्षत्रों की शीतलता बरसाती ओस, अथवा अंधेरे अरण्य की चुप्पी लिए बहती हवा उसके अंदर की गर्मी को कम नहीं कर पा रही थी।

उसके बाद, एक दूसरे सूर्योदय से पहले, जब अरण्य पर उसकी दृष्टि टिकी हुई थी, उसे याद आई हिडम्ब बाबा की। लुभुर्भा अरण्य और पर्वत वहां से कोई ख़ास दूर नहीं थे।

तीन

अपने गांव के बाहर पहुंचते ही बिलास सिंह को काफी दिनों के बाद नींद का अहसास हुआ था। हिडम्ब बाबा के पास दो महीने तक रहने के दौरान हालांकि प्रतिहिंसा प्रवाह थम गया था, किंतु जिद्‌द खत्म नहीं हुई थी। वह चाहता भी यही था कि उसकी जिद्‌द इसी तरह बनी रहे।

प्रतिहिंसा का योग अभी तक बना हुआ है, हिडम्ब बाबा न होते तो यह भरोसा कौन दिलवाता ? पर, इंतजार करना पड़ेगा।

'बिलास !' गांव के लोगों ने रास्ते में अगवानी की।

'तेरी मां तो रोते-रोते मर गई।'

'और पत्नी ? इतनी असहाय पत्नी को छोड़, अभी शादी को एक साल भी

नहीं हुआ, भला कोई लापता हो सकता है ? क्या कसूर है उसका ?'

बिलास सिंह इन सवालों की झड़ी के बीच सिर झुकाए चला आ रहा था। पत्नी का कसूर यही था कि वह उसे माया से वश में कर रही थी। और कुछ दिनों तक वह उसी तरह वश में रहता तो दिल की प्रतिहिंसा की आग बुझ गई होती, इसलिए समय रहते वह अपनी साध पूरी करने निकल पड़ा था।

'चल, चल, घर चल ! न तू ठग है, न दगाबाज। चल तो, तेरे लिए कितना बहुमूल्य उपहार संजोकर रखा हुआ है, चलकर देख।' एक बूढ़ी महिला ने काफी अपनत्व भरी आवाज में कहा।

अपने घर का चबूतरा चढ़ने से पहले ही वह समझ गया था कि वह पिता बन गया है। पुत्र-संतान का मुंह देखने जा रहा है वह।

पुलक से सिहर उठा था बिलास सिंह। उस पुलक को उसी तरह सीने में बनाए रखने के लिए बिलास सिंह को जो भी कुछ करना पड़ेगा, वह सब करने के लिए उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की थी। अब सारा क्रोधांध, मनोविकार, हिंसा-प्रतिहिंसा आदि-सारी दुर्भावनाएं वह त्याग देगा।

कुछ महिलाएं घर के अंदर तक उसके साथ-साथ गईं। पत्नी अपना घूंघट खींचते हुए उठकर खड़ी हो गई। झूले में सो रहा था नन्हा-सा बच्चा; बड़ा लुभावना था चेहरा।

बिलास सिंह खुश हो उसके और करीब गया।

मानो हठात् उसके सिर में सैकड़ों बिजलियां एक साथ कौंध उठीं। उसने आंखें मलते हुए ठीक से देखा। नहीं, यह आंखों का भ्रम नहीं।

उसने सारा जोर लगाकर सामान्य होने की कोशिश की। क्या वाकई इस गांव की अवस्थिति लुभुर्भा के उत्तर-पश्चिम कोण में है ?

हां। इसमें कोई संदेह नहीं था।

तांत्रिक ज्योतिर्विद हिडम्ब बाबा ने काफी गणना की थी, मृत बहादुर की आत्मा जाकर समाएगी उत्तर-पश्चिम कोण में हाल ही में जनमे बच्चे में।

दूसरी बात, एक भयावह अर्थपूर्ण हंसी हंसते हुए उन्होंने कहा था, फिर से जनमे बहादुर की ओर देखते ही बिलास सिंह कोई ऐसा निशान देखेगा, जिससे कि शत्रु को पहचानने में उसे पल भर भी विलंब नहीं होगा।

महिलाएं लाड़-दुलार करते हुए शिशु को हंसाने की कोशिश कर रही थीं।

बिलास सिंह ने तीसरी बार देखा। बहादुर के ललाट पर एक बार बनाए उस निशान का हू-ब-हू कोमल संस्करण।

बिलास सिंह थरथराते हुए बैठने की हालत में ही बेहोश हो गया।

विवस्त्र

समुद्र किनारे बसे सपनपुर पर इस समय दुनिया भर में हो रहे तमाम परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। इसी वजह से इतिहास में कभी बंदरगाह के रूप में मशहूर सपनपुर सन् 1947-48 के दिनों में एक परित्यक्त-सी बस्ती बन चुका था। आगे चलकर दुर्लभ जलवायु की दुहाई देकर विशाल पर्यटन-केंद्र के रूप में उसके प्रचार करने की दिशा में जो सुनियोजित कदम उठाए गए थे, उस वक्त उसका कोई चिह्न तक दिखाई नहीं दे रहा था।

इसलिए व्यापक रेतीले, नमकीन हवा से पीड़ित कुछ सहमे-से पक्के मकान, अक्सर दिवालिया दिखती कुछेक दुकानों और गरीब मछुआरों के मेल से बने सपनपुर पर परिवर्तनधर्मी आधुनिक काल (जिसकी शुरुआत भारत में हाल ही में हुई थी) कोई धब्बा लगाने का अवसर नहीं पा रहा था।

यहां तक कि राजा के सामयिक विहार के रूप में काम में लाई जा रही सपनपुर की सबसे बड़ी कोठी भी मलिन होने लगी थी। भारत के स्वतंत्र होने के कुछ साल पहले से ही राजा साहब को निकट भविष्य में अपना राज्य छिन जाने की आशंका होने लगी थी और इसीलिए उन्होंने प्रमोद-भवन की मरम्मत बंद करवा दी थी। उनकी मृत्यु के बाद युवराज पुराने राज्य के सदर मुकाम तक भी नहीं जाते थे, सपनपुर तो दूर की बात है।

कभी कोठी की यथासंभव देख-भाल किया करते थे सेनापति वंश के उत्तराधिकारी भानुसिंह। राज्य चले जाने की खबर से उन्हें जितना दुःख पहुंचा था, उसके बाद भी राजकोष से उन्हें भत्ता मिलने में कोई त्रुटि होते न देख वे उतना ही अभिभूत हुए थे। राज्य बचाने की दिशा में यदि वे भी कुछ कर पाए होते—जिस तरह उनके पूर्वजों ने तलवार चमकाकर, 'रे-रे' हुंकारी भरकर कई बार किया था—तो उनके प्रति राज-परिवार का यह सौजन्यबोध यथार्थ होता !

संप्रति राजमाता कहलाने वाली रानी के संदेश ने काफी अरसे बाद उन्हें खुश किया था। कोठी में एक सम्मेलन होगा। कई विदेशियों सहित लगभग पचास खास-खास पुरुष और महिलाएं दो वैनों में आकर वहां एक पूरा दिन बिताएंगे। हालांकि उपेक्षित सपनपुर में यकायक इतने भद्र व्यक्तियों के खान-पान की व्यवस्था

करना टेढ़ी खीर मानकर राजमाता ने शहर से ही चीजें भिजवाने की व्यवस्था कर रखी थी। केवल अतिथियों का स्वागत करने की बात बच गई थी। वह जिम्मेदारी भानुसिंह की थी। उसके लिए संभावित खर्च भी राजमाता ने भेज दिया था।

भानुसिंह ने तय किया था कि वे इस काम को महान दायित्व समझकर निभाएंगे।

छह मजदूरों को लगाकर भानु कोठी की साफ-सफाई करवा रहे थे। ऊपर चले आए स्थानीय सर्वोच्च विद्यालय, माइनर स्कूल के हेड मास्टर मजूमदार। राजपरिवार का मुहर लगा बहुमूल्य मोटा गुलाबी कागज भानु ने टेबल पर रख दिया था। मजूमदार ने उसे सहमते हुए उठाकर पढ़ा।

भानु ने कहा, 'आपको ढूंढ रहा था राय लेने के लिए। सोचता हूं कि बेला की पचास मालाओं का इंतजाम हो जाएगा। पर ये मालाएं अतिथियों के गले में किस ढंग से पहनाई जाए ? आपके स्कूल में कुल पचास लड़के तो होंगे न ? एक-एक लड़का एक-एक अतिथि को माला पहना दे तो बात बन जाए। परंतु लड़को कपड़े जरा ढंग के पहने हों।'

'यह तो कोई नया राजनीतिक दल-सा लगता है—जैसे सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट। नहीं, नहीं, शायद यह कोई धार्मिक संगठन है—जैसे बुद्धिस्ट।' राज माता के संदेश पर नजर रखे हुए कहा मजूमदार ने।

'वे लोग कौन है, मैंने उस बारे में अभी तक नहीं सोचा है। शब्दकोश क्यों नहीं देख लेते।'

राजा साहब की अलमारी खोलकर बीच-बीच में किताबें आदि साफ करने के कारण भानुसिंह शब्दकोश पहचानते थे। जाकर निकाल जाए।

मास्टर साहब ने ध्यान से देखा। संदेश-पत्र और खुले शब्दकोश को बार-बार देखने के बाद उन्होंने अपना शक दूर करते हुए सिर उठाकर भानुसिंह की ओर इस तरह देखा, मानो अपने उस अंतरंग मित्र के अड़तालीस घंटे से अधिक न बचने की उम्मीद के बारे में उसने छिपकर डाक्टर से सुन लिया हो।

'क्या देखा ?'

'बड़ी आफत है। न्युडिस्ट का मतलब है नंगा। अर्थात विशिष्ट नंगे नर-नारियों का एक दल यहां आ रहा है !' मजूमदार की आवाज में थी विशुद्ध उत्कंठा।

भानुसिंह थकावट महसूस कर रहे थे। 'इसका मतलब, पचास नंगे लोग यहां आकर सम्मेलन करेंगे ?' विश्वास न होने-सा उन्होंने पूछा।

'यों ही क्या उन्होंने यह वीरान जगह ढूंढी है ?' मजूमदार ने इस बारे में अपना तर्क रखा। उसके बाद पलायनवादी स्वर में कहा, 'नंगे लोगों के गले में बेला की मालाएं पहनाने पर कैसा दृश्य उभरकर आएगा ? बच्चों से भला ऐसा करने को कैसे कहेंगे ? मैं तो चला।'

भानुसिंह ने मास्टरजी के कंधे पर हाथ रखते हुए उन्हें रोका, 'जा कहां रहे हो ? तुम तो मेरे मित्र हो न ? मैं तो ऐसी परिस्थिति के लिए तैयार ही नहीं था। क्या करूं ?' घबराकर मास्टर जी को झकझोरते हुए उन्होंने पूछा।

'करना क्या है ? एक दिन के लिए आंखें बंद करके नंगे होकर अतिथि की सेवा करना ! और क्या ?

'मतलब ? मुझे नंगा होना पड़ेगा ?'

'यह छोटी-सी बात भी तुम जैसे आदमी को समझानी होगी ? तुम क्या धोती-कुर्ता पहनकर नंगे अतिथियों से हाथ मिलाओगे ? यह क्या जान-बूझकर उनका अपमान करने जैसा नहीं है ? यदि तुम ऐसा करोगे तो फिर क्या राज माता ने सेनापति वंश के उत्तराधिकारी से यही आस लगाई होगी ?'

मजूमदार सहसा कंधा छुड़ाकर चले गए।

कुछ देर पहले झाड़-झूड़कर साफ किए सोफे पर भानुसिंह बैठ गए। राजमाता ने विदेश में पढ़ाई-लिखाई की थी। वे अति आधुनिक हैं। पर उनकी वह अति आधुनिकता अचानक सपनपुर में घुसकर भानुसिंह को बेचैन करना शुरू कर देगी, इस बारे में उसने कभी सोचा तक नहीं था।

धीरे-धीरे वे प्रतापराय के घर की ओर चल पड़े। राज्यभोग के स्वर्ण युग में राजा साहब अपने मित्रों के साथ शराब पीते समय ग्रामोफोन बजाते थे। कभी-कभी आसानी से उपलब्ध पुरुषों को नंगा करके उन्हें नचाना भी था उनके मनोरंजन का विषय। उस इलाके के मैनेजर प्रतापराय को उस युग में कई बार उसी तरह नाचना पड़ा था, यह बात भानुसिंह जानते थे। अच्छा नाचने पर पुस्कार मिलता था। नाच न पाने पर गोली खाकर मरने की आशंका भी रहती थी।

आजकल अत्यंत संभ्रांत कहलाने वाले प्रतापराय के बगीचे में सायंकालीन चहलकदमी करते हुए भानुसिंह बोले, 'मैं इन दिनों कुछ परेशानी में हूं। मेरा नाती बीमार है। कल उसे देखने जाना पड़ेगा। आप मेरी जगह जरा अतिथियों की देखाभाल कर लीजिएगा। इसका तो आपको काफी अभ्यास है।

ठहाका लगाकर हंसे प्रतापराय, 'अर्थात् नंगा होकर उनकी खातिरदारी करूं ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन राजमाता मुझे क्या कहकर बुलाती थीं, तुम्हें याद है न ?'

राजमाता ने लगभग अपने सभी प्रमुख कर्मचारियों का एक-एक विशेष नाम रखा था। जिस तरह वे स्वाभाविक रूप से उन सबको नाम ले-लेकर पुकारती थीं, संबोधित कर्मचारियों को भी उसी तरह स्वाभाविक रूप से जवाब देना पड़ता था।

'रावण।' जवाब दिया भानुसिंह ने।

'ठीक। किंतु क्यों ?'

'मैनेजर साहब, राजा-रजवाड़ों की मौज-मस्ती में भला 'क्यों' का कोई मतलब

भी होता है ?'

'अरे भानु, क्या इतना कह देने से काम चल जाएगा ? मैं राजमाता की नजरों में लंपट, चरित्रहीन और राक्षस-स्वभाव का व्यक्ति हूं। आगंतुकों में भद्र महिलाएं भी हैं। उनके साथ मेरा मिलना-जुलना क्या वे पसंद करेंगी ? इसी कारण उन्होंने तुम्हें खबर भिजवाई है। सफेद फक्क कपड़ा पहने भानु सिंह पर उन्हें जितना विश्वास है, विवस्त्र भानु पर भी उतना ही।'

भानुसिंह हड़बड़ाकर बाहर चले आए।

समुद्र का किनारा लगभग खाली था। सिर्फ एक जगह कार खड़ी करके चार-पांच युवक-युवतियां समुद्र में नहा रहे थे। वे लोग बहुत दूर से आए हैं। आस-पास के शहर-बाजार से आने वाले युवक-युवतियां उतने कम कपड़े पहनने के अभ्यस्त नहीं हैं।

जो लोग कल आएंगे, वे इसी तरह के बाबू-बबुआइन होंगे। इन लोगों ने बित्ता भर पहन रखा है, वे लोग कुछ भी नहीं पहने होंगे। अर्थात बित्ते भर का ही फर्क है। और भी दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो उतना फर्क भी महज एक भ्रम है। कपड़े के नीचे हम सभी एकाकार हैं।

इन कम वस्त्रधारियों का सान्निध्य उन विवस्त्रों के साथ मिलकर रहने की दिशा में सहायक हो सकता है। यह सोच भानुसिंह कार की ओर बढ़े। समुद्र से बाहर आ रही युवक-युवतियों का एक जोड़ा भानुसिंह की ओर देखकर अभिवादन-सूचक मुद्रा में मुस्कुराया।

अरे वाह, इनके सान्निध्य में तो वे खूब सहज अनुभव कर सकेंगे ? उन पर आतंक छा गया। नहीं, वे नहीं कर सकते। कतई नहीं।

उस वक्त कार की ओट में बैठे कपिल पर उनकी निगाह पड़ी। राजा साहब का एक अन्य खास परिचारक था कपिल। भानु को मालूम था कि आज-कल बीच-बीच में वह विदेशी, अर्ध-विदेशी पर्यटकों को इकट्ठा करके चोरी-छिपे उनके तरह-तरह के मनोरंजन की व्यवस्था कर पैसे कमा रहा है (यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस घटना के चौंतीस साल बाद आज इस कहानी के लिखे जाते समय कपिल इस दुनिया में नहीं है, लेकिन उसके द्वारा शुरू किए गए इस व्यापार ने आज एक विशाल होटल, ट्रेवल एजेंसी और अनेक शराबघरों की समन्वित समृद्ध संस्था का रूप अख्तियार कर लिया है।) छरहरा घुंघराले बालों वाला कपिल। उसकी उम्र का पता लगाना मुश्किल है। बड़ा आज्ञाकारी था। उसे देख भानुसिंह के दिल में आशा का संचार हुआ।

'अरे कपिल ! बाबू कपिल !' भानुसिंह स्नेह भरे से स्वर संबोधित कर उसे जोर से बांहों में जकड़कर दो-चार गज दूर ले गए और बड़ी निष्कपटता से अपनी समस्या बतलाई। 'प्रतापराय मेरी जगह लेंगे तभी न राजामाता नाक-भौं सिकोड़ेंगी !

लेकिन तू ठीक से कर भी लेगा...'

'नहीं सिंह साब, मुझसे नहीं होगा यह। क्या आप वह निष्ठुर भालूवाली बात भूल गए ? मुझे राजमाता शिखंडी कहकर क्यों बुलाती थीं ?'

भानुसाहब को याद आ गया। एक बार राजा के दल में शिकार के लिए जंगल में घुसते समय कपिल किसी क्रोधी भालू के चंगुल में फंस गया। भालू ने कपिल का निम्नार्ध अंग निर्मम रूप से नोच लिया था। कपिल जिंदा कैसे बच गया, यह आश्चर्य की बात है।

'नहीं सिंह साहब, उनलोगों के आगे कपड़े उतारना संभव नहीं। यदि कहें, तो बल्कि सिर्फ आपके आगे...' कपिल ने बड़ी उदारतापूर्वक कहा।

अपने घर न जाकर भानु बाबू तेजी से कोठी में लौट आए ! सपनपुर की शाम कभी भी उन्हें इतनी डरावनी और वीरान नहीं लगी थी। मजदूर लोग हाथ-मुंह धोकर घर जाने का इंतजार कर रहे थे। उनके जाते ही फाटक और बाहर का दरवाजा बंद करके वे अंदर जाकर चुपचाप बैठ गए।

वे समझ गए कि इस अभिनव संकट से उन्हें मुक्ति दिलाना उनके जान-पहचान के किसी भी व्यक्ति के वश की बात नहीं है।

भगवान से प्रार्थना की जाए तो कैसा रहेगा ? उन्होंने बड़े-बड़े देवताओं को याद किया, पर देवताओं ने निगाह फेर ली। दुनिया की बहुत बड़ी-बड़ी समस्याओं से जुड़े भजन वे दिन-रात भगवान को भेजते रहे। उनकी यह विकट समस्या उनके लिए कितनी ही बड़ी क्यों न हो, देवताओं की नजरों में तो आसान होनी स्वाभाविक है।

निकट ही राजवंश द्वारा स्थापित विशालेश्वर मंदिर है। उस मंदिर के देवता कभी बहुत पराक्रमी थे। मंदिर टूटकर ढहने और सपनपुर का महत्व कम हो जाने के कारण उस देवता की लोकप्रियता कम हो गई है—आरती-पूजन का सिलसिला लगातार चलते रहने पर भी।

एक समय था, जब भानुसिंह विशालेश्वर के अभिन्न भक्त थे। काफी अरसे बाद उन्होंने देवता को फिर से याद किया था। उन्हें यह उम्मीद थी कि उनकी इस अस्वाभाविक संकट की गंभीरता के बारे में विशालेश्वर को जानकारी होगी।

फिर भी, लगभग एक मील अंधकार-भरा रास्ता पार करके, मंदिर को भेदकर उनकी प्रार्थना अक्षत अवस्था में देवता के कानों तक पहुंचेगी, ऐसा सोचकर वे खुद मंदिर की ओर चल पड़े।

हवा उनकी पीठ पर धक्के मार रही थी। वे उसे काल की लाठी समझ रहे थे और उस चोट से उनकी रोने की इच्छा हो रही थी। बगैर कसूर के उन पर किस तरह अत्याचार किया जा रहा है, भगवान जानें इस बात को।

वे यथासंभव एकाग्र भाव से अपनी दयनीय स्थिति बताते चले जा रहे थे

और साथ ही प्रार्थना करते जा रहे थे।

पहाड़ पर नहीं, बल्कि एक ऊंचे शिलास्तूप पर बना था विशालेश्वर का मंदिर। नीचे खड़े कुछ लोग उत्तेजित मुद्रा में न जाने किस विषय पर कुछ विचार-विमर्श कर रहे थे। एक हाथ में टार्च थी। भानुसिंह के चेहरे पर रोशनी डालने के बाद वह सहर्ष बोला, 'आइए साहब, आइए। तो क्या आपके कानों तक भी बात पहुंच चुकी है ?'

भानु बाबू ने उन्हें पहचान लिया। वे स्थानीय लोग हैं।

'कौन-सी बात ?'

'क्या आपने नहीं सुनी ? मंदिर का सर्वस्व चोरी चला गया है। हालांकि सर्वस्व का अर्थ है पीतल के कुछ बर्तन, घंटियां, चांदी के दो रुपए...यह सब गया सो गया, 'देवता को विवस्त्र करके चोर रेशमी कपड़े का टुकड़ा भी ले गया।'

'तो क्या देवता विवस्त्र हैं ?' अस्वाभाविक ऊंची आवाज में सवाल किया भानुसिंह ने। वे शिलास्तूप पर चढ़ गए। पुजारी ने घुप्प अंधेरे में एक दीपक ऊपर-नीचे करके संगमरमर के पत्थर से बने देवता का विवस्त्र रूप उन्हें ठीक से दिखा दिया।

उनके आकस्मिक आविर्भाव और वापसी को स्थानीय लोग कैसे व्याख्यायित करेंगे, इस बात की परवाह किए बगैर भानुसिंह वहां से लौट पड़े।

घना अंधेरा भेदते हुए समुद्र किनारे-किनारे चलने लगे। देवता के प्रति उनकी सहानुभूति अदम्य सिसकियों के रूप में उनका हृदय झकझोर रही थी। लेकिन वे हंस रहे थे। अपूर्व थी वह सहानुभूति।

ऊपर अनंत आकाश विवस्त्र है। बाई ओर अनंत समुद्र विवस्त्र है। विवस्त्र हैं स्वयं विशालेश्वर। अब उनके संकोच के लिए बचा ही क्या है ?

आने दो उन्हें, आने दो ! वे बिना संकोच किए विवस्त्र होकर उनका स्वागत करेंगे।

'आओ, आ जाओ ! डराते किसे हो ?' उन्होंने अपनी हुंकारी उत्ताल हवा में उड़ेल दी।

कोठी के सामने कोई खड़ा था।

'साहब, आप इधर से आ रहे हैं ? अभी इसी ओर कोई जोर-जोर से चिल्ला रहा था।'

बोलने वाला टेलीग्राम-वाहक था।

'आपके घर से पता चला कि आप यहीं होंगे।' इतना कहकर उसे संदेश बढ़ा दिया।

'कोठी के बरामदे में ले जाकर भानुसिंह ने उसे रोशनी में पढ़ा। राजमाता ने लिखा है : सम्मेलन रद्द।'

'डर गए, वे लोग डर गए।' चीत्कार करते हुए कहा। भानुसिंह हंसने लगे।

'जी ?' सहमकर पूछा टेलीग्राम-वाहक ने।

'अरे नहीं, कुछ नहीं। अच्छा बताओ तो, इतनी रात को यहां कपड़े की कौन-सी दुकान खुली होगी ? विशालेश्वर नंगे खड़े हैं। एक रंगीन वस्त्र जुगाड़ किए बगैर काम नहीं चलेगा।' अति स्वाभाविक स्वर में कहा भानुसिंह ने।

लेकिन विशालेश्वर के प्रति अति गहरी कृतज्ञता से उनकी आंखें छलछला आई थीं। क्षण भर में विवस्त्र भगवान ने उनकी चेतना में कितना युगांतकारी परिवर्तन ला दिया था, आकाश और समुद्र के अतिरिक्त वह बात समझने की संभावना और किसी में नहीं थी।

चांदनी रात का सेतु

अशोक के बरामदे से कभी-कभी चांद इतना करीब दिखाई देता है जैसे कि दो-चार छलांग में उसे जाकर छुआ जा सकता है।

पूर्णिमा और उसके आस-पास की रातों में आराम-कुर्सी पर बैठे चांद से बतियाना अशोक को अच्छा लगता है। उदाहरण के तौर पर आज शाम को उन्होंने चांद से पूछा था, 'मेरी उम्र अठासी हो गई। तुम्हारी ?'

कभी-कभी उन्हें लगता, दिगंत में कोहरे से ढकी वनलता का शीर्ष और तैरते हल्के बादल में जो चांदनी का प्लावन है, उसमें बहुसंख्यक परियां लुकाछिपी खेल रही हैं। उन्हें यह बहुत अच्छा लगता। देखते-देखते दो-तीन मिनट तक नींद में सो जाते। हालांकि, कब सोते हुए और कब जागते हुए परियों को देखते हैं, उतना भी आजकल उन्हें याद नहीं रहता। इस तरह यह याद न रहने का सिलसिला अब नानादि स्थूल घटनाओं में भी संक्रमित होने लगा है। आज शाम को उन्हें जो चाय दी गई थी, उसे उन्होंने अपने निकट के स्टूल पर सिर्फ रखी हुई देखी थी। उसके बाद धीरे-धीरे खो गए और मन-ही-मन पूरी चाय पी ली थी। जब उनसे चाय ठंडी होने के बारे में कहा गया, तब उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मन-ही-मन पी हुई चाय की तृप्ति सचमुच के चायपान की तृप्ति से कतई कम नहीं है।

इतनी उम्र के बावजूद उनकी आंखें कोई खास ख़राब नहीं हुई जानकर उन्हें खुद पर फख्र हुआ था। मां-बाप की अंतिम संतान के रूप में पूरे पांच वर्षो तक मां का दूध पीना, इसका रहस्य है—असंख्य बार ऐसी घोषणा कर चुके थे, लेकिन आज शाम उन्हें इस बारे में कुछ संदेह था। क्योंकि घर के पास वाला सेतु, जहां बैठकर वे और उनके मित्र अपनी शामें गुजारा करते हैं, आज अब दिखाई नहीं दे रहा था। हर बार नींद उचट जाने पर सेतु की याद करके वे उस ओर देखते; सेतु दिखाई नहीं देता। चांदनी आज मुरझाई हुई होगी—ऐसा सोचकर, चांद की ओर दांत पीसते हुए देखते। पिछले कई वर्षो से ताजमहल का सिलुएट बनाए दिगंत के एग वृक्ष-पुंज की ओर देखा करते हैं। किंतु वह खूब साफ दिखाई देता है।

उसके बाद वे ऊंघने लगते हैं।

सीढ़ियों से ऊपर की ओर घिसटते हुए आ रहे पैरों की आहट ही उनकी ऊंघ तोड़ने के लिए पर्याप्त थी। वह आहट उनके अतरंग मित्र सुधीर की थी। उनसे दस साल छोटे होने पर भी सीढ़ियां चढ़ते समय हांफने लगते। हांफने की बात तो दूर, सीढ़ियां चढ़ते समय अशोक को इन दिनों विचित्र अनुभूतियां होतीं। पिछली बार वे सांध्य-भ्रमण के बाद कार से उतरकर सीढ़ियां चढ़ने लगे। चढ़ते समय बीच में उन्हें समय का ध्यान नहीं रहा और पलभर में ऊंघ की चपेट में आ गए थे। बरामदे में पहुंचने के बाद वे फिर कार ढूंढने लगे थे। अर्थात् कभी-कभी सीढ़ियां चढ़ते समय उन्हें यह महसूस होता कि सीढ़ियां उतर रहे हैं और उतरते समय लगता कि चढ़ रहे हैं।

'चलो सुधीर, हटलने चलें।' अशोक ने सीधी तरह बैठते हुए कहा।

'अब कहां जाएंगे। पुराना सेतु ही एकमात्र ठौर था। बाकी जगहों पर तो लोग बिलबिला रहे हैं।'

'मैं उसी सेतु पर जाने को कह रहा था।' अशोक बोले।

'लो तुम फिर भूल गए। सेतु तो तोड़ा जा चुका है। तभी तो हम महीने भर से वहां नहीं गए हैं ?

'ओ हो ! तो ये बात है। मैं भी सोचता था सेतु मुझे दिखाई क्यों नहीं देता ! कभी-कभी मुझे बात याद नहीं रहती। तुम्हारी बात और है; तुम ठहरे युवक !' अशोक बोले।

'और एक-दो साल बाद मैं अस्सी का हो जाऊंगा।'

'तुम्हारी उम्र में तो मैं...' अशोक की बात क्रमशः मीठी होती हुई अस्पष्ट हो गई।

'तुम भला कौन-से ज्यादा उम्र के हो ! आजकल तो सौ साल वालों की ख़बरें अक्सर अख़बार में पढ़ने को मिलती ही हैं। लो, सो गए क्या ? अशोक भाई !'

'नहीं-नहीं सोऊंगा क्यों ? बस थोड़ी-सी झपकी आ जाती है, अच्छा लगता है। क्या सेतु की ओर टहलने चलें ?'

'अशोक भाई, लगता है तुम सब भूल रहे हो।'

अशोक ने कुछ विचलित होते हुए हाथ-पैर हिलाए। पर उसके बाद कुछ ठहरकर बोले, 'भूल गए ? जब कई बातें भूलने की जरूरत थी, उस वक्त यह मन कुछ भूलता नहीं था। मन से ज्यादा बैरी कोई नहीं। अब अनेक बातें याद रखने की जरूरत है। बुढ़ा जाने पर तुम्हारे लिए कोई और याद रखने वाला नहीं होता। जो होते हैं, उनके मन का रंग कुछ और होता है, वे लोग तुम्हारी जो बातें याद करेंगे, उनमें उनके अपने-अपने मन का रंग इस तरह लग जाएगा कि तुम उसे फिर अपना कहकर पहचान नहीं पाओगे।'

'अशोक भाई, जब तुम अध्यापक थे, धारा प्रवाह व्याख्यान देते थे, नाटक

करते थे, आज देख रहा हूं ठीक वैसी ही बातें कर रहे हो।'

'वाकई ? जानते हो सुधीर, सब कुछ भूल जाने में ही सारे क्षोभ की शांति हैं। मैं शांत हूं। मैं यह जो बीच-बीच में सोने लग जाता हूं, यह उस शांति का ही लक्षण है। एक बार इसी तरह सोते समय मृत्यु आ जाए तो कितना अच्छा हो।'

सुधीर ने समझा अब अशोक बाबू बिल्कुल नहीं ऊंघेंगे। वे कुछ और संभलकर बैठ गए। क्षणभर सहमने के बाद बोले, 'अशोक भाई ! एक बात कहने के लिए कब से सोच रहा हूं। यदि तुम माफ कर दो, तो आज कहूं।'

'कहोगे ? कहो !'

सुधीर खांसने लगा। कमीज पर धूल न चढ़ी होने पर भी झाड़ने लगा, हाथ-पैरों का आग्रह न होने पर भी एक बार उन्हें फैलाकर फिर समेट लिया। संकोच की इतनी लंबी अभिव्यक्ति के बाद बोले, 'अशोक भाई, चारु दीदी की याद है तुम्हें ?'

अशोक की प्रतिक्रिया जान नहीं पड़ी।

'याद नहीं ? चारु दीदी कितनी सुंदर थीं देखने में ? अरे भाई, चारु दीदी की बात कह रहा हूं। तुम नए-नए अध्यापक बने थे। वेशभूषा, चाल-ढाल, बातचीत के स्टाइल में उस समय भला तुमसे बढ़कर कौन था ? चारु दीदी हमारे घर पर रहकर पढ़ती थी। याद आया ? दूर के रिश्ते में मेरी दीदी थी। दो-तीन साल बड़ी होंगी। तुम उन्हें चाहने लगे थे। ये लो, अशोक भाई, फिर सो गए क्या ? अरे ओ अशोक भाई।' सुधीर की आवाज में खीझ थी।

'अरे नहीं, सोऊंगा क्यों ?'

'चारु दीदी की याद आई या नहीं, कहो तो !'

'अरे हां। याद कैसे नहीं आएगी ? मैं तो उसे चाहने लगा था ना, अभी तुम्हीं तो बोल रहे थे ?'

'हां, अशोक भाई, खूब चाहते थे, चाहत में दुबले हो गए थे।'

'उन दिनों दुबला हो गया था, फिर सारी जिंदगी मोटा नहीं पाया।'

'और मेरे हाथों चिट्ठियां भेजा करते थे तो मुझे खिला-पिलाकर तब से जो इतना मोटा कर दिया, मैं पूरी जिंदगी दुबला नहीं हो सका। खैर, छोड़ो। अशोक भाई, वह भी तुम्हें चाहती थी।'

'नहीं, उसने नहीं चाहा...'

'चाहा था, अशोक भाई !'

अशोक चांद को देखते रहे। दस मिनट बीत गए, उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, 'वाह, मैं बड़ा खुशनसीब हूं। प्रमाण मुझे नहीं चाहिए, सुधीर ! लेकिन यह बात तुमने मुझसे कुछ साल पहले क्यों नहीं बताई ? मैंने खुद को कुछ अधिक समय तक खुशनसीब समझा होता।'

'यही तो असल बात है, अशोक भाई ! मैं आखिर माफी क्यों मांग रहा हूं। तुम तो जानते हो, चारु दीदी कितनी शर्मीली थीं। लेकिन तुम्हारी लंबी-लंबी चिट्ठियां पाने के बाद आखिर में उन्होंने तुम्हें एक चिट्ठी लिखी थी। वे तुमसे सेतु के पास मिलने को तैयार भी थीं। निश्चित समय पर आई भी थीं। तुम्हें न पाकर बेचारी अपमानित हो लौट गई थीं।'

'कहां, मुझे तो नहीं मिली वह चिट्ठी !' अशोक की आवाज कांपने लगी।

'कैसे मिलती !' सुधीर ने थूक निगलते हुए कहा, 'मैं चिट्ठी लेकर आ तो रहा था कि तेज हवा में सेतु के पास उड़ गई।'

'उड़ गई ?' अशोक खड़े होने लगे, 'चलो, ढूंढ़ें।'

'साठ साल बाद ?' हंसने लगे सुधीर। अशोक बाबू धीरे-धीरे पलकें उठाते हुए टिक गए आराम कुर्सी पर।

उसके बाद सुधीर गंभीर हो उठे और बोले, 'मुझे माफ करना अशोक भाई, चिट्ठी उड़ अवश्य गई, किंतु सचाई तो यह है कि उसे मैंने उड़ाया था...पढ़ने के बाद, फाड़कर।'

अशोक कुछ नहीं बोले।

सुधीर सिर झुकाए कहते गए, 'मैं नहीं बता सकता, मैंने ऐसा क्यों किया। चारु दीदी के प्रति मेरी अपार श्रद्धा थी। मैं उनका भला ही चाहता था। तुम्हारे व्यक्तित्व के प्रति मेरी श्रद्धा थी; परंतु न जाने क्यों, तुमसे डरता था। चारु दीदी तुम्हारी हो जाने पर जैसे कि मेरा उन पर और कोई अधिकार नहीं रह जाएगा। हालांकि रहा ही कौन-सा अधिकार ? कुछ दिनों बाद अपने पिता की बीमारी के कारण चारु दीदी चली गई, तो फिर नहीं लौटीं; लेकिन अशोक भाई ! जब तक वकालत में डूबा रहा, तब तक यह बात याद नहीं आई थी; परंतु सेवा-निवृत्ति के बाद पिछले दस वर्षों से हमलोग जितनी बार उस सेतु के पास गए हैं, उतनी बार मुझे उस याद ने पीड़ा पहुंचाई है। मैंने ऐसा क्यों किया ! तुम्हें कभी सब कुछ बता दूंगा, सोचकर आज तक नहीं कह पाया।'

सुधीर बाबू एकाएक चुप हो गए। सीढ़ियों पर पैरों की आहट और छड़ी की ठुक-ठुक की आवाज सुनाई दे रही थी। महेंद्र बाबू आ पहुंचे।

'जानते हैं, अशोक बाबू ! आपका उदाहरण ही मेरे अंदर अब तक इतनी ताकत बनाए हुए है। अच्छा, आप इतनी जल्दी सेतु के पास से लौट क्यों आए ? मैंने उस ओर से आपको देखा, आवाज भी दी। जैसे कि आप कुछ ढूंढ रहे थे, मेरी आवाज नहीं सुनी। वहां जो टूटे पत्थर इकट्ठे हैं, उन्हें पार करके आप तक पहुंचना संभव नहीं था, इसलिए जब चक्कर काटकर पहुंचा, आप वहां नहीं थे। यहां पहुंच चुके थे। कौन कहेगा आप मुझसे बारह साल बड़े हैं ?' महेंद्र ने प्रशंसा भरी आवाज में कहा।

'अशोक भाई तो आज बाहर गए ही नहीं। आपने किसी और को देखा होगा।' सुधीर ने कहा।

'किसी और को ? असंभव। क्यों अशोक बाबू, भला आपको पहचानने में कोई गलती कर सकता हूं ?' महेंद्र उत्तर की प्रतीक्षा करते हुए बोले, 'लो, ये तो सो गए।'

'उनकी ऊंघ उतनी गहरा नहीं होती। अशोक भाई !' सुधीर ने आवाज लगाई।

'अशोक बाबू'।—महेंद्र ने तेज आवाज में कहा।

'अशोक भाई।'

सुधीर ने अशोक बाबू को छुआ और चौंककर चिल्ला उठे, 'अरे, कहां चले गए सब—टेलीफोन करो डॉक्टर को। अरे बिजली क्यों गुल हो गई ? स्विच-बोर्ड कहां है ?'

महेंद्र बाबू ने कहा, 'मैं सब भूलने लगा हूं।'

विश्राम

मिस डॉली मोबार्ली दुमंजिले के बरामदे पर चहलकदमी करते हुए दोनों ओर के रास्ते की ओर बार-बार देख रही थीं। पांच बजने में दस मिनट हैं। पंद्रह फुट नीचे, चौड़े रास्ते पर रॉबिनसन मुंह ऊपर किए बरामदे की ओर ताकता खड़ा हो चुका है। अब आ जाएंगे डिक और पटेल।

रॉबिनसन, डिक और पटेल दरअसल तीन कुत्ते हैं। 'विश्राम' में करीब के स्लम के उपनिवासी हैं वे। उनके मालिक (यदि होंगे) उन्हें अलग नाम से बुलाते होंगे। मिस मोबार्ली ने पहले कुत्ते की ओर जिस दिन पहली बार एक रोटी फेंकी थी और वह रोटी अनायास ही उसके मुंह में जाकर लटक गई थी, उस दिन उन्होंने उसे रॉबिनसन कहकर पुकारा था। उसके बाद से उसे रॉबिनसन कहकर पुकारने पर वह कृतज्ञ आंखों से निहारता और नाहक ही अपनी पूंछ हिलाने लगता।

एक दिन शाम को बरामदे में कुर्सी पर बैठी उसका पूंछ हिलाना देखते-देखते मिस मोबार्ली सोच रही थीं रॉबिनसन का नाम सहसा क्यों आ गया उनकी जुबान पर ? याद आ गए थे स्थानीय एंग्लोइंडियन समिति के सचिव रॉबिनसन–पिताजी के मित्र। शहर से बाहर रॉबिनसन नाम का एक फार्म। जिस फार्म का अंडा 'साहब का अंडा' नाम से प्रसिद्ध था। दोनों रॉबिनसन दुनिया से विदा हो चुके थे।

उनके पास बैठी एक बिल्ली नीचे कुत्ते को ताक रही थी। उसकी आंखों में खीझ थी। उस बिल्ली को देखने से मिस मोबार्ली को बड़ा अटपटा लगता था। 'विश्राम' नामक संस्था बनी थी वृद्ध-वृद्धाओं के लिए। पर यह भी सही है कि उनमें से अधिकांश लोग आत्मीय-स्वजनहीन थे। जिस मानव कल्याणकारी संस्था ने ऐसे एकाकी वृद्ध -वृद्धाओं के लिए 'विश्राम' बनवाया था, वह एक जिम्मेवार संस्था थी। वहां के परिचरों से लेकर स्वास्थ्य-निरीक्षक तक सभी निष्ठावान कर्मचारी थे। इसके बावजूद उनमें अपनत्व नहीं था। यह सही है कि 'विश्राम' के संचालक प्रवासी भारतीयों से काफी पैसे इकट्ठे कर लेते थे संस्था चलाने के लिए, पर वहां के निवासियों के लिए आखिर आत्मीय स्वजनता वे कहां से लाएं ?

किंतु इसका मतलब यह तो नहीं कि कोई भी आकर गार्जियन कहलाए, यह असह्य है। यह बिल्ली यही करती है। आधी रात को देहरी पर खड़ी हो मोटी

आवाज में म्याऊं करती है; लगता है, वह पूछती है—क्यों, कैसी हो ! उस प्रश्न में शामिल होती है यह चेतावनी कि तुम ठीक से रहने को बाध्य हो। यदि तुम इस व्यवस्था में अच्छी तरह खप नहीं पा रही, तो तुम निहायत अभागी हो।

मिस मोबार्ली बिल्ली को उत्तर दिया करती थीं, 'खूब अच्छी तरह हूं, धन्यवाद !' लेकिन बिल्ली उसके बावजूद बिस्तर के बगल वाले टेबुल के ऊपर कूदकर बैठ जाती और उनकी ओर एक बार कड़ी नजरों से देखकर खिड़की से बाहर निकल जाती।

शुरू में कुछ दिनों तक मिस मोबार्ली उसका यह आचरण सह लेती थीं, किंतु जिस दिन वे समझ गई वह बिल्ली नहीं, बिलौटा है (काफी अरसे तक उनकी यही धारणा रही कि बिल्ली होती ही मादा है) उसके बाद में वे साफ-साफ कह देती, 'तुम्हारे आने की जरूरत नहीं। चले जाओ ! किंतु बिलौटा उनकी एक न सुनता।'

इस बात का पता उन्होंने लगा लिया था कि 'विश्राम' संस्था की संचालन समिति से उस बिलौटे का कोई संबंध नहीं था, फिर भी उसके तेवर कम नहीं थे।

बल्कि साठ-बासठ वर्ष पहले बिल्लियां कितनी नम्र हुआ करती थीं ! याद आती है बचपन की उस बिल्ली की। हमारे घर की ऊपर वाली मंजिल पर एक युवक रहते थे। क्या तो नाम था ? रॉबिनसन ! हां, रॉबिनसन !!

दिन भर बाहर रहने के बाद रात को घर लौटकर रॉबिनसन अपने लिए खाना पकाया करते थे। खाना खाने बैठते समय मिस मोबार्ली के परिवार की पूसी को बुलाकर उसे उसका हिस्सा देने की उनकी आदत बन चुकी थी। उसकी पुकार सुनते ही पूसी सीढ़ियां फलांगती ऊपर आकर उनकी कुर्सी के नीचे बैठ जाती। आधे घंटे के बाद तृप्त डगों से वह नीचे उतर आती।

लगभग छह महीने तक दूर ही दूर से थोड़ी-बहुत हंसी-मुस्कान के बाद तब की खूबसूरत बालिका मिस मोबार्ली ने एक दिन बिल्ली को पुकारने के ठीक पहले उसके गले में एक चिट्ठी लटका दी थी। चिट्ठी बड़ी नहीं थी; लेकिन उसे अंतिम रूप देने में सात दिनों की लिखित—पुनर्लिखित सात पंक्तियां थीं।

बिल्ली खा-पीकर लौट आई। वह अपनी पूंछ में बांधकर जो कुछ लाई थी, वह प्रत्युत्तर नहीं था। उसकी वही चिट्ठी थी। लेकिन वह खुली थी; उस पर मसाले और मक्खन की छाप थी।

साठ साल बाद मिस मोबार्ली ने 'विश्राम' के बरामदे से पुकारा, रॉबिनसन !

रॉबिनसन ने पूंछ हिलाई। एक बार आहिस्ता 'भौं' करके भूंका।

'रॉबिनसन' के नाम का तात्पर्य एक बार याद आ जाने के बाद दूसरे और तीसरे कुत्तों का नामकरण मिस मोबार्ली ने सोच-समझकर ही किया था। डिक

मैक्डोनाल्ड ने उन्हें धोखा दिया था—भरपूर लाभ उठाने के बाद। बदनामी के कारण फिर विवाह करना आसान नहीं था।

काफी अरसा बीत जाने पर उनका हाथ थामने आगे बढ़े थे लखपति पटेल-मृतदार, वयस्क,; पर सज्जन। पचास साल की उम्र में पहली बार प्रेम में पड़कर जाति, कुल, सगे-संबंधियों के विरोध को नकारते हुए मिस मोबार्ली से विवाह करने को बेताब जब वे पूर्वी अफ्रीका में व्यापार संबंधी अपने काम निपटाकर लौट रहे थे, जहाज डूबने से उनकी मृत्यु हो गई।

रॉबिनसन और डिक की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता पटेल को, ऐसा नहीं कि यह बात मिस मोबार्ली के मन में नहीं आई थी, किंतु उन्हें लगा कि अब रॉबिनसन और डिक के प्रति भी उनके मन में घृणाभाव नहीं था। ऐसा नहीं था कि उन्होंने उनलोगों को मन ही मन माफ कर दिया था, बल्कि प्रभु ने जरूर माफ कर दिया होगा। वरना उनके मन मे अब खीझ क्यों नहीं थी ? पटेल अपने जीवन के सबसे रोमांचक घड़ी में अकारण ही मर गए। (क्या कर रहे होंगे वे मरते समय ? सपने में देख रहे होंगे मिस मोबार्ली को ?) पर डिक मैक्डोनाल्ड का क्या हस्र हुआ उन्हें ठगकर जितने रुपए लेने थे उसने लिए; उसके बाद कई विदेशी ठगों से संबंध बनाकर पुलिस से मुठभेड़ में घायल हो गया। दो-तीन वर्षों तक पुलिस की निगरानी में अस्पताल में रहकर अंत में मर गया। बड़ा होशियार बनता था !

और रॉबिनसन ! शायद आखिर तक उनका प्यार बिल्ली तक ही सीमित रहा होगा। न जाने क्यों, मिस मोबार्ली को बार-बार लगता है, वे ल्यूकोमिया की वजह से मरे होंगे। किसी दुर्घटना में मरने के लिए भी कुछ तो व्यक्तित्व होना चाहिए। कहां व्यक्तित्व, कहां रॉबिनसन !!

या टी.बी से ? नही-नहीं, ल्यूकोमिया ही उनके चेहरे से सही मेल खाता है।

मिस मोबार्ली ने चहलकदमी करते हुए धीरे-धीरे रेलिंग के पास जाकर नीचे की ओर देखा। तीन पूंछें एक साथ हिल उठीं। तीन मुंह तीव्र आवेग से कुछ खाने को लालायित हो उठे—रॉबिनसन, डिक और पटेल।

वे मुस्कुराईं और उसके बाद अपने छोटे से फ्लैट में अंदर जाकर प्लास्टिक की टोकरी उठा लाईं। उसमें टूटे हुए बिस्कुट, केक और ब्रेड के कुछ टुकड़े थे।

'बरामदे में चार कुर्सियां डालो और चाय का इंतजाम करो'—उन्होंने परिचर को निर्देश दिया। शुभचिंतकों के आने का समय हो चुका है। वे मि. डॉस को नीचे खड़े बेंत हिलाते हुए समय बिताते देख रही थीं। डॉस की यही खासियत थी। यदि वे निश्चित समय से एक भी मिनट पहले आ जाएं, तो नीचे रास्ते में ही खड़े होकर एक मिनट बिताने के बाद अंदर आएंगे। 'यू आर ऑलमोस्ट ऐन इंगलिश मैन, मि. डॉस !' उनकी नौकरी के दौरान वरिष्ठ अधिकारी उनसे कहा करते थे, यह बात मि. डॉस बार-बार उद्धृत करते हैं। इस प्रशंसा-वाणी को वे अपने

लिए गर्व की बात समझते थे और कामना करते थे कि दूसरे लोग भी उनका अनुकरण करें।

मि. डॉस के तुरंत बाद आएंगी मिसेस साव। उनके साथ या उनके ठीक बाद आएंगे जैकब। ये सभी मिस मोबार्ली से थोड़े-थोड़े बड़े हैं—शायद अस्सी के आस-पास। मिस मोबार्ली के धनी पिता कभी इस शहर के एक सम्मानित व्यक्ति थे, सफलता और उपाधि की दृष्टि से। इसलिए मिस मोबार्ली के परिचितों की संख्या कम नहीं थी; पर इन्हीं तीन लोगों से उनका घनिष्ट संबंध था। मिस मोबार्ली के जीवन के विभिन्न चरणों की एक-एक ट्रेजेडी में जो लोग परिचित थे, वे सभी मर चुके हैं, खो चुके हैं—इन तीन शुभेच्छु नर-नारी को छोड़कर। ये तीनों अपनी-अपनी उम्र के हिसाब से मिस मोबार्ली से अधिक फुर्तीले होने का दावा किया करते थे। उन्होंने देखा है, आजकल मिस मोबार्ली को बीच-बीच में भ्रम हो जाता है। उदाहरण के तौर पर, बिलौटा के बारे में शिकायत सुनकर मिस साव ने कहा था, यह सोचना ग़लत है कि बिलौटा बातें करता है। मिस मोबार्ली उन्हें तुरंत नहीं समझ पाई (आम तौर पर सारी कैफियत, समय बीतने के बाद ही दिमाग में सूझती है) कि बिलौटा जो कुछ कहता है, अपनी भाषा में कहता है, अंग्रेजी में नहीं।

आदतन ये तीनों हमेशा से उनके प्रति सहानुभूति, दर्द प्रकट करते आए हैं। आज उनलोगों को पहली बार यह लगेगा कि सहानुभूति ही मिस मोबार्ली का एकमात्र प्राप्य नहीं; निपुणता हासिल करने का गौरव भी उन्हें दिया जाना चाहिए। सारी उम्र वे दिग्भ्रमित ही हुई हों—रॉबिनसन, डिक या पटेल को लेकर, ऐसा नहीं है; उनके लक्ष्य की तलाश व्यर्थ नहीं भी हो सकती है।

'हलो डार्लिंग।' डॉस, मिसेस साव और जैकब एक साथ अंदर आए।

मिसेस साव ने उन्हें चूमा भी।

मिस मोबार्ली उनका स्वागत करते हुए सोच रही थीं, किस तरह कितने कलात्मक रूप से वे अपने लक्ष्यभेद की अद्‌भुत पराकाष्ठा उन्हें दिखाएं। कहीं वे लोग यह समझ न जाएं कि वह जान-बूझकर अपनी सिद्धि का प्रचार कर रही हैं।

मिसेस साव के हाथ से बिस्कुट का आधा टुकड़ा जमीन पर गिर गया। मिस मोबार्ली ने झुककर उसे उठा लिया।

'सॉरी ! किंतु पड़े रहने दो ना !' मिसेस साव ने कहा।

किंतु मिस मोबार्ली ने कुछ मुस्कुराते हुए अतिथियों का ध्यान आकर्षित करने-सा काफी समय तक बिस्कुट अपने हाथ में रखा और फिर नीचे फेंक दिया। रॉबिनसन ने तुरंत कूदकर वह टुकड़ा झपट लिया। डिक और पटेल ने अब अपनी बारी आने की खुशी में आधी खांसी खांसने के बाद भूंका।

'शाब्बाश !' जैकब और डॉस ने कहा।

'बस इतने में ही शाब्बाश ! अब आगे देखो !' मिस मोबार्ली प्लास्टिक की

टोकरी लेकर घूमकर बैठ गईं और बारी-बारी से केक, बिस्कुट और ब्रेड के टुकड़े फेंकने लगीं। उद्दाम आनंद से नाच-कूदकर तीनों कुत्ते वह सब चटपट झपटते जा रहे थे। शुभेच्छु अतिथिगण लगातार शाब्बाश, शाब्बाश कहते रहे। पुलकित सिहरन से मिस मोबार्ली अपने अनजाने ही न जाने कब उठकर खड़ी हो गई थीं। उनकी सिल्क फ्रॉक के घेरे और झूलते शिथिल मांसपेशियों में कुत्तों की प्रतिध्वनियों की तरंगें उठ रही थीं। वे लगभग छंदमय नाचती जा रही थीं और फेंकती जा रही थीं।

'अब रहने भी दो, डॉली डिअर, आओ, चाय पी लो।'—मिसेस साव ने आदेश देने-सा कहा। प्लास्टिक की टोकरी भी खाली हो गई। इसलिए चेहरे पर परम तृप्ति प्रकट करते हुए मिस मोबार्ली बैठ गईं। वे हांफने अवश्य लगी थीं, फिर भी अविलंब हंसने और बातें करने की कोशिश कर रही थीं, 'हाः हाः, तुमलोगों को आश्चर्य जरूर हो रहा होगा, क्यों ? किंतु विश्वास करो, शायद ही मेरा लक्ष्य कभी चूकता होगा। मैं कभी ऐसा भी कर सकूंगी, क्या कोई कभी यह सोच भी सकता था ? सौ में पंचानबे बार सफल !'

'क्यों नहीं होगा !'—मिसेस साव ने चाय फेंटते हुए कहा।

मिस मोबार्ली ने नीचे देखकर हाथ हिलाकर कुत्तों से कहा, 'अभी तक खड़े हो ? चलो अब, जाओ ! भागो ! कल फिर आना ! चलो !'

'तुममें अच्छी-खासी स्पोर्ट्स युडली है, क्यों ?' जैकब ने मुस्कुराते हुए पूछा।

'पर किसे मालूम था कि इसमें मैं इतनी सफल हो जाऊंगी !'

मिस मोबार्ली ने सकुचाते हुए कहा।

'अरे, होती कैसे नहीं ! कुत्तों से बड़े शिकारी हैं ही कहां ?'—डॉस ने कहा।

'मैं और कह ही क्या रही थी, तुम चाहे जिस तरह फेंको वे झपट लेंगे !' मिसेस साव ने समझाया।

'मेरे एलसिसिएन डॉनजुआन की याद है ना ? एक छलांग में वह पांच हाथ ऊंचे पेड़ पर बैठी चिड़िया को दबोच लेता था।' डॉस ने अपनी छड़ी उठाकर चिड़िया की स्थिति और कुत्ते के छलांग लगाने का चित्र शून्य में आंक दिया।

'अरे मेरे दिल्ली में होने के दौरान स्पेनिअल स्वीटहर्ट जिसका चित्र सन् 1971 में मार्च अंक 7, वोल्यूम 3 पृष्ठ 12 'डॉग्स इंटरनेशनल' में मि. रिचर्ड ह्वाइट्स ने छापा था—वह किस तरह टेनिस-बॉल के पीछे-पीछे बिजली की गति से दौड़ते हुए उसे मुंह में दबोचकर ले आता था !' कुछ सेकेंड तक केक चबाने के बाद मि. डॉस पुनः बोले, 'मि. ह्वाइट्स ने लिखा था—आदर्श कुत्ता-पालक —मि. डॉस और उनके सरकारी स्पेनिअल स्वीटहार्ट को देखने से लगेगा कि स्वीटहर्ट ही मालिक है, मि. डॉस उसके कुत्ते ! मैंने मि. ह्वाइट्स को बार-बार कहा, इतना अधिक कंप्लिमेंट मेरा प्राप्य नहीं है, सर ! लेकिन मि. ह्वाइट्स कहते—'मि. डॉस ! तुम लगभग पूरी तरह एक इंगलिशमैन हो—सिर्फ तुम्हारी इस विनयशीलता को छोड़कर।'

जीवन में जिन स्मरणीय कुत्तों के संस्पर्श में तीनों आए थे, उनकी चर्चा करने में वे लोग मशगूल रहे। उस आधे घंटे तक किसी ने ध्यान नहीं दिया कि मिस मोबार्ली का चेहरा कितना निर्जीव लग रहा था; उनका पूरा शरीर कांपने लगा था।

'फिर अगले सप्ताह मिलते हैं, डॉली डियर !' कहते हुए अतिथियों ने विदा ली। मिसेस साव ने फिर उन्हें चूमा। लेकिन किसी को उनकी मर्मांतक स्थिति का एहसास नहीं हुआ।

मिस मोबार्ली दीवार का सहारा लेते हुए अपने बिस्तर पर जाकर गिर गईं।

'मूर्ख हैं मूर्ख !' कहते हुए वे बार-बार उठतीं और लेट जातीं।

उसके बाद न जाने कब सो गईं। परिचारिका ने टेबुल पर डिनर सजाकर रख दिया था। उन्होंने नहीं खाया।

नींद से जगने के बाद काफी कोशिश करके उन्होंने अपने मन को शांत किया, 'मनुष्य से न्याय की आशा करना बेकार है' कहकर बार-बार मन को समझा रही थीं। पिछली शाम की घटना भूलने की कोशिश करने लगीं। उसके बाद कुछ देर अतिथियों का मनोविश्लेषण करने में बिताने के बाद इस नतीजे पर पहुंची कि चूंकि वे लोग उन्हें सारा जीवन लक्ष्य भ्रष्ट होते देखते आए हैं, इसलिए आज उन्हें सफल होते देखने को तैयार नहीं हैं।

अपनी विश्लेषण क्षमता देख मिस मोबार्ली विस्मित हुईं। वेदना काफी हद तक कम हो गई।

किंतु तुरंत ही उन्हें लगा, अपने लक्ष्यभेद की शक्ति को लेकर उनके मन में भी कुछ संदेह हो रहा है। यह संदेह आत्मघाती है, संभवतः वास्तविक वेदना का कारण भी यही है। अभी-अभी अर्जित इस अति मूल्यवान आत्मविश्वास को इतनी आसानी से आहत होने नहीं दिया जा सकता।

वे साबित कर देंगी, कम से कम खुद के लिए, कि जीवन-व्यापी तमाम पराजय के बाद अंत में वे अचूक लक्ष्यभेद शक्ति की अधिकारी हुई हैं।

अगले दिन लगभग आसन्न संध्या को मिस मोबार्ली प्रशस्त बरामदे में चहलकदमी करते हुए डेविड डावसेन के कमरे में बार-बार झांकती जा रही थीं। डावसेन पूर्व सेनाध्यक्ष थे। पूरी शाम तकिए से टिककर बैठे हुए ऊंघा करते थे।

चार-पांच बार उनके कमरे के सामने चहलकदमी करने के बाद मिस मोबार्ली अंदर घुस गईं। फिर निकल आईं डावसेन ने आंखें नहीं खोलीं।

पांच मिनट के अंदर मिस मोबार्ली ने लंबी सांसें खींचकर प्रचुर आक्सीजन और उसके साथ सीना-भर साहस जुटा लिया। डावसन तकिए के नीचे जिस ओर रिवाल्वर रखा करते थे, वे अच्छी तरह जानती थीं। थोड़ी दुविधा के बाद वे दूसरी बार ऊंघते सेनाध्यक्ष के कमरे में घुस गईं और उन्होंने तुरंत रिवाल्वर अपने हस्तगत कर लिया।

अब देखा जाएगा ! केक-बिस्कुट के क्षेत्र में बहादुरी उनकी न होकर कुत्तों की हुई, अब बुलेट के क्षेत्र में ! बुलेट खाने के लिए कुत्ते निश्चित ही आग्रह नहीं करेंगे। सिर्फ उनके निशानेबाजी की करामात से ही बुलेट कुत्तों को छू सकते हैं।

रॉबिनसन ? डिक् ? पटेल ? कोई भी चलेगा। पर बेचारा पटेल ! यदि उसे जहाज में डूबकर ही मरना था तो प्रेम में क्यों पड़ा ? वे निश्चित रूप से गोली चला सकती हैं। नहीं चला सकतीं ? नहीं नहीं, जरूर चला सकती हैं। नहीं चला सकतीं ? अरे नहीं, जरूर चला सकती हैं।

'मेरा रिवाल्वर ! रिवाल्वर !! यह क्या डॉली ! तुम ?' वृद्ध डावसेन चिल्लाते हुए उठते-गिरते दरवाजे तक दौड़ आए। मिस मोबार्ली वह रिवाल्वर अपनी छाती से लगाए खड़ी रहीं।

'आत्महत्या ? तुम आत्महत्या करना चाहती हो, डॉली ?'—डावसेन ने और जोर से चिल्लाया।

'आत्महत्या ?' दूसरी ओर से दौड़ आईं कभी किसी राजपुरुष की मिस्ट्रेस रह चुकी अभिनेत्री राजश्री मिश्रा।

'आत्महत्या ?' दौड़ आए भूतपूर्व प्रिंसिपल जोनाथन जाना, जो सारे दिन चुप रहकर रात भर नींद में मिल्टन पढ़ाते हैं।

'आत्महत्या ?' खुद ही खुद से सवाल किया मिस मोबार्ली ने और भुकभुकाकर रो पड़ीं।

एक ओर से जयश्री और दूसरी ओर से जोनाथन ने उनका सिर अपने-अपने सीने से टिकाने की कोशिश की। मिस मोबार्ली ने बारी-बारी से उन दोनों के सीने पर कुछ-कुछ देर सिर रखा। उसके बाद उनके हाथ से बड़ी सावधानी से रिवाल्वर छुड़ा रहे डावसेन के सीने पर भी सिर रखा।

पहले उनकी रुलाई में साथ दिया प्रिंसिपल ने, उसके बाद अभिनेत्री ने और बाद में सेनाध्यक्ष ने।

पंद्रह फुट नीचे रॉबिनसन, डिक् और पटेल ने धीमे-धीमे भों-भों किया।

मित्रों ने ले जाकर उन्हें बिस्तर पर लिटा दिया। जयश्री सबके लिए कॉफी बना लाईं। सेनाध्यक्ष ने उस दिन अपनी ओर से कुत्तों को बिस्कुट वितरित किए। उसके बाद मिस मोबार्ली के बिस्तर के पास बैठकर वे लोग देर रात तक लगातार बोलते रहे—आत्मविश्वास और भगवत् कृपा की अनेक कहानियां।

सो जाओ बेटी, लाडली बेटी !' प्रिंसिपल ने कहा और शुभ-रात्रि कहते हुए सभी उठकर चले गए।

उस रात जब बिलौटे ने आकर यथा-रीति कुशल-क्षेम पूछा, मिस मोबार्ली को अपमानित होने-सा नहीं लगा। उन्होंने सकुचाते हुए कहा, 'मैं बहुत अच्छी तरह से हूं। धन्यवाद।'

राजकन्या

(समर्पण : जिन प्राचीन कहानियों की कुछ सामग्री इस कहानी में संयोजित है, उन कहानियों के अज्ञात कथाकारों के लिए)

किसी राज्य में एक सुंदर राजकन्या थी, 'राजा की इकलौती संतान...'

'वाह...न जाने कब से हमने राजकन्या की कहानियां नहीं सुनी हैं। सुनाओ, सुनाओ' भट्ट जी एकाग्र हो बैठ गए।

'किस राज्य की थी वो ?' राजकन्या का नाम-धाम और संभव हो तो टेलीफोन नंबर भी बताना' साहू जी ने कहा। कई महीने पहले चोर-बाजारी के आरोप में गिरफ्तार होकर न्यायालय में ज्ञानी वकीलों के सवाल-जवाब ध्यान से सुनने के बाद से वह अपने को पहले से अधिक ज्ञानी मानने का आदी हो चुका था।

'देख साहू, हमारे बीच गई पुराने जॉक्स बिल्कुल घिस-पिट और सड़ जाने तथा तुमलोगों के कई दिनों से कहानी सुनने की तीव्र इच्छा के कारण आज इन्हें मैं पकड़ लाया हूं। यदि तुम इस तरह रसभंग करोगे तो मैं सोचूंगा कि इन्हें लाकर मैंने गलती की है। आज ये एक गरीब मास्टर हो सकते हैं, पर थे मेरे सहपाठी। देखो ना, कितने सज्जन हैं : शराब छूते तक नहीं, पर हमारे मद्यपान को बर्दाश्त करते हुए गपशप करने को राजी हो गए हैं।' राय साहब ने चेताया।

'चुप : क्या मैं गरीब मास्टर था : तुम खुद क्या थे ? बंदरगाह में बाबूगिरी किया करते थे। आज यदि भट्ट जी ने और मैंने तुम्हें खींच-खांचकर उद्योगपति न बनाया होता, तो पान चबाने में ही तेरे जीवन के सारे शौक पूरे हो गए होते। ढाई सौ रुपए की बोतल लिए हुए हम पर सरदारी कैसे करते ? राजकन्या का नाम-धाम और उम्र जानने का हकदार हूं मैं, क्योंकि-क्योंकि-क्योंकि मुझे वह सब जानना चाहिए।' साहू जी ने झुंझलाकर गिलास में अधिक मात्रा में पेय उड़ेला।

'क्या चाहिए, बताइए।' राय ने पूछा।

'अरे, बता तो दिया कि मुझे जानना चाहिए। राजकन्याएं एक समय में मेरी अंतरंग थीं। मैं भी कितना चाहता था उन्हें।' चुसकी लेते हुए साहूजी ने जवाब दिया।

'अच्छा, तुम्हारे किसी राजकन्या को जानने की हमें तो कोई जानकारी नहीं है।' राय साहब ने फिर जिरह की।

'अरे ! मैं परीकथा की राजकुमारियों की बात कर रहा हूं। जाने कितने अरसे से उनकी कोई खबर नहीं है। तो फिर कैसे न पूछूं ? साहू चिल्ला उठे और फिर भी झुंझलाहट खत्म न होने पर कहा, 'कहानी सुनाने के लिए जिस मास्टर को पकड़ लाया हूं, उसे पीना नहीं आता।'

'वैसे तो उनके न पीने के कारण मैं शर्मिंदा हूं। लेकिन वे सिर्फ मास्टर नहीं है, किताबें भी लिखते हैं। कहानी सुनाकर अभिनय करके हमें मंत्रमुग्ध कर देते थे। जब कहानी सुनने का समय था, तब तुमलोगों के बहकावे में आकर मैंने अपने सारे सपने खोए न थे। अच्छा, साहू जी : क्या तुमने सिर्फ मानवीयता से उद्‌बुद्ध होकर मुझे बाबू से ऊपर उठाकर लखपति बनाया था ? क्या तुम्हारे समुद्र पार का काला धंधा मेरे बिना चल पाता ?'

लेकिन साहू कुछ न सुनने-सा कहता गया, 'पीना नहीं आता, वरना राजकन्या को और भी सुंदर रूपों में देखता। और फिर, उस आदमी की एक ही आंख है !'

'जी हां ! राजकन्या ने भी पहले मेरी एक आंख देख तरस खाया था :' वक्ता ने किंचित मुस्कुराकर धीरे से कहा।

गिलास होठों तक ले जाते समय दंग रह गए साहू। फिर टेबुल पर गिलास रखते हुए पूछा, 'मतलब, आप जानते थे उस राजकन्या को ?'

वक्ता बिना कोई उत्तर दिए कहते रहे, 'सुंदरी राजकन्या जैसी बुद्धिमति थी, वैसी ही गुणवती भी; लेकिन वे थीं बेहद खयाली और जिद्‌दी :'

'हां, वे लोग वैसी ही होती हैं। उदाहरण के लिए—उदाहरण अभी सूझ नहीं रहा है...'

'चुप कर :' साहू जी को रोका उनके पार्टनर भट्‌ट ने और वक्ता की ओर देखते हुए नम्रतापूर्वक कहा, 'कहते रहिए, कहते रहिए, बुरा मत मानिएगा।'

वक्ता कहते रहे : राजा चाहते थे राजकन्या का विवाह करना, लेकिन राजकन्या की यह अजीब जिद्‌द थी कि उनके किसी भी तीन सवालों का जवाब जो दे सकेगा, सिर्फ वही उनसे विवाह कर सकेगा। और उनके सवाल या उनकी ख्वाहिश इतने अद्‌भुत हुआ करते थे कि उनकी परीक्षा में उत्तीर्ण होना असंभव था। उदाहरण के लिए एक पृथुलकाय राजपुरुष को उन्होंने आदेश दिया कि अगर वे एक साल तक सिर्फ तिलचट्‌टे का आहार करके प्रतीक्षा करेंगे, तो वे उनसे शादी कर लेंगी। एक और बेचारे राजा का हाल सुनिए। उनकी तीसरी पत्नी का अभी-अभी निधन हुआ था। बेचारे राजा दुःखी होकर रोते-कलपते राजकन्या से शादी करने गए तो उनके लिए आदेश हुआ—यदि आप लगातार हफ्ते भर अट्‌टहास कर सकेंगे, तब आपका प्रस्ताव स्वीकार किया जाएगा। उल्लूनुमे विचारकों के एक दल के सामने राजा ने

अट्टहास करना आरंभ कर दिया : लेकिन यह कितना कष्टकर और अपमानजनक है, करीब एक घंटे बाद उसे महसूस कर वे फिर से अपनी तीसरी पत्नी की याद में रोने लगे और वहां से चले गए।

इस तरह राजकन्या सैकड़ों राजकीय एवं संभ्रांत उम्मीदवारों को रुलाकर छोड़ने के बाद मैंने बूढ़े राजा के पास जाकर कहा, 'हुजूर : मैं राजी हूं।' राजा ने दांत किटकिटाकर कहा, अरे बेवकूफ : 'कौन राजी नहीं है ?' मैंने बात साफ करते हुए कहा, 'हुजूर मैं परीक्षा देने को राजी हूं।' राजा ने कहा, 'देख, बेटे : मैं काफी थक चुका हूं। एक के बाद एक बिच्छू के डंक झेलने की तरह मुंह बनाकर लौटते जाएंगे लोग और मैं उन्हें सज्जनतावश ढेर-सी तसल्ली के साथ मार्ग-व्यय देता चलूंगा, अब ऐसा नहीं चलेगा। अब से जो राजकन्या से हारेगा, वह एक-दो साल तक हवालात में विश्राम करेगा। बोलो, राजी हो ?'

'राजी हूं,' मैंने कहा, 'पर यदि राजकन्या को हरा दिया, तब ?'

'तभी तो तुम उनसे शादी करोगे।' राजा ने उत्तर दिया।

'हुजूर : यह तो मैं जानता हूं; लेकिन जब आपने पराजितों के लिए एक नया नियम बनाया है, उसके साथ तालमेल बिठाने के लिए, भारी विजयी के लिए एक नया वचन देना चाहिए।' मैंने कहा।

'क्या मतलब ? तुम जीत जाओगे तो राजा बनोगे, यही न ?' राजा ने खीझभरी आवाज में पूछा।

'नहीं हुजूर : फिलहाल मुझे इतना वचन दीजिए कि अगर मैं राजकन्या को हरा दूं तो मेरी कोई भी शर्त आप पूरी करेंगे,' मैंने कहा।

'चलो, ठीक है', राजा ने उत्तर दिया।

उसके बाद मुझे महल के भीतर वाले बगीचे में ले जाया गया। मेरी दुर्बुद्धि से आकृष्ट होकर स्वयं राजा भी मेरे साथ-साथ गए। राजा के साथ चलने से पार्षद-वर्ग भी चलने लगा। राजकन्या कई मोरों के साथ खेल रही थीं। मुझे देखकर सहेलियों से कहा, 'मोरों के साथ खेलना छोड़ो। आओ, अब बंदरों के साथ खेलें।' मैं वह अपमान हजम कर गया।

'अच्छा किया' : भट्ट ने बड़ी सहजता से मुस्काते हुए गिलास खाली कर दिया।

मुझे देखते ही राजकन्या ने कहा, 'शादी करने आए हो ना : पर तुम्हारी तो एक ही आंख है। मुझे पूरा नहीं देख पाते होगे, आधा ही दिखाई देता होगा, क्यों ?'

मैंने कहा, 'इसका विपरीत ही सत्य है। तुम दोनों आंखों से जितना देख पाती हो, मैं एक आंख से उसका दुगुना देख पाता हूं।

राजकुमारी क्रोधित हो चिल्लाई, 'कैसे ?'

'क्रोधित न होतीं तो क्या तुम्हारी पीठ थपथपातीं ?' साहू ने भी चिल्लाकर कहा, 'तुम राजकन्या के साथ तर्क कर हरे थे; तुममें इतना साहस ?'

उसने कुछ मुस्कुराकर पुनः कथा आगे बढ़ाई—

मैंने कहा, 'राजकुमारी : किस प्रकार मैं दुगुना देख पा रहा हूं, वह मैं समझा दूंगा, पर आपके तीन प्रश्न में से इसे पहला प्रश्न समझा जाएगा ना ?'

'ठीक है', राजकन्या ने सहमति जताई।

मैंने पूछा, 'आप मेरी कितनी आंखें देख पा रही हैं ?'

उन्होंने कहा, 'बस, एक ही।'

मैंने कहा, 'लेकिन मैं आपकी दो आंखें देख रहा हूं। तो फिर मैं आपसे दुगुना देखता हूं या नहीं ?'

मेरे उत्तर में राजा, सभासद-वर्ग, यहां तक कि खुद राजकन्या की सहेलियां भी हंस पड़ीं—

'लो, हम भी तो हंस रहे हैं।' भट्ट होंठ कंपाकर हंस पड़े। मानो मुख की मांसपेशियां उनके नियंत्रण में न थीं।

साहू आंखें फाड़े और राज्य मिटमिटाती आंखों से देखते हुए बैठे रहे।

वह कहता गया, 'इस प्रकार पहली किश्त में ही मुझसे हारकर राजकन्या ने गुस्से में तमतमाकर पूछा, 'अब मैं दूसरा सवाल कर रही हूं। अगर इसके उत्तर में 'ना' कहोगे तो तुम हार जाओगे, अगर 'हां' कहोगे तो उसके अनुरूप तुम्हें काम करना पड़ेगा।'

'ठीक है, मैं राजी हूं।'

राजकुमारी ने प्रतिशोध लेने की मुद्रा में कहा, 'ये जो पहाड़ देख रहे हो, उसे तुम सिर पर लादकर एक कोस की दूरी पर रख पाओगे ?'

'रख पाऊंगा' मैंने कहा।

इस प्रकार मेरा उद्धत उत्तर सुनकर राजकन्या स्तब्ध रह गई।

भट्ट ने आंतरिकता पूर्वक कहा, 'हम भी स्तब्ध हैं।'

'फिर क्या हुआ ?' राय ने पूछा।

वह बोलने लगा—'राजकुमारी अपने पीछे-पीछे आने का निर्देश देकर पहाड़ की ओर बढ़ीं। मेरे चलने से राजा, पार्षद, मित्र, मंत्री—सभी चलने लगे। पहाड़ के पास पहुंचकर राजकन्या ने कहा, 'चलो अब अपने कहे अनुसार काम करो।'

मैंने कहा, 'मैं तैयार हूं। आपको सिर्फ पहाड़ को उठाकर मेरे सिर पर रख देना हैं मुझे सिर्फ पहाड़ को लादकर ले जाना है—उठाने की बात आपने नहीं कही थी।'

मेरे उत्तर से राजा उल्लसित होकर नाचने ही वाले थे कि अपनी लाडली कन्या के दयनीय चेहरे पर उनकी नजर पड़ी।

इस तरह राजकन्या दूसरी बार मुझसे पराजित हुई।

'सर्वनाश', भट्ट ने कहा और साहू की सांसें जोर-जोर से चलने लगीं।

कहने वाला कहता गया—राजकन्या ने अब अपना तीसरा कदम उठाया। पूछा, 'क्या तुम ऐसी बारह कहानियां सुना सकोगे, जो मेरी कथा-प्रिय सखियों ने कभी सुनी नहीं हों ?'

'क्यों नहीं', मैंने कहा।

उसके बाद हम सभी महल के अंदर वाले बगीचे में लौट आए। राजकन्या को घेरकर सखियां बैठ गई। राजा और सभासद-वर्ग मुझे घेरकर बैठ गए। मैं खड़े होकर एक के बाद एक कहानी सुनाने लगा। हर कहानी के अंत में सखियों से पूछता रहा, 'क्या यह कहानी पहले कभी किसी ने सुनी थी ?' मुग्धा सखियों ने एक साथ कहा, 'नहीं, नहीं।'।

जब मैंने ग्यारह कहानियां सुना दी, तभी अत्यंत विचलित होकर राजकन्या ने सखियों के कान में कहा, 'इस बार वह कुछ भी कहे, कहने के बाद जब मैं पूछूं, तब तुम सब कहना कि 'हां', पहले से सुनी थी।'

मैं चौकन्ना था। अतः राजकन्या का निर्देश समझने में मुझे दिक्कत नहीं हुई। मैंने कहा : सुनो मेरी अंतिम कहानी, 'पिछले दिनों की बात है। एक युवक था, जो चुपके से खाई पारकर हरम के पास वाले बगीचे में राजकन्या से मिलता था। वह रोज एक कमल लाकर राजकुमारी को भेंट करता था। एक दिन वह कमल लिए बिना खाली हाथ आया। राजकन्या ने मजाक में कहा, 'अगर तुम मुझसे इतना प्यार करते हो, तो कमल के बदले अपनी आंख निकालकर क्यों नहीं दे देते ?' युवक ने तुरंत तेज छुरी से अपनी एक आंख निकालकर राजकुमारी को सौंप दी। विस्मय, विषाद और कृतज्ञता से विगलित होकर राजकुमारी ने उसी वक्त उस युवक के गले में वरमाला पहना दी। यही है वो राजकन्या और यह मैं हूं वह युवक। 'सखियों, क्या यह कहानी तुमलोगों को पहले से मालूम थी', मैंने पूछा।

'हां, हां, बिल्कुल मालूम थी, ये बात कौन नहीं जानता ?'

'धन्यवाद', मैंने कहा, 'राजा और सभासद भी इसे जान लें।'

राजकन्या सिर झुकाए बैठी रहीं। राजा और सभासद-वर्ग खुशी से फूले नहीं समाए। राजा ने घोषणा की कि 'बस, अब मुझे एक योग्य दामाद मिल गया।' विवाह होगा।

'सर्वनाश', भट्ट पर मानो वज्र गिर पड़ा। दे बैठे रहे।

'क्या हुआ, तुमने धोखा देकर राजकन्या से शादी कर ली ?' साहू कांपते हुए उठ खड़े हुए।

'जी हां', कथक ने उत्तर दिया।

'तुम तो शादी के बाद राजा बने होते', राय ने बात उठाई।

'बना होता, किंतु मैंने अपनी एक शर्त राजा से पहले ही मनवा ली थी। मैंने अपनी वही शर्त रखी–राजकन्या से विवाह करके मैं उसे अपनी झोपड़ी ले जाऊंगा। वह मेरे दुःख-सुख की साथी होगी। राज-शासन से मेरा संबंध नहीं। राजा इसे मानने को बाध्य थे।'

'बदनसीब !' भट्ट चीखे।

'तुम्हें क्या अधिकार था राजकन्या को इस तरह तड़पाने का ? मैं तुम्हारी दूसरी आंख निकाल लूंगा।' साहू एक चम्मच उठाकर लड़खड़ाते कदमों से वक्ता की ओर बढ़ा। वक्ता उठ खड़ा हुआ और उसने अपनी जिस आंख को अब तक मूंद रखा था, उसे अचानक खोलकर कहने लगा, 'मेरी एक आंख का न होना जितना सत्य है, ये सारी बातें उतनी ही सत्य हैं। धीरज रखिए।'

साहू के हाथ से चम्मच खिसक गया। उसने सहमे हुए बोला, 'आप बड़े अजीब आदमी हैं।'

'आप ही राजकन्या से शादी करने के काबिल हैं। हमें क्षमा करें।' भट्ट ने कहा और पर्स खोलकर कई बड़े नोट कथक की जेब में ठूंस दिए।

'मेरी ओर से राजकन्या के लिए एक बुके ले जाना, साथ में कुछ उपहार भी।' साहू ने भी उसी तरह कई नोट बढ़ा दिए और फिर टेबुल पर औंधे मुंह पड़े रहे।

वक्ता को बंगले के बाहर राय पहुंचाने आए। अचानक उनका हाथ थामकर उन्होंने मिन्नत करते हुए कहा, 'मैं उनलोगों की तरह बेहोश नहीं हूं, नहीं हूं ना ?'

'नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं।' वक्ता ने तसल्ली दी।

अचानक राय ने रोते हुए कहा, 'मैं जानता हूं ऐसी कोई राजकन्या नहीं थी कभी, हैं ना ?'

'जी हां,' वक्ता ने कहा।

'तो फिर मैं रो क्यों रहा हूं ? कहते हुए राय कुछ देर तक वक्ता के सीने पर सिर रखकर सुबकते रहे।

ब्रजगोपाल और बुलूबाबा

बसस्टैंड से पांच मील और रेलवे स्टेशन से पच्चीस मील की दूरी पर बसे हमारे धुर देहात में बालक के रूप में एक अवतार अथवा (भिन्न मत में) विभूति या महात्मा का आविर्भाव होगा, मैंने इसकी कोई कल्पना नहीं की थी, जबकि इसी गांव के एक सपूत शहर में अध्यापक बन चुके थे और एक दूसरे क्षण जन्मे प्रौढ़ एस.डी.ओ. की पदवी तक पहुंच चुके थे। शहर में हाल ही में आया यह शिक्षक बीच-बीच में उन्हें नमस्ते करने का मौका पाकर कृतार्थ न होने पर भी आप्यायित जरूर होता था।

बुलू नाम के उस बालक को मैंने सिर्फ दो साल पहले गांव में गर्मी की छुट्टी बिताने के समय देखा था। बच्चे के पिता हरिदास उसका हाथ थामकर ले जाते समय मुझसे मिले थे और प्रणाम किया था। 'बाबू जी को नमस्ते करो' कहकर उन्होंने कई बार बच्चे से अमल करने को कहा था। पर बुलू उस अनुरोध मिश्रित आदेश के प्रति पूरी तरह उदासीन रहा।

बच्चे पर मेरी नजर पड़ते ही मैं चौंक उठा। शरीर तनिक रोमांचित हो उठा। आठ-नौ साल के बच्चे के गाल पर बड़ों की भांति दाढ़ी निकलते हुए तथा एक आंख दूसरी से बड़ी देखकर किसे ऐसी विचित्र अनुभूति नहीं होगी ?

'मत पूछिए साहब, किस जनम के दुष्कर्म से इस अभागे का बाप बना, न बात कर सकता है और न ही कुछ समझ सकता है। काश ! पैदा होते ही मर गया होता।'

'नहीं, नहीं, ऐसा क्यों कह रहे हैं' तमाम जिम्मेदारियों से मुक्त हरिदास को मैं बिन मांगे ऐसी तसल्ली दे रहा था।

आगे नियति में काफी परिवर्तन हुआ। बच्चे पर ब्रजगोपाल की नजर पड़ी। ब्रजगोपाल कहने से ब्रज वैष्णव, ब्रज साधु, बरजू दास और सबसे बढ़कर यह विचित्र चरित्र सामने आता है। कोई उन्हें सच्चा पुण्यात्मा मानता है तो कोई पागल समझता है। उनके दूसरे परिचय का उतना प्रसार न होने का कारण था उनका व्यक्तित्व। वैसे तो उनका चेहरा कोई चौंकाने वाला न था, उन्हें भावगंभीर भी नहीं कहा जा सकता। बल्कि वे सदा भाव-विह्वल रहते थे। उनके चरित्र की विशेषता थी उनकी

उदारता। निःसंतान एवं विधुर ब्रजगोपाल एक पैसे वाले व्यक्ति की इकलौती संतान थे। उनके सामने हरिनाम का उच्चारण कर अथवा किसी तरह अपने को हरिभक्त साबित कर अनगिनत लोगों ने उनका शोषण किया था। और भी लोग लाईन लगाए हुए थे। शोषित को पागल कहकर शोषक एवं संभाव्य शोषक अपने को निर्मम मानने को तैयार न थे।

ब्रजगोपाल चिल्लाकर हरि का नाम लेते थे। मृदंग बजाते थे। उनका गाना भी मैंने एक-आध बार सुना है। लेकिन उसमें किसी लालित्य का अहसास कभी मुझे नहीं हुआ। पर उनका चिल्लाना एक प्रकार का संभ्रम पैदा करता था।

ब्रजगोपाल के घर के सामने से गुजरते हुए हरिदास ने उन्हें प्रणाम करके जाने की प्रेरणा का अनुभव किया और बुलू को साथ लेकर उनके पैर पड़ने को कहा। अद्‌भुत दिखाई देने वाला बुलू घुटने के बल बैठकर उनके मुंह की ओर देखकर हंस पड़ा। आमतौर पर वह हंसता नहीं था।

'प्रभो, तुम कहां थे। इतने दिनों बाद इस अधम को याद किया।' ब्रजगोपाल के गाने का मर्म भी यही था। लेकिन वे गीत से गद्य पर उतर आए और बुलू को गले लगा लिया। आंखों से आंसू की धार बहने लगी। बुलू हंसता जा रहा था और ब्रजगोपाल रोते जा रहे थे। पास मौजूद आठ-दस भक्त पहले तो चकित हो उठे। फिर समझ गए कि इसमें चकित होने जैसी कोई बात नहीं है। सोने की पहचान सुनार को ही होती है। बुलू उद्‌भट कोटि का महात्मा है। ब्रजगोपाल की नजरों में ही पकड़े गए, बस।

बुलू बन गया बुलू बाबा। बुलू बाबा का जन्म पूर्णमासी के दिन हुआ था। हर पूर्णमासी के दिन थोड़े-बहुत भक्तों का समावेश होने लगा। उनकी संख्या पच्चीस-तीस तक ही सीमत रहती थी। लेकिन जब थोड़ी दूर पर जमींदार के सिरस्ते में काम करने वाला परीक्षित मुकदमा जीत गया और किसे अपना वकील बनाएगा, इस बारे में बुलू बाबा का स्मरण कर लॉटरी उठाने के लिए उन्हें नकद सौ रुपयों की भेंट चढ़ाई, तभी से लोगों की भीड़ तेजी से बढ़ी है। मुकदमों से जुड़े लोग भी पहले ही से एक-दो रुपयों का चढ़ावा देने लगे। दूसरे कामनार्थियों ने भी वही किया। बुलू बाबा को प्रणाम करके कई लोगों ने पेट दर्द और वात संबंधी रोगों से बचने की बात कही। उनमें सबसे ऊंची तथा मोटी आवाज में बोलने वाला व्यक्ति था—नामदर मियां, एक खूंखार गुंडा। उसे अपने शिकंजे में किया हुआ गठिया वात उसके चरित्र के अनुपात में ही उग्र होगा, ऐसी धारणा थी लोगों में। वह गठिया वात जिसके प्रसाद से ठीक हुआ और वह भी मरीज के मुसलमान होने के बावजूद, वह महात्मा का अवतार नहीं तो और क्या है ?

क्रमशः बुलू बाबा गठिया वात के मरीज़ों के आराध्य के रूप में प्रख्यात हुए।

वैसे तो और भी कई गुण उनके ऊपर आरोपित हो रहे थे। एक बार गठिया

वात से पीड़ित जमींदार ने उन्हें अपने घर बुलाकर प्रणाम करने के लिए बैलगाड़ी के साथ अपने मुनीम को भेजा। लेकिन ब्रजगोपाल ने मुनीम का निमंत्रण ठुकरा दिया। मुनीम और ब्रजगोपाल के बीच वार्तालाप के दौरान बुलूबाबा कहीं से दौड़ते हुए आए और बैलगाड़ी के पास खड़े होकर कुतूहलवश बैलों की ओर निहारने लगे।

ये लो, बुलू बाबा खुद ही जाने को हैं : कहकर मुनीम ने बिना सोचे समझे एक कदम उठाया : बुलू बाबा को उठाकर बैलगाड़ी में बिठा दिया। फिर गाड़ीवान ने बैलों को चलने का हुक्म देकर समुचित प्रहार और टोंकटांक किए। लेकिन बैलों ने हिलने का नाम तक नहीं लिया। सिर्फ आंखें मूंदकर मार और पूंछ की मरोड़ सहने लगे।

ब्रजगोपाल ने मुस्करा दिया।

मुनीम को मजबूरन बुलू बाबा को उतारना पड़ा। इस अजीब किस्से ने बुलू बाबा की अलौकिकता को पूरी तरह स्थापित कर दिया।

पूर्णिमा के दिन बुलू बाबा को स्नान कराके, सिल्क व फूलमाला पहनाकर, चंदन लगाकर भक्त लोग उन्हें चारों ओर घेरकर गाना गा रहे थे। संगृहीत राशि से ब्रजगोपाल भक्त एवं गरीबों को दावत देते थे। इससे बुलू बाबा की ख्याति बढ़ने लगी थी, यह कहना न होगा। उस दिशा में ब्रजबाबू का कोई आग्रह नहीं था। एकाध बार गांव के दो आशावादी व्यापारियों ने बुलू बाबा की लोकप्रियता बढ़ाने की योजना की थी। लेकिन उस दिशा में ब्रजगोपाल से कोई समर्थन न पाकर उन्होंने हाथ खींच लिए थे।

पूर्णिमा के बाद पूर्णिमा निकलती गई। लेकिन प्राध्यापक नवीन राय ने एक बार धरती से उन तमाम कुसंस्कारों को समाप्त करने की प्रेरणा पाई और गर्मी की छुट्टियों में अपने ही इलाके से काम शुरू करने के लिए कमर कसकर मुझे भी उसमें सहयोग करने को बुलाया।

शहर में रहते हुए मैं बुलू बाबा के बारे में सुना करताा था। उनके लिए मेरे दिल में कोई कुतूहल या आकर्षण नहीं था, ऐसी बात नहीं है। 'जीवन में क्या-क्या नहीं देखने पड़ते' यही था मेरा दार्शनिक दृष्टिकोण। अचानक नवीन राय के आह्वान से मेरे अंदर एक अलग दृष्टि पैदा होने लगी। हमारे साथ और भी दो-तीन नौजवान आकर शामिल हो गए।

'ब्रजबाबू, नौ साल की उम्र में दाढ़ी निकल आना महापुरुषों के लक्षण हैं—ऐसी धारणा आप में क्यों बनीं ?'

हमारे मुखिया नवीन बाबू के इस प्रकार का मजाकिया सवाल करते समय ब्रजबाबू तत्काल कीर्त्तन से थके-मांदे लौटे थे। अतः ऐसा नहीं लगा कि उन्होंने मेरे सवाल को अच्छी तरह सुना हो।

गठिया वात के बारे में इस बालक का ज्ञान कहां तक है ? नवीन बाबू ने

फिर प्रश्न किया।

'हरिबोल :' कहकर ब्रजगोपाल ने मृदंग बजा दिया। दूसरे भक्तों ने फिर से कीर्त्तन शुरू कर दिया। चंदनधारी बुलू बाबा अपनी छोटी आंख मूंदकर बड़ी आंख से नवीन बाबू को ताक रहे थे। नवीन बाबू ने चैन की सांस ली और नाराजगी व्यक्त की। हमलोग मजबूरन उठ खड़े हुए।

'इस अंधेरे मुल्क में कुछ नहीं किया जा सकता। एक बार आजादी मिल जाए, फिर देखेंगे' नवीन बाबू ने कहा।

हमने भी उस आगत-प्राय भविष्य पर आस्था रखना अत्यंत सुविधाजनक समझा।

गर्मी की छुट्टियों के बाद हम शहर लौट गए। फिर पूर्णिमा के बाद पूर्णिमा आई, निकल गई। दशहरे की छुट्टी में हमारे फिर-से मिलने से पहले एक अप्रत्याशित घटना घटी। मेरे पास पहुंचे विस्तृत विवरण का सारांश इस प्रकार है :

बुलू बाबा और बारह अन्य भक्तों को लेकर ब्रजगोपाल वृंदावन के लिए रवाना हुए। बुलू बाबा को बैलगाड़ी में बिठाकर करीब पच्चीस-तीस भक्त पच्चीस मील तक पैदल यात्रा में निकले।

उन दिनों दिनभर में सिर्फ चार-पांच बार ही गाड़ियां स्टेशन से होकर गुजरती थीं। इस ओर से सिर्फ एक और उस ओर से एक गाड़ी उस स्टेशन पर रुकती थी।

बुलू बाबा के दल ने आधी मील की दूरी से गाड़ी को स्टेशन पर पहुंचते देखा और सब लोग बड़ी तेजी से दौड़ने लगे। खेत-खलिहान से होकर बैलगाड़ी यथाशीघ्र चल नहीं पाई तो एक भीमकाय व्यक्ति बुलू बाबा को कंधे पर बिठाकर दौड़ता हुआ सबसे आगे निकल गया। उनके साथ ताल देकर दौड़ने वाले भक्तों में सिर्फ तीन-चार लोग थे।

उनके प्लेटफार्म पहुंचते समय गाड़ी छूटने ही वाली थी। ब्रजगोपाल और दूसरे भक्त हड़बड़ाकर अपनी कमर कसकर दौड़ते गए, लेकिन तब तक गाड़ी धक्-धक् करने लगी थी। यात्री दल पहुंच पाएगा, यह आशा किसी को नहीं थी।

भीमकाय भक्त के दिमाग में बिजली की रफ्तार से एक बहुत ही आवश्यक बुद्धि आई। बुलू बाबा को गाड़ी में चढ़ा देने से गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती, जैसे एक दिन खुद जमींदार साहब की बैलगाड़ी की गति रुक गई थी।

स्टेशन मास्टर चिल्लाकर कह रहे थे, 'अरे भाई पैसेंजर चली गई है। ये मेल गाड़ी है। यहां नहीं रुकती। एक खास कारण से आज रुकी हुई है। इसमें नहीं चढ़ना।

भीमकाय भक्त तथा उनके साथी उस चेतावनी को समझने की स्थिति में नहीं थे। थोड़ी देर के लिए गाड़ी रोककर यात्रियों को चढ़ाने का मौका देने के

साथ-साथ बुलू बाबा की अद्‌भुत शक्ति का परिचय देने का आग्रह और उत्कंठा उन्हें प्रेरित कर रहे थे। किसी तरह बुलू बाबा को एक डिब्बे के अंदर करके वे लोग मुग्ध भाव से प्रतीक्षा करते रहे।

गाड़ी धीमी रफ्तार से रेंग रही थी। वे लोग निश्चिंत थे कि वह जल्द ही रुक जाएगी।

इसी बीच ब्रजगोपाल और उनका दल आ पहुंचा। सब लोग आश्चर्य चकित होकर देख रहे थे। गाड़ी धीमी रफ्तार से तेज हुई और फिर बड़ी तेजी से चलने लगी।

खामोश जनता अब अधीर हो उठी। कई लोग रोने लगे। दूसरे दिन पैसेंजर पकड़कर ब्रजगोपाल और उनके दो साथी गाड़ी से आखिरी महानगरी तक गए। हफ्ते भर बाद लौट आए।

इन तमाम घटनाओं के बीच ब्रजगोपाल को परेशान होते नहीं देखा गया। 'सब लीलामय की लीला है' इतना कहकर वे मानो मुग्ध रह रहे थे। कई अन्य लोगों ने उनकी संक्षिप्त विवृत्ति की व्याख्या की। 'महात्मा अपनी इच्छा से आए थे, अपनी ही अच्छा से अदृश्य हो गए।'

वैसे साल भर बाद बुलू का महानगरी के किसी अनाथालय में होना और फिर एक साल बाद उसके देहांत होने का संवाद हमें मिलने की बात यहां विशेष प्रासंगिक नहीं है।

मेलगाड़ी की घटना के महीने भर बाद दशहरे की छुट्टी में अपने गांव में घर पर बैठकर उस घटना पर चर्चा करते समय नवीन बाबू हंसते-हंसते लोटपोट हो गए थे। अगले दिन हम दोनों और हमारा एक और मित्र अपने एक पुराने संपन्न छात्र के निमंत्रण पर रात्रि भोज के लिए जाते समय रास्ते में ब्रजगोपाल का घर आया। अंदर से कीर्त्तन सुनाई दे रहा था। नवीन बाबू ने कहा, 'रुको, बुलू बाबा के बारे में जरा ब्रजगोपाल से सुनेंगे।'

उनका ऐसा मनोभाव मुझे बचकाना लगा, फिर भी उनके प्रति सम्मान के कारण मैं उनके पीछे-पीछे गया। दरवाजे पर हमें देखकर अंदर के दालान से उठकर ब्रजगोपाल हमारे पास आए।

'बुलू बाबा'

नवीन राय को अपना वाक्य पूरा करने का अवसर नहीं मिला। ब्रजगोपाल ने उन्हें भींच लिया। 'कहां रहे प्रभुः ये कैसी लीला है' ऐसा कहकर भरी आंखों से उन्हें अंदर ले जाकर उनके सिर पर, गाल पर चंदन का लेप लगा दिया। भक्तों ने ऊंची आवाज में कीर्त्तन करना शुरू कर दिया।

ब्रजगोपाल ने नवीन बाबू का कंधा पकड़कर उन्हें नीचे बिठा दिया।

नवीन बाबू एक-दो बार उठने की कोशिश करके हार गए।

ब्रजगोपाल भरी आंखों से उन्हें देखते रहे। आखिर नवीन बाबू ने आंखें झुका लीं।

ब्रजगोपाल उन्हें सहलाते हुए एक सुंदर पके हुए केले का छिलका उतार कर उनके मुंह के पास ले गए। नवीन बाबू ने मुंह बंद रखा था। लेकिन भक्तों ने अधीर होकर गाया, 'यशोदा मैया खिलाए, बालकृष्ण खाये रे, सोनार नुपूर बाजे, हरि कहां जाए रे'

हमने देखा—देखकर विस्मित हुए, कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि नवीन बाबू केले को एक-दो बार में निगल गए—आंखें वैसी ही मुंदी रहीं।

किसी ने उनके गले में बेले का हार पहना दिया। उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

करीब एक घंटे बाद वहां से खिसककर हमने फिर चलना शुरू कर दिया। लेकिन नवीन राय ने चंदन पोंछने या बेले का हार उतारने का कोई प्रयास नहीं किया।

चुपचाप चलते हुए अपने गंतव्य स्थल पर पहुंचने से पहले मैंने कहा, 'ब्रजगोपाल एक विचित्र आदमी हैं।'

'उस सज्जन के पास कोई अद्‌भुत शक्ति है।' बाबा प्रसंगों पर सहज मंतव्य देने वाले हमारे एक मित्र ने कहा।

नवीन राय अब भी चुप्पी साधे रहे।

चांद और हवा की शाम

उत्तरी उपत्यका के उस छोटे-से पहाड़ी शहर में नागरिकों का श्रेणी-विभाग अन्य किसी भी स्थान की भांति सामाजिक या आर्थिक मानदंड से होता था। लेकिन तीर्थंकर और शिवव्रत की बात अलग थी। वे दोनों एक ऐसी श्रेणी में आते थे, जिसके अंतर्गत होने वाला कोई तीसरा व्यक्ति उस शहर में नहीं था।

दोनों एक-दूसरे को नकारा मानते थे। क्रमशः शहर की आम जनता भी उन्हें लगभग नकारा मानने की आदी हो चुकी थी।

इस अस्वाभाविक व्यापार का सूत्रपात हुआ था एक निर्जन शाम को। हरे-भरे शहर के बाहर उस शाम को चांदनी ऐसे झर रही थी मानो रुमाल फैलाकर उसे एकत्र कर आगे इस्तेमाल के लिए जेब में संचित करके रखा जा सकता है।

तीर्थंकर उसी दिन सुबह दूर के अपने-कर्म-स्थल से आ पहुंचे थे। दोपहर को आ पहुंचे थे शिवव्रत। कई सालों से उसी समय अवसर निकालकर दोनों मित्र आकर मिला करते थे।

उसी समय कभी-कभार आ पहुंचते थे एक तीसरे मित्र प्रमथ।

वैसे तो प्रमथ सीमांत के एक शहर में काम करते थे। वह शहर रेशमी कपड़ों के उत्पादन के लिए मशहूर था।

उस दिन शाम को तीर्थंकर और शिवव्रत एक ऊंचे पत्थर पर बैठकर गपशप कर रहे थे। वह इलाका इतना निर्जन था कि झाड़ियों के नीचे इधर-उधर भागने वाला नेवला भी वहां किसी व्यक्ति के रोने का आभास पैदा कर सकता था।

चाँद वहां के उच्चतम ताड़ के पेड़ की नोक तक आ पहुंचा था। दोनों मित्र मन ही मन सशंकित थे कि कर्कश ताड़ के पत्ते चिकने चांद को कहीं क्षत-विक्षत न कर दें।

दोनों मित्र जिस शिलाखंड का आरोहण कर संध्या का उपभोग कर रहे थे, उससे पचास गज दूर और पंद्रह फीट नीचे सड़क थी। इंसान से अधिक गाय, बकरी जैसे पथिक ही उस रास्ते का ज्यादा इस्तेमाल करते थे।

ये शायद प्रमथ है, तीर्थंकर ने कहा। नीचे घास के जंगल से होकर राह ढूंढते हुए कोई सफेद वस्त्रधारी आगे बढ़ रहे थे। बीच-बीच में पेड़ का साया उन्हें राहुग्रास

कर रहा था।

'प्रमथ', शिवव्रत ने पुकारा।

प्रमथ रुक गए और ऊपर की ओर देखा।

'ऊपर आओ।' तीर्थंकर ने कहा।

अचानक झपटकर प्रमथ के सजे-संवरे केश गुच्छ को अस्त-व्यस्त करने के लिए मानो हवा का झोंका कहीं जंगल की झाड़ियों में छिपा हुआ था। इतना ही नहीं, बल्कि वह षड्यंत्र करके प्रमथ की बातों को भी टुकड़ा-टुकड़ा किए दे रहा था।

फिर भी प्रमथ के विकलांग उत्तर को समझ गए थे उनके दोनों मित्र। प्रमथ कह रहे थे कि वे मिसेज विलसन को शॉल पहुंचाकर आ रहे हैं।

'अरे, वह काम बाद में हो तो नहीं चलेगा ? तुम आओ ऊपर' दोनों मित्रों ने इतने जोर से कहा कि उनका निर्देश हवा को भेदकर नीचे पहुंच गया।

लेकिन प्रमथ ने जो कहा, उसका मर्म था गोधूलि बेला में जब मिसेज विलसन के घर के सामने से होकर अपने घर जा रहा था उस वक्त वृद्धा अपने बरामदे में बैठी उसे देख रही थी। प्रमथ की बातों से दोनों मित्रों की आखिर यही धारणा हुई।

वैसे वृद्धा जाने कई वर्षों से अपराह्न से लेकर गहरी रात तक वैसे ही बैठी देखती रहती थीं। वे अकेली रहती थीं। कोई काम तो था नहीं। किसी जान-पहचान वाले को गुजरते देख 'समय कितना हो गया है' या 'आज कौन-सी तारीख है' अथवा 'कौन-सा दिन है', जैसे सवाल कर लेती थीं। कभी किसी से कोई फरमाईश भी कर लेती थीं।

प्रमथ को पिछले तीन साल से एक रेशमी शॉल लाने को उसने कहा था। दोनों मित्र जानते थे कि प्रमथ हमेशा भूल जाते थे। इस बार प्रमथ शॉल लाया है। पहले वृद्धा को दे आने से ही उसे शांति मिलेगी।

प्रमथ चलने लगे।

तीर्थंकर और शिवव्रत एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

'वृद्धा को बैठे हुए देखा तुमने ? सचमुच देखा ?' तीर्थंकर ने अस्वाभाविक स्वर में पूछा और अपनी आवाज से खुद डर गए।

प्रमथ ने हामी भरी। उत्ताल पवन पर सवार हो प्रमथ का उत्तर शिलाखंड पहुंचते ही दोनों मित्र कांप उठे थे।

'तुम आओ। बाद में जाना। दिन में किसी समय।' शिवव्रत ने यथासंभव अपनी आवाज गंभीर कर निर्देश दिया।

लेकिन प्रमथ ने और कोई जवाब नहीं दिया। वे चले गए।

किंकर्त्तवविमूढ़ होकर बैठे रहे तीर्थंकर और शिवव्रत। वृद्धा ने महीने भर पहले

वैसे ही बैठने की मुद्रा में प्राण त्याग दिया है, उसे प्रमथ को बता देने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला। वे सोचने लगे, वृद्धा को प्रमथ ने देखा है, यह कहने का उनका मतलब क्या है ? हमेशा वैसे ही देखने की अभ्यासजनित कल्पना है या भ्रम ?

प्रमथ को लौट आने दो।

दोनों मित्रों ने उनकी प्रतीक्षा की। बातचीत और जमी नहीं। आधे मील दूर के तालाब के किनारे से श्वान जैसे जीवों का हंगामा और चीखना-चिल्लाना सुनाई दे रहा था। दूर से पालतू कुत्ते भौंक रहे थे।

इन सारी घटनाओं से ऊबकर चांद मानो मौका पाते ही एक काले बादल के अंदर खिसक लिया।

'शरत् के मौसम में मेघ !' एक मित्र ने टोका। वह मामला अचानक दोनों ही को आतंककारी लगा।

दोनों मित्र उठे। प्रमथ शायद दूसरे रास्ते से अपने घर चला गया होगा। वे दोनों उससे मिलने गए।

बूढ़े मां-बाप, विधवा बहन, कुत्ता, बिल्ली वाला वह घर उस समय दारुण शोक से छाया हुआ था। एक घंटा पहले तार आया था; दोपहर को कहीं दूर अपने कर्मक्षेत्र पर दुर्घटना का सामना करके मौत हुई है प्रमथ की। मां बार-बार अचेत हो रही थीं। कुत्ता जोर-जोर से भौंक रहा था।

दोनों मित्र खामोश होकर लौट आए। राह चलते हुए उन्होंने मिसेज विलसन के खंडहर की ओर नजर ही नहीं डाली थी।

लेकिन उसके बाद शिलाखंड के किनारे से होकर गुजरते वक्त अचानक बादलों में से निकलकर चांद उन दोनों के चेहरे को उद्भासित करते ही एक-दूसरे को नकारा माना था—जैसे नकारा थे प्रमथ।

दोनों तेज कदम बढ़ाकर अपने-अपने घर चले गए।

दूसरे दिन तीर्थंकर ने बार-बार अप्रत्यक्ष भाषा में दूसरों से पूछा था—शिवव्रत कब गुजर गए ?

तीर्थंकर के बारे में एक ही मर्म से खोजबीन करने में जुटे थे शिवव्रत।

जीवित होने के समस्त गवाही के बावजूद दोनों ने एक-दूसरे को अयथार्थ ही माना है। वरना इंसान की हैसियत से दोनों ही अच्छे हैं।

शहर के एक विज्ञ और विलक्षण व्यक्ति का कहना है कि दोनों ने जिसे प्रमथ माना था, वह कोई और था। वह कहा भी कुछ और ही करता था। दोनों मित्रों ने उन्हें एक बार प्रमथ मान लिया तो चांदनी की माया में वे प्रमथ जैसे ही दिखने लगे थे, साथ ही दोनों मित्र उनसे जैसा उत्तर पाने की कल्पना करते थे, हवा की शरारत से उन्हें वैसा ही उत्तर सुनाई देता था।

लेकिन व्याख्या करते समय वे विज्ञ व्यक्ति जैसी मुद्राएं बना रहे थे, उनके वक्तव्य के साथ उसका तालमेल जम नहीं रहा था।

जो भी हो, चांद और हवा के तेज होने पर भी वे दोनों मित्र अपने-अपने बंद कमरों की खिड़कियों से विह्वल दृष्टि से बाहर झांकते रहते हैं।

अरबी के पौधे तले

विशाल हिमालय के किसी नगण्य उपत्यका में एक छोटे-से सरोवर के पास झाड़ी के अंदर एक किशोर मेढक रहता था। जब वह आपकी पालतू बिल्ली की नाक से भी छोटा था, तब उसे बाप ने कहा था कि नगाधिराज हिमालय उन्हीं की वंश-परंपरा की क्रमिक संपत्ति है।

एक दिन बाप मेढक का निधन हो गया। तब तक अपने को युवराज मानने वाले तरुण मेढक ने झाड़ी के सामने एक आदर्श अरबी के पौधे तले बैठकर खुद को हिमालय का राजा घोषित किया।

मेढक के झाड़ी रूपी महल के आसपास कई और झाड़ियां थीं। उन सबों में कई तितलियां, पतंगे, गिलहरियां और गौरैया रहती थीं।

उन्होंने मेढक का ऐलान बड़े ध्यान से सुना। एक साथ अरबी पौधे के पास आकर उन सबों ने पूछा, 'क्या यह सत्य है कि आप हिमालय के राजा हैं ?'

'क्यों ? क्या इस तालाब का पानी ठंडा नहीं है ?' मेढक ने उल्टे सवाल किया।

गौरैया पलभर में उड़ती हुई गई और तालाब के पानी में चोंच डूबोकर लौट आई। उसने उत्तर दिया, 'ठंडा है जी।'

हिमालय के शृंग क्या सबसे ऊंचे नहीं हैं—मेढक ने फिर से सवाल किया।

'ऊंचे हैं...दरअसल मुझसे बहुत अधिक ऊंचे हैं।' अपने सामने वाले दोनों पैरों को उठाकर थोड़ी दूरी पर स्थित हिमालय को नापने का उद्यम कर चुकने के बाद गिलहरी ने यह बात कही।

'क्या मैं अपने स्वर्गीय पिता का एकमात्र पुत्र नहीं हूं ?' अबकी मेढक का स्वर अपेक्षाकृत गंभीर सुनाई दिया।

'जरूर, जरूर' सबों ने एक स्वर में स्वीकार किया। वे भी गंभीर स्वर के प्रति सचेत थे।

'तो फिर मैं राजा हूं, इसमें संदेह का अवकाश कहां है ?' मेढक ने अपनी दोनों आंखों को चार बार मटकाकर पूछा।

तितलियों, टिड्डियों, गिलहरियों और गौरैयों को यह तर्क इतना सशक्त लगा कि मेढक के हिमालयाधिपति होने की बात में शक करने के कारण वे बड़े दुःखी

हुए।

दिन बीतते चले जा रहे थे। मेढक रोज सुबह अपनी झाड़ी से निकलकर दिगंतव्यापी उन उत्तुंग शृंगों की ओर एक नजर डाल देता है। एक भी शृंग चोरी करके जाने का साहस किसी ने नहीं किया है, इसे देखकर अपनी दक्षता के बारे में उसका विश्वास दृढ़ हो जाता है। बर्फ से ढके शिखरों पर उदित सूर्य की पीली किरणों को प्रतिफलित होते देख एक बार वह पृष्ठपोषक की मुद्रा में सूर्य को प्रोत्साहित करने के लिए सिर हिला देता है।

चांदनी रातों में अक्सर चपल हो उठने वाली एक परी इधर-उधर उड़ती हुई पूर्णमासी की रात को उस अख्यात उपत्यका में उतरकर एक शिलाखंड पर विश्राम कर रही थी।

मेढक राजा उसे देखते ही विमुग्ध हो उठा।

'मैं हिमालय का राजा हूं' उसने यथासाध्य अपना गला और सिर ऊंचा करके कहा, 'तुम कौन हो, यह जानने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। लेकिन मैं तुम्हें क्या बनाने जा रहा हूं, उसे जानने के लिए तुम अवश्य आग्रही होगी।' उसने फिर-से कहा।

'क्या ?' आमोदित होते हुए परी ने जानना चाहा।

'अपनी रानी।'

'वाह' कहकर आकाशव्यापी चांदनी और सुनहरे कोहरे के भीतर परी कहीं उड़ गई और परी जाति की स्वभाव-सुलभ रीति से ऊपर स्तर तक उठ जाने के बाद निचले स्तर का सारा अनुभव भूल गई।

मेढक राजा स्तब्ध होकर बैठा रहा—थका हुआ चांद पर्वतों के उस पार अदृश्य हो जाने तक।

उपयुक्त रानी के बिना क्या राजा बनने का कोई मतलब होता है ? उसने व्याकुल होकर आकाश और धरती से सवाल किया और हिमालय छोड़कर कहीं और चले जाने का निर्णय लिया।

उसे राजा के रूप में देखने वाले आसपास के प्राणियों को इकट्ठा कर उसने कहा, 'अपने हिमालय को मैं बेच दूंगा। कोई खरीदेगा ?'

श्रोताओं ने एक-दूसरे की ओर देखा।

'कीमत ?' एक गिलहरी ने आगे बढ़कर पूछा।

'सौ नक्षत्र' मेढक राजा ने जवाब दिया।

संभावित क्रेताओं ने फिर एक-दूसरे की ओर देखा। 'हमें कुछ समय दिया जाए तो हम कीमत जुगाड़ करने की कोशिश करेंगे' उन्होंने कहा।

'एक सप्ताह।' मेढक राजा ने संक्षेप में कहा और फिर मासूम-सा समय बिताने अपनी झाड़ी के अंदर चला गया।

गिलहरी, तितली, टिड्डी और गौरैयों का झुंड समावेश आसमान की ओर ताकता रहा। फिर सारी गौरैया एक साथ ऊपर उठने लगीं। लेकिन घंटे भर बाद लौटकर बोली, 'जैसा पता चला, नक्षत्र भी उड़ते हुए ऊपर जा सकते हैं। वरना हमारे इतने ऊपर उड़ने पर भी उन्हें न पकड़ पाने का कोई कारण नहीं।'

उल्कापात जैसी घटना देखते हुए गिलहरी ने कहा, नक्षत्रों के नीचे गिरने के उदाहरण जब मौजूद हैं तो गौरैया के हमले से बचने के लिए ऊपर उठ जाने में आश्चर्य ही क्या है ?

हर रात उस इलाके के सरोवर में शताधिक नक्षत्रों का गिरना और सुबह तक बहते हुए फिर द्रवीभूत होकर लुप्त हो जाना वे जानते थे। अतः तालाब के अदर से ही आवश्यक नक्षत्र बटोर लाने की उन्होंने चेष्टा की। लेकिन सफल नहीं हुए।

'नक्षत्र कितने भंगुर हैं, हमारा स्पर्श सहने की क्षमता नहीं है उनमें' अपनी बांह की मांसपेशियों को एक बार दबाकर एक टिड्डी ने कहा। दूसरों ने भी इसका समर्थन किया।

सातवें दिन वे लोग जाकर मेढ़क राजा से मिले।

'महाराज, हम नक्षत्र-संग्रह नहीं कर सके।' उन्होंने बड़े अफसोस के साथ कहा।

पलभर के लिए गंभीर होकर फिर मेढक राजा ने कहा, 'तो फिर यह जगह छोड़कर जाते समय अपने हिमालय को भी खींचकर अपने साथ लेता जाऊंगा।' अपने सिर पर एक बार हाथ फेरकर उसने फिर-से कहा, 'चाहूं तो अपने हिमालय को मैं ध्वंस भी कर सकता हूं।'

इस तरह का संकट पैदा हो सकता है, इसकी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। श्रोता मंडली निर्वाक्, निस्पंद होकर खड़ी रही; मेढक राजा अगर हिमालय को लेकर चले जाएंगे तो वे सब कहां आश्रय लेंगे—उनकी सबसे बड़ी समस्या यही थी।

'हमें दो-तीन हफ्ते का समय दीजिए महाराज, हम सिर छिपाने की थोड़ी-सी जगह ढूंढ़ लें।' उन्होंने कहा।

'दिया।' अपनी आह दबाकर कहा मेढक राजा ने कहा।

वे सब नए आसरे की तलाश में निकले। लेकिन जितनी दूर गए, उसकी श्रृंगमालाएं आकाश तक फैली मिलीं। मेढक राजा यह सारा इलाका लेकर चला जाएगा, इस बात की जितनी भी याद आई, उतनी ही उनकी आंखों से आंसू गिरने लगे। एक दिन शाम को वह थका-हारा खोजी-दल एक ओस से धुले शिखर के

नीचे थकान मिटा रहा था। पूर्णिमा की वापसी हो रही थी। खिली हुई चंपा-सा दिखने लगा था वह इलाका।

अचानक गौरैया ने पहचान लिया—थोड़ी दूर एक शिलाखंड पर बैठी थी वह ज्योत्सना—स्नात परी।

उन्होंने पास जाकर परी का अभिवादन किया और बड़े दर्द के साथ सब कुछ बखान किया—परी से मेढक राजा के मिलने के बाद का सारा वृतांत।

'तो फिर मेढक राजा को बता दो—वही होगा।'

इतना कहकर परी आकाशव्यापी ज्योत्स्ना और कोहरे के अंदर उड़कर चली गई और स्वभावतः वातावरण के निम्नतम सोपान की वह घटना थोड़ी देर में विस्मृत हो गई।

विजय-उल्लास में नाचता-कूदता वह खोजी दल मेढक राजा के पास गया और बोला, 'परी ने अपनी सहमति दी है कि वही होगा यानी कि वह मेढक राजा की रानी बनेगी।'

खुशी से गद्गद् होकर चांद के अदृश्य होने तक वह खामोश रहा और फिर एक लोरी गाकर उसने अपने आप को सुला दिया।

उसी दिन से बड़ी खुशी से मेढक अरबी के पौधे तले राजा बना बैठा है। आसानी से संकट टल गया यानी मेढक राजा अपने हिमालय को घसीटकर नहीं ले गया और ना ही उसने उसे ध्वंस ही किया। तभी से तितली, गिलहरी आदि बड़ी खुशी से और निश्चिंत हो महाकाल बिता रही हैं।

स्वर्ण कलश

बीहड़ जंगल के बाद जरूर कोई मनोरम मुल्क आएगा, अबोलकरा* के मन में यह बात आई थी। रात के बाद दिन देखने का आदी मानव संभवतः दुर्गमता के बाद सुगमता जैसे विपरीत अनुभव के लिए सदा उन्मुख रहता है।

और फिर वे लोग जिस राज्य में पहुंचे, वह बेहद सुंदर दिखाई दे रहा था। पेड़-पौधे, हवा-पानी हर चीज पर बहुमूल्य टिप्पणी करता हुआ अबोलकरा चलता चला जा रहा था। लेकिन एक उपवन में उन्हें थोड़ी देर तक रुकना पड़ा था। विपरीत दिशा से आ रहा था एक राजकीय जुलूस। उपवन के बीचों-बीच एक समाधि थी। थोड़ी दूर पर हाथी से उतरकर राजा ने समाधि पर फूल चढ़ाए। कुछ देर तक ध्यानमग्न रहकर फिर नगरी में लौट गए।

'राजा को देखकर बड़ा अच्छा लगा। मानो साधु पुरुष हों ! मालिक, यह समाधि किसकी है ?' अबोलकरा ने पूछा।

'दुबारा मरने वाली एक नारी की।' मालिक भावुक हो जैसे खुद से बातें कर रहे थे।

थोड़ी दूर पर जलाशय था। एक विशाल बरगद के नीचे बैठकर भोजन करने के बाद अबोलकरा ने बड़े ही तात्पर्य भरे स्वर में संबोधन किया—'मालिक'।

'क्या है ?'

'अब तो मैं बैठ रहा हूं।'

'बैठ रहा है, तो बैठ—घोषणा करने की क्या जरूरत है ?'

'ये बैठा।'

'देख अबोल ! कितनी बार कहा है तुझसे, भूमिका की कोई जरूरत नहीं। मैं एक रहस्यमय वाक्य कह गया हूं। उसका मर्म बिना समझे नहीं चलेगा—सीधे-सीधे क्यों नहीं कहता यह !'

---

* ओड़िया लोक-कथा का एक जिज्ञासु चरित्र। किसी ज्ञानी सामंत के परिचर के रूप में देश-देशांतर भ्रमण करते समय वह अपना कौतूहल शांत करने में सदा तत्पर रहता है।

नगरी की सीमा से बाहर घनघोर जंगल था। उसके बीच, हालांकि बहुत घने जंगल के भीतर नहीं, योगी धीमान द्वारा संचालित गुरुकुल था। उसमें कई चुने हुए विद्यार्थी रह रहे थे। उनमें एक विद्यार्थी था तन्मय। अध्ययन की तरह साधना में भी निष्ठा का निर्भूल परिचय दिया था तन्मय ने। उत्तम स्वभाव और दयालु आचरण के कारण वे सबके प्रिय थे।

गुरुकुल के पास क्षिप्रा नदी में बाढ़ आ गई थी। साहसी तथा दक्ष तैराक तन्मय को तेज प्रवाह में उलझकर स्नान करने में आनंद आता था। घाट के बाद ही नदी का मोड़ था। उसी दिशा से किसी के कराहने का स्वर सुनाई पड़ा। एकाग्र हो गया तन्मय। आर्त्तनाद का सूत्र ढूंढ निकालने से पहले ही उसके शरीर से लिपट गई थी एक कोमल और पतली-सी लड़की। अगर पल भर के लिए भी उन्होंने अपना संतुलन खो दिया होता तो उस पतली-सी लड़की के साथ-साथ वे स्वयं भी स्रोत का शिकार बन गए होते। लेकिन उस क्षीणांगी को बचाने के साथ ही उन्होंने स्वयं को भी बचा लिया।

लेकिन वे कोमल किशोरी की पकड़ से मुक्त नहीं हो सके, कृतज्ञ कन्या ने उनकी चेतना को घेर लिया।

उसका नाम था सुस्मिता। नदी के उस पार, घने जंगल में बसने वाले तांत्रिक चंडगौरांग की गोद ली हुई बेटी थी वह। उसका शरीर चंपई रंग का था; आंखें नक्षत्र जैसी थीं। कभी वे हीरे की प्रखरता फैलातीं तो कभी ओस की बूंदों की कमनीयता बिखेरती।

नदी के किनारे, तमाल वन में, कोमल मेघ के साये में कभी कम से कम शब्द विनिमय करते हुए तो कभी स्वयं खामोश रहकर दो कोयलों को अपने वक्तव्य का जिम्मा देकर तन्मय और सुस्मिता ने एक-दूसरे के निकटतर होने का प्रथम पर्व संपन्न किया। फिर सुस्मिता के घर जाकर तन्मय का तांत्रिक चंडगौरांग को श्रद्धा निवेदन करने का पर्व शुरू हुआ। अर्थात् तन्मय और सुस्मिता के मिलन में और कोई बाधा नहीं रही। सुस्मिता की बुद्धि तथा उसका चमत्कार प्रयोग, साहस एवं उसके सदुपयोग के कई 'उदाहरणों' ने तन्मय को मानो मुग्ध कर दिया, अपने प्रति कन्या के आंतरिक लगाव से वे अभिभूत हो उठे।

'तुम्हारे पिताजी ने मेरे सामर्थ्य का अतिरंजित आकलन किया है—यह कहने की न तो मुझमें हिम्मत है और न ही तंत्र शिक्षा के लिए आवश्यक साहस।'

'क्यों ?'

'गुरुदेव से मैंने सुना था तंत्र के लक्ष्य के बारे में। संसार की सारी चीजें, तमाम आकर्षण, हर स्थिति की गहराई में निहित दिव्यता, अध्यात्म-विज्ञान के इस मौलिक सत्य पर आधारित है तंत्र। लेकिन दिव्यता की तलाश में निकलकर दूसरे आध्यात्मिक खोजकर्ता जिन-जिन वस्तुओं, आकर्षण और अवस्था को परखना अनिवार्य

मानते हैं, दुःसाहसी तांत्रिक वास्तव में उन सारे आकर्षणयुक्त माया के सुरंग में जानबूझकर प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन सुरंग के अंत में सत्य के प्रकाश में पहुंचने का सौभाग्य किसी-किसी को ही मिलता है। अधिकांश ढूंढ़नेवाले सुरंग के अंदर की गोपनीय गुफाओं से निकले रंग-बिरंगे और प्रकाश से मुग्ध होकर अर्थात् थोड़ी-बहुत जादूगरी विद्या हासिल कर गलत रास्ते से होकर सुरंग से निकल आते हैं। जाते तो सत्य की उपलब्धि के लिए हैं, पर लौट आते हैं अविद्या का दास होकर। मैं अंत तक अपनी प्रतिज्ञा में अटल रहकर सुरंग के छोर पर सूर्य देखूंगा, इतना बड़ा आत्म-विश्वास मेरे पास नहीं है। और अगर तांत्रिक पथ मेरा स्वधर्म होता तो गुरुदेव मुझे अवश्य तुम्हारे पिता के पास भेज देते।'

सुस्मिता के चेहरे पर खुशी का भाव खिल उठा। ऐसा कठोर जीवन-यापन यदि तुम्हारा उद्देश्य नहीं है, तो...'

अनुच्चरित प्रस्ताव की कमनीयता की तुलना में सुस्मिता शर्म से लाल हो गई।

तन्मय ने मुस्कुराकर कहा, 'तंत्र मार्ग में न होते हुए भी कठोर योग मार्ग में अग्रसर होना मेरा उद्देश्य अवश्य था। लेकिन वह तुमसे मिलने से पहले...'

उस दिन वे दोनों उस दिशा में और आगे नहीं बढ़े। उस समय जंगल में बसंत का प्रथम स्पर्श अनुभूत हुआ था। थोड़े-से फूल खिलकर शेष अगले दिनों की प्रतीक्षा में थे। उससे प्रभावित होकर तन्मय और सुस्मिता भी उस तरह सारे सपने एक साथ खिला देने को तैयार न थे। बहरहाल, उस समय वे तमाम भविष्य को एक अविछिन्न बसंत मानने का भ्रम पैदा कर रहे थे।

गुरु धीमान अपने एक वरिष्ठ शिष्य पर गुरुकुल का दायित्व सौंपकर अनिश्चित काल के लिए हिमालय जाने की तैयार कर रहे थे। उस तैयारी में तन्मय को कई प्रकार की विशेष सहायता करनी पड़ रही थी। इस संवाद के बाद पांच दिन तक सुस्मिता से उसकी भेंट नहीं हुई। छठे दिन जब दोनों मिले, सुस्मिता न जाने कैसी अभिभूत दिखाई दे रही थी ! मानो वह सोने और जागने की सीमा में ही अटक गई हो।

'तुम ऐसी क्यों लग रही हो ?'—विस्मित हो तन्मय ने सवाल किया।

'तुम्हारे कारण...।'

तन्मय प्रश्नभरी आंखों से देखता रहा। उसके संस्पर्श से सुस्मिता शीघ्र ही स्वाभाविक चेतना में लौट आई और उसने जो कुछ कहा, उसका सार मर्म था—उसने अपने पिता के अनजाने एक विशिष्ट नाक्षत्रिक संपर्क का लाभ उठाकर एक ऐसा तांत्रिक अनुष्ठान किया है, जिसके परिणाम-स्वरूप तन्मय के माथे पर राजतिलक अंकित होना संभव हो सकता है।

इस बात को तन्मय ने कितना महत्व दिया, नहीं कहा जा सकता। उसने

प्रश्न किया, 'क्या तंत्र के जरिए किसी का भाग्य बदलना संभव है ?'

'नहीं, मनुष्य स्वयं ही अपना भाग्य बदलता है या फिर वह संभव होता है दिव्य-कृपा से।'

'दिव्य-कृपा मुझे राजा बनाए, इसका कोई कारण नहीं है। भाग्य के इस प्रकार मोड़ लेने के लिए मैंने कुछ नहीं किया है।' तन्मय ने तर्क दिया।

'नहीं किया ?'

'नहीं तो !'

सुस्मिता हंस पड़ी। 'मेरे साथ तुम्हारा संपर्क क्या एक कर्म नहीं है ? क्या यह संपर्क तुम्हारे भाग्य को प्रभावित नहीं करता ? और क्या यह संपर्क तुम्हारी इच्छा के बगैर हुआ है ?'

इस प्रश्न का उत्तर तन्मय नहीं दे सका। मनुष्य की इच्छा, अनिच्छा और घटनाओं के बीच ठीक किस जगह सीमा रेखा खींचना संभव है ? सुस्मिता से अपना संपर्क वह किस स्थिति में रोक सकता था ?

उसकी सोच में बाधा डालते हुए आश्वासन देती-सी सुस्मिता ने कहा, 'राजपद ऐसा कोई अस्वाभाविक भाग्य नहीं है। मेरे पिता जी कह रहे थे, तुम्हारे माथे पर असाधारण लक्षण हैं। राजा न हुए तो संभव है एक गुरु बनोगे। समाज के सामने राजा बहुत बड़ा है, लेकिन अतिभौतिक स्तर पर देखने से वह कई संभावनाओं में से एक है।

तन्मय मुग्ध होने के साथ-साथ ज्ञानमार्ग में अपनी सीमा के बारे में सचेत हुआ और आलोचना को एक दूसरे ही पर्याय की ओर बढ़ा दिया, 'अच्छा, नारियों के लिए तांत्रिक क्रिया निषेध है ना !'

'यह कुसंस्कार है। तंत्र का उत्स कौन है ? शक्ति ! वह शक्ति के रूप में पूजी जाती है। मेरे पिताजी से दीक्षा लेकर कितनी ही नारियां भैरवी बनी हैं, लेकिन कई निर्दिष्ट क्रियाकलापों का निषेध किया गया है—सिर्फ अपने लिए। दूसरों के कल्याण के लिए बना कोई अनुष्ठान निषिद्ध नहीं है। कम से कम दूसरे के हित की भावना से उद्‌बुद्ध होकर जो कुछ किया जाता है, वह कतई दोषपूर्ण नहीं हो सकता।'

तन्मय कहने जा रहा था, 'लेकिन तुमने जो किया, वह निर्मल कल्याण कामना द्वारा प्रेरित है या कल्याणीय के भाग्य को नियंत्रित करने की स्पर्द्धा से प्रेरित है ? पर वह उस प्रकार का कठोर वाक्य किसी के प्रति प्रयोग नहीं कर पाता था—सुस्मिता के प्रति करने का सवाल ही कहां उठता था ?

अपने को समर्थन करने की आवश्यकता की दृष्टि से सुस्मिता ने फिर से कहा, 'मैंने अपने लिए कुछ नहीं किया, सिर्फ तुम्हारे लिए किया है।'

तन्मय ने मुस्कुरा कर कहा, 'लेकिन राजा की बाईं ओर का सिंहासन क्या

खाली रहेगा ? उस पर स्वर्ण प्रतिमा की स्थापना करके मैं तो संतुष्ट नहीं रह सकता।'

'अपने नसीब के बारे में मैं नहीं जानती। पिताजी से उस बारे में प्रश्न करने पर वे उसे हल्का बनाने की कोशिश करते हैं, यानी उसे टाल जाते हैं। लेकिन उसके तुरंत बाद उनके चेहरे पर मैंने उदास गंभीरता की छाया देखती है—कई बार। इसलिए मैं कैसे कहूं कि मेरे प्रश्न के साथ उनके गांभीर्य का कोई संबंध नहीं है ?' इस बार सुस्मिता खुद ही गंभीर दिखने लगी।

उस दिन न जाने क्यों सुस्मिता से विदा लेते समय तन्मय को एक प्रकार के अभूतपूर्व भाव ने घेर रखा था। उस भाव में पुलक अथवा अनागत कल्याण की सिहरन नहीं थी, पर सुस्मिता के लिए गंभीर कृतज्ञता थी, लेकिन करुण और विषादमय। किसी भी व्यक्ति की स्वतः प्रवाहित भाग्य-धारा और उसके नियामक विधाता के बीच अनुप्रवेश करके उस धारा को नियंत्रित करने की चेष्टा खतरनाक है। उसकी प्रिय सुस्मिता ने ऐसा दुःसाहस क्यों किया ? सुस्मिता स्वयं भी स्वतः स्फूर्त होकर हंस नहीं पा रही थी।

दूसरे दिन शाम को गुरु धीमान ने तन्मय को बुलवाया और उसकी आंखों में झांका। तन्मय की आंखें तुरंत झुक गई।

'वत्स ! कल सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच तुम कहीं न निकलो तो बेहत्तर होगा। दीर्घ समय तक ध्यानस्थ होने की तुम्हारी जो आदत है—उसी से समय बीत जाएगा।'

तन्मय ने जिज्ञासु दृष्टि से देखा। लेकिन गुरु उठ खड़े हुए—अर्थात् वे अपने निदेश की व्याख्या करना नहीं चाहते थे।

विस्मित होने पर भी तन्मय आज्ञा पालन को प्रस्तुत हुआ। छोटे से पहाड़ पर गुफाओं के कतार में कई कुटिया थीं। उनमें से एक उसकी थी। सूर्योदय से पहले स्नानादि संपन्न कर तन्मय ध्यान में बैठा। अभ्यास के व्याहत होने पर विचलित चित्तवृत्ति का विरोध कितना कष्टकर है, आज उसे उसका पता चला और पता चलने पर वह लज्जित हुआ। साथ ही वह यह जानकार चौंका भी कि त्रुटि के लिए वह अपने को धिक्कारने में भी अक्षम है। कारण ध्यानाभ्यास का विकल्प होकर दिखाई देने वाली सुस्मिता के लिए धिक्कार का आधा अपने आप चला जाएगा। ऐसा होने देना उसके लिए असंभव है !

खैर, ध्यान ने क्रमशः उसे आसपास के वातावरण से परे कर दिया।

किसी अप्रत्याशित कोलाहल और शोर-शराबे से उसका ध्यान टूटा। पूरी तरह संभलने से पहले ही वह कुटीर के बाहर चला आया। सूर्यास्त होने में थोड़ी देर थी।

सुसज्जित, अलंकृत हाथी के पीछे-पीछे चल रहे थे राज्य के प्रवीण मंत्री, सेनापति, राज पुरोहित, कोतवाल, अमात्य वर्ग एवं हजारों नागरिक। तन्मय के कुछ

समझने से पहले हाथी का सूंड़ ऊपर उठा और उसके सिर पर सुगंधित स्वर्ण कलश उड़ेल दिया। तालियों की गड़गड़ाहट और जय ध्वनि से सारा अरण्य मुखरित हो उठा। ऊबड़-खाबड़ पत्थरों पर चढ़कर मंत्री, सेनापति और कोतवाल तन्मय को अभिवादन करने उसके पास आए और नम्रतापूर्वक कहा, 'हुजूर ! हाथी पर अपना आसन ग्रहण कीजिए।'

'क्यों ?' तन्मय ने विकल-विह्वल स्वर में प्रश्न किया।

'आप हमारे विधि-निर्दिष्ट नए राजा हैं।' मंत्री ने कहा।

'राजा का निःसंतान मृत्यु वरण करने का संवाद संभवतः आपकी जानकारी में नहीं है' सेनापति ने कहा।

बहुत प्राचीन, परीक्षित और पवित्र विधि के अनुसार श्रेष्ठ हाथी के ऊपर नए राजा के मनोनयन का भार छोड़ दिया जाता था। नगर जनपद छोड़कर हाथी ने क्यों अरण्य की राह ली, यह सोचकर हम विस्मित हो रहे थे। परंतु हाथी ने यथाविधि अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।' कोतवाल ने कहा।

चलिए, हुजूर ! अभिषेक और सिंहासनारोहण के बाद ही आपके आदेश से पूर्व राजा का अंतिम संस्कार होगा। राजा के बिना दूसरे राजा के कलेवर को अपसारण करने का आदेश भला और कौन दे सकता है।' पुरोहित ने कहा।

मंत्री और सेनापति तन्मय को आदर से ले गए। जनता की हर्ष-ध्वनि जारी थी। तन्मय को हाथी पर विठा दिया गया। हाथी नगरी की ओर चला। महल में पितृ-मातृ विहीन राजकन्या हेमवती ने तन्मय के गले में फूल-माला के साथ रत्नहार पहनाकर उसका स्वागत किया। अभिषेक की तैयारियां हो चुकी थी। सिंहासनारूढ़ होकर तन्मय ने मृत राजा के अंतिम संस्कार का आदेश दिया। पुरोहित के मंत्रोच्चारण तथा अमात्य और सज्जन मंडली की जयध्वनि के बीच तन्मय सोच रहा था सुस्मिता के बारे में। कितनी असाधारण शक्ति है उसकी, फिर सोच रहा था गुरु के आदेश की बात। दिव्यज्ञानी गुरु ने निश्चित रूप से उसका ऐसा भविष्य नहीं चाहा होगा। उन्होंने उसे कुटीर से न निकलने की हिदायत दी थी।

'मैं गुरुजी से भेंट करने जाऊंगा। आने से पहले उनकी आशा और आशीर्वाद लेने का समय नहीं मिला।' तीन दिन तक लगातार अनुष्ठान के बाद अवसर पाकर तन्मय ने मंत्री से कहा।

'महाराज ! गुरु धीमान हिमालय चले गए हैं। फिर अगला अनुष्ठान पूरा हो जाए तभी आप महल से निकलेंगे।' मंत्री ने निवेदन किया।

'अगला अनुष्टान ?'

'महाराज ! राजकुमारी से आपका शुभ परिणय !'

'असंभव !' जानबूझकर जिंदगी में पहली बार चीख उठा तन्मय। मंत्री, सेनापति और कोतावाल चौंक उठे।

'इसमें असंभव या अस्वाभाविक क्या है महाराज ?' दूसरों को वहां से चले जाने को कहकर चार शासन-प्रमुखों ने तन्मय से सवाल किया ?

'अगर मैं विवाह करूंगा तो सिर्फ तांत्रिक चंडगौरांग की बेटी सुस्मिता से। मैं वचनबद्ध हूं।'

मंत्री और सेनापति हंस पड़े। 'सुस्मिता से शादी करने का वचन दिया था एक आश्रमवासी गरीब युवक ने—महाराज तन्मय चंद्र ने नहीं। वह वचन अब अर्थहीन हो चुका है।' दो प्रमुख कर्मचारियों ने मिलकर टिप्पणी की।

'महाराज ! सुस्मिता के साथ आपके विवाह की कल्पना ही असंभव है। वह चंडगौरांग की कन्या नहीं। उसका कुल अज्ञात है—शायद अवैध हो !' अभिभावक-सुलभ रीति से समझाया पुरोहित ने।

'हां महाराज, सुस्मिता अगर महल में हमारी राजकुमारी की सखी यानी आपकी सेविका के रूप में रहे तो किसी को आपत्ति नहीं होगी, हो सकता है, अवकाश न हो।' समस्या का हल सुझाने की मुद्रा में कोतवाल ने कहा।

'असंभव।' पुनः चीख उठे तन्मय। 'मैं राजकन्या से शादी नहीं करूंगा।'

'आपने कर ली है महाराज, उनकी माला ग्रहण करके। और सबके समक्ष आपको वरण करने का प्रमाण होने के पश्चात् राजकन्या के अलावा किसी और से विवाह करने का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है ? जो भी हो रहा है, वह परंपरा के अनुरूप है। निःसंतान राजा के विधि-निर्दिष्ट उत्तराधिकारी के रूप में जो सिंहासनारोहण करेगा, वह राजकन्या से विवाह करने को बाध्य है। हालांकि राजकन्या के न होने पर आपको अन्यत्र विवाह की स्वतंत्रता होती !' मंत्री ने कहा।

अधैर्य होकर तन्मय ने कहा, 'हाथी ने जो मेरे सर पर स्वर्ण-कलश उड़ेला, वह सिर्फ सुस्मिता के ही कारण था। यह मैं आपलोगों को कैसे समझाऊं ?'

प्रमुखों ने एक-दूसरे को देखा और पुरोहित ने कहा, 'महाराज, आप वाकई नहीं समझा सकेंगे। हमारे लिए उस रहस्य का एकमात्र अर्थ है दैवीय विधान, आपके लिए भाग्य, सौभाग्य, बस।'

तन्मय को संतुष्टि नहीं हुई। तर्क-वितर्क आधी रात तक चलता रहा। उसे अधूरा छोड़कर चारों प्रमुख चले गए। थके हुए तन्मय ने सोने की कोशिश की, पर नींद नहीं आई।

अंतिम प्रहर वह चौंक उठा। प्रासाद के आगे यह किसकी आवाज है ? द्वारपाल किसे डांट रहे हैं ? तन्मय के शयनकक्ष से निकलते ही दो व्यक्तिगत सेवकों ने अभिवादन करते हुए प्रश्न किया, 'क्या आज्ञा है सरकार ?'

तन्मय ने सोचा, उनींदे में उसने जो कुछ सुना, वह उसकी कल्पना और भय की वजह से ही है। सुस्मिता इस प्रकार उन्मादिनी-सी उससे मिलना चाहेगी, यह संभव नहीं।

अगले दिन उसे दिनभर दरबार में ही बैठे रहना पड़ा। एक के बाद एक सामंतों ने आकर उसका अभिवादन तथा अभिनंदन किया, उपहार दिए। पंडित और कवियों ने प्रशस्ति गान किए। एक के बाद एक उच्च पदारूढ़ कर्मचारियों ने अपना आनुगत्य स्वीकार किया। तन्मय यंत्रवत् सारा कुछ स्वीकारता जा रहा था; पर अवसर पाते ही मंत्री और पुरोहित के सामने अपने विवाह के बारे में अपने सिद्धांत की अटलता दुहराने लगता था।

रात के प्रथम प्रहर के व्यतीत होने पर तन्मय विश्राम के लिए जा ही रहा था कि अंतःपुरवासी परिचारिका ने आकर तन्मय से कहा, 'महाराज, राजकुमारी हेमवती आपसे कुछ निवेदन करेंगी।'

परिचारिकाएं हट गईं। परदे की ओट से राजकुमारी दिखाई दीं। पहले एक ही बार तन्मय ने उस सुंदर रूप को देखा था। लेकिन, अब वे रो रही थीं, जिससे उनका तीव्र सौंदर्य और भी प्रभावशाली दिखाई दे रहा था।

'महाराज !' सिसकियां रोकते हुए राजकन्या ने कहा, 'आप मेरी जग हंसाई मत कराइए। मेरा पाणिग्रहण कीजिए। मैं वचन देती हूं, शीघ्र ही आपके रास्ते से हट जाऊंगी। फिर आप अपनी मर्जी से विवाह कीजिएगा।'

राजकुमारी मुड़कर चली गईं। वज्राहत-सा बैठा रहा तन्मय।

दूसरे दिन कोतवाल ने आकर जो संवाद पेश किया उसका सारांश यह था कि चंडगौरांग और उनकी पालिता कन्या घर छोड़कर कहीं चले गए हैं। 'तांत्रिकों का आशय या आचरण हमारे लिए एक पहेली है।' कोतवाल ने एक विज्ञजनोचित मंतव्य दिया।

अनजान तन्मय किसे साथ लेकर किस तरह उनकी तलाश करेगा, यह समझ नहीं पाया। इधर प्रमुख, पुरोहित और अमात्य वर्ग का दबाव बढ़ रहा था। इन सबसे पहले तन्मय की चेतना को आच्छन्न किए हुए था राजकुमारी का अविस्मरणीय मुख-मंडल। अभिषेक के छठे दिन विवाह संपन्न हुआ।

परंपरा के अनुसार सिंहासन आरोहण के एक पखवाड़े के बाद नए राजा का सपत्नीक वाराणसी जाने का विधान है। तन्मय और हेमवती गए। वाराणसी पहुंचने के दूसरे दिन ही राजकुमारी ने बिस्तर पकड़ लिया। अस्वस्थता क्रमशः बढ़ती गई। काशी नरेश के गृह वैद्य ने उनकी सेहत की जांच-पड़ताल की और इलाज भी शुरू कर दिया। लेकिन राजवैद्य क्रमशः अधिक गंभीर दिखाई दिए और कई दिन बाद एक प्रख्यात मंत्रविद को ले आए। हेमवती की जांच करके दोनों दुःखी मन से लौट गए। हेमवती ने अत्यंत कोमल स्वर में कहा, 'महाराज ! अब मेरे वचन पूरा करने का समय आ गया है।'

'लेकिन मैं यह नहीं चाहता राजकुमारी ! अब परिस्थितियां बदल चुकी हैं। मुझे क्षमा कर दो।'

'मैं भी हट जाना नहीं चाहती, महाराज ? लेकिन...'

राजकुमारी की आवाज क्रमशः क्षीण से क्षीणतर होकर खामोश हो गई और आंखें मुंद गईं। बेचारी थोड़ी देर विश्राम कर ले, यही शुभेच्छा लिए तन्मय बैठे रहे।

निकट ही गंगाजी की वरुण धारा की मृदु कल-कल के अलावा परिवेश निस्तब्ध था। राजकुमारी के बिस्तर के सिरहाने कुछ कांपती-सी दीपशिखा थी।

ऊंघने लगे थे तन्मय।

'महाराज !'

जिंदगी में कभी ऐसे चौंके नहीं थे तन्मय। यह आवाज उनकी जानी-पहचानी है। यद्यपि उसमें आज एक विद्रूपता का आभास है।

दीपशिखा के वलयमान धुएं में मानो एक नारी मूर्ति का आकार दिखाई दे रहा था।

'महाराज ! राजकन्या अब नहीं रहीं।'

'नहीं रहीं ? लेकिन तुम ? सुस्मिता ?

'मैं भी नहीं रही। लेकिन तुम चाहो तो राजकन्या जीवन पा सकती हैं—मेरी इस प्राणसत्ता को मूर्तिमान करके। राजकन्या की ओर देखो। यह अमाप सौंदर्य हमेशा के लिए तुम्हारे जीवन से अलग क्यों हो जाए ? देर मत करो। बिना तुम्हारे सहयोग के मैं उनके शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती।'

'मुझे क्या करना होगा ?' विस्मित होकर तन्मय ने प्रश्न किया।

अनुष्ठान सहज और सामान्य है। सुस्मिता के निदेश से तन्मय ने उसका समाधान किया। राजकुमारी ने आंखें खोलीं।

'राजकुमारी !'

'मुझे इस प्रकार का संबोधन अच्छा नहीं लगता।' कहते हुए उठकर बैठ गई राजकुमारी अथवा सुस्मिता ? इस अद्‌भुत समस्या को टालने के लिए उन्हें रानी ही कहा जाए।

रानी सीधी होकर बैठ गई। उनकी आंखों में विषम तीव्रता थी। तन्मय सकुचा गया। संपर्क सहज बनाने के लिए उसने उनका हाथ पकड़कर कहा, 'आः, तुम्हें नया जीवन मिला !'

'किसे मिला नया जीवन ?' एक तीक्ष्ण हंसी के साथ रानी ने पूछा, 'राजकुमारी हेमवती को या तुम्हारी विस्मृत प्रेमिका सुस्मिता को ?'

'सुस्मिता, क्या तुम विस्मृता हो ? तुम्हारा ऐसा सोचना ठीक नहीं है...'

लेकिन तन्मय के वचन के प्रति ध्यान दिए बिना रानी ने गंभीर और रुक्ष होकर कहा, 'सुनो राजा, तुम जिस शरीर का इतने प्यार से स्पर्श कर रहे हो, वह मेरा नहीं है। अतः तुम्हारे स्पर्श से मेरे सिहरने का कोई तुक नहीं। बल्कि तुम्हारा

स्पर्श मुझे सचेत करता है कि तुम राजकुमारी से ही प्यार करते हो।'

'लेकिन सुस्मिता...'

रानी फिर हंसी। 'मुझे बेझिझक वैसा संबोधन कर सकते हो ? नहीं कर सकते। मुझे स्पर्श कर सकते हो ? नहीं कर सकते।'

'क्यों नहीं ? मैं तुम्हें स्पर्श करना चाहता हूं।'

'लेकिन जब भी कोशिश करोगे, तुम स्पर्श करोगे राजकुमारी को ही। वह मुझे सहन कैसे होगा ?' रानी रो पड़ी। पलभर में आत्मसंवरण करके कहा, 'इसका सही समाधान है कि तुम मुझे स्पर्श ही नहीं करोगे।'

रानी को स्वस्थ होते देख परिचारक-परिचारिका वर्ग आश्वस्त हुए। लेकिन उस शरीर में पूरी शक्ति लौट आने तक उन्हें वाराणसी में ही और कई दिनों तक रहना पड़ा। उन कई दिनों में तन्मय को लगा मानो वह पागल हो जाएगा। राजकुमारी हेमवती के शरीर में सुस्मिता की चेतना का अनुप्रवेश करना तो सही है। लेकिन कहां है उसकी वह सुपरिचिता सुस्मिता ?

अपने राज्य को लौट चलने का समय आ गया। दो अमात्य उन्हें ले जाने आए। लेकिन तन्मय ने कहा, 'आप लोग रानी को ले जाइए। मुझे थोड़े दिनों के लिए हिमालय जाना होगा। सिंहासनारोहण के बाद गुरुजी से एक बार भेंट करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है।'

अचानक राजपद प्राप्ति से प्राथमिक मूढ़ भाव कट गया था। अब तन्मय दृढ़ता के साथ अपना निर्णय सुना सकते थे। अमात्यों ने कोई विरोध नहीं किया। ऐसा लगा मानो रानी इस व्यवस्था से आमोदित हुई।

'प्रथानुसार आपकी अनुपस्थिति में रानी को ही राज्यभार संभालना होगा। उन्हें उससे मुक्ति देने के लिए यथासंभव शीघ्रता से आपको लौटना है महाराज ! एक वरिष्ठ अमात्य ने सजग कर दिया।

विदा लेते समय रानी ने प्रायः अट्टहास करते हुए खुद को संभाल लिया।

अमात्यगण जिन तीन परिचारकों को तन्मय के पास छोड़ गए, दूसरे ही दिन तन्मय ने उन्हें वापस चले जाने का आदेश दिया।

हिमालय की ओर अकेले ही निकल पड़ा तन्मय। गुरु धीमान से मिलने का वह जितना आग्रही था, अप्रत्याशित घटनावली के घेरे से निकलने को उससे कहीं अधिक उतावला था।

वह हरिद्वार पहुंचा, गुरु धीमान के एक मित्र के आश्रम में उसे पता चला कि बद्रिकाश्रम की एक बर्फीली गुफा में लगातार छः महीना तक समाधिस्थ रहने का निर्णय लिया है गुरु धीमान ने। उस समय जाड़े की शुरुआत थी। उत्तर की दिशा में और आगे बढ़ना तन्मय के लिए संभव न था।

आठ महीने बाद गुरु धीमान हरिद्वार लौट आए। उस समय अपने राज्य

के दो परिब्राजकों के साथ तन्मय की भेंट हुई। उनसे जो कुछ भी सुना, उससे मर्माहत होने के अलावा कोई और उपाय नहीं सूझ रहा था। रानी खूंखार हो उठी थीं। उनकी प्रतिहिंसा का पहला शिकार बने थे मंत्री। चंडगौरांग और उनकी कन्या सुस्मिता को मंत्री के निर्देश पर हत्या किए जाने के प्रमाण उन्हें कहीं मिल गए थे। अतः मंत्री को सूली पर चढ़ना पड़ा। राजकुमारी हेमवती अपनी उदारता और सत्स्वभाव के कारण सभासद् और प्रजाजनों की इतनी श्रद्धास्पदा थीं कि उनके आरोप पर अविश्वास करने का प्रश्न ही नहीं था।

लेकिन उसके इस विचार में पुरोहित ने अपना असंतोष प्रकट किया था। रहस्यात्मक रूप से पुरोहित निहत हुए। आगे चलकर रानी के बेकाबू होने के कारण कोतवाल को प्राणदंड मिला। सेनापति की बारी आने से पहले ही वह कहीं छुप गया।

दोनों परिब्राजकों ने और भी बताया कि तन्मय को ढूंढते-ढूंढते अमात्य गण हताश हो चुके हैं। सेनापति छुपकर विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं। उनके साथ संपर्क रखने का संदेह करके रानी बड़ी निर्ममता से एक के बाद एक अमात्य को मृत्युदंड दे रही थीं।

स्तब्ध तन्मय को गुरु धीमान ने कहा, 'वत्स ! तुम यथाशीघ्र जाकर रानी को रोको।'

'वत्स ! राजकुमारी हेमवती के कलेवर में जिसका अनुप्रवेश हुआ है, वह सुस्मिता की आत्मा नहीं, मात्र प्राणसत्ता है। उसमें सुदूर आशा, आवेग और अभिलाषा की विस्फोटक शक्ति है। तुम जिस सुस्मिता को जानते थे, उसकी प्राण-सत्ता को नियंत्रित करती थी उसकी आत्मा। तभी उसके व्यक्तित्व में संतुलन था।' गुरु धीमान ने कहा।

'गुरुदेव ! राजकन्या हेमवती के वियोग के लिए दायी कौन है ? मैं बड़ा मर्माहत हूं।'

एक दारुण दुःख की बेला में उन्होंने मरने का निर्णय लिया था। इसके साथ ही सुस्मिता या उसके किसी तांत्रिक शुभेच्छु के क्रियानुष्ठान का कार्यान्वयन भी हो सकता है। मृत्यु-कामना एक आध्यात्मिक अपराध है। कोई भी व्यक्ति उस कामना के वश में हो तो फिर अपशक्ति का अनिष्ट प्रबल हो सकता है। राजकुमारी ने जब जीने की इच्छा प्रकट की, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। वत्स ! उनके वियोग में तुम्हारा कोई दोष नहीं है। शांत हो जाओ।' गुरु ने कहा।

'सुस्मिता की मौत के लिए ?'

'घटना-चक्र। हो सकता है मंत्री की साजिश हो !'

तन्मय अपने राज्य लौट आया। लेकिन विलंब हो चुका था। विद्रोह के अंतिम चरण में विद्रोहियों ने महल पर हमला बोल दिया। आधी रात को आत्महत्या की

लाख कोशिशों के बावजूद रानी निहत हुई।

तन्मय के आते ही विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया। राज्य में फिर शांति लौट आई।

उदास, निरासक्त तन्मय राज कर रहा है। पर बहुत ही अकेला महसूस कर रहा है।

समझे अब 'द्विबार मृत' का अर्थ ? सुस्मिता एक बार अपने शरीर के साथ मर चुकी थी। दुबारा राजकन्या के शरीर में मरी।'

अबोलकर चुप बैठा था। मालिक की कथा समाप्त हो जाने पर भी उसके मुग्ध भाव में कोई परिवर्तन नहीं आया था।

'अब चलेंगे', मालिक ने कहा।

'मालिक ! कितनी विषम है यह धरती ! तन्मय, सुस्मिता, हेमवती किसी ने कोई अपराध नहीं किया था। हां, सुस्मिता ने अवश्य ही तन्मय के भाग्य के साथ खिलाड़ कर, उसके कल्याण के नाम से अपनी उच्च अभिलाषा और अहं का परिचय दिया था। लेकिन क्या उसके उस आचरण को अपराध की आख्या दी जा सकती है ?'

देने को तू या मैं कौन होते है ?

सही बात है मालिक ! फिर भी सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो गया, क्या से क्या हो गया ?

मालिक हंस पड़े, 'अबोल ! यह कहानी विस्तार से बताने का मतलब समझता है ? तू हर किसी व्यापार को दो और दो चार के नियम के तराजू में तौलता है। अगर किसी को कोई कष्ट हुआ तो तू समझता है कि कहीं उसने कोई अपराध किया होगा। लेकिन दुनिया के दृश्यमान नियम कानून के अंतराल में असंख्य अदृश्य घटनाएं घटी हैं। अपराध किए बिना भी लोग सजा पा रहे हैं। अज्ञान, आशा, आकांक्षा, स्वप्न, अभिलाषा भरी इस दुनिया में कौन किस वक्त किस परिस्थिति का शिकार होगा, यह कहना जिस तरह असंभव है; क्यों शिकार होगा, उसकी व्याख्या करना भी उसी तरह असंभव है ! समझे ?'

'शायद समझा। लेकिन जो जितना भी कष्ट उठाता है, अपनी आत्मा के समर्थन से ही कष्ट उठाता होगा।'

अबोल ! तूने कभी आत्मा का अनुभव किया है ? अगर नहीं किया है, तो उसके बारे में कहने का अधिकार तुझे किसने दिया ? हर बात की व्याख्या तलाश पाना संभव नहीं, इसी सत्य को लेकर तू फिलहाल संतोष कर ले। तपाक से फिर कोई व्याख्या करने का लोभ मत कर।'

'चल उठ !'

'उठने को मन नहीं करता।'

'देख अबोल ! राजा तन्मय के बाद फिर से स्वर्ण कलश लेकर हाथी निकलेगा। लेकिन राजा तन्मय दीर्घायु हों। आज से तेरे यहां बैठे रहने का क्या लाभ ?'

'मालिक ! स्वर्ण कलश उड़ेले जाने की कहानी सुनकर जैसे मैं खुशी से फूला नहीं समाता था, अपना सिर हिला देता था, तन्मय का इतिहास सुनने के बाद अब वह खुशी नहीं बची मुझमें।'

अबोलकरा उठने लगा...लेकिन मालिक हंस पड़े।

'आप हंसे क्यों ?'

'अबोल ! इस कहानी को दस बार सुनने के बाद भी जब हाथी स्वर्ण कलश लेकर निकलेगा, अन्य अनेक सिरों की तरह तेरा भी सिर उस ओर अपने आप झुक जाएगा। मानव चरित्र बड़ा विषम है रे अबोल !'

आकाश का कछुआ

सरोवर था स्वच्छ और उपत्यका थी हरी-भरी। किंतु उच्चाभिलाषी कंबुग्रीव को वह परिवेश रास नहीं आ रहा था। दिगंत की ओर दृष्टि प्रसारित कर वह लंबी सांसें छोड़ता रहता था। दूर-दराज की पर्वतमालाओं के उस पार के सरोवर और उपत्यकाएं कितने हरे-भरे होंगे ! विहंग न होकर कछुआ होने के कारण वह अपने भाग्य को धिक्कार रहा था।

समय-समय पर वह किनारे आकर ठंडी हवा में विचरण करता था। कभी लता-पत्तों से ओस की बूंदें चाट लेता तो कभी घास के किसी मुलायम फूल को चबा जाता। किंतु दूर के अज्ञात को जानने की पिपासा उससे बढ़ती भले ही हो, पर घटती नहीं थी।

कभी-कभार वह आंखें मूंदे कल्पनालोक में तरह-तरह के अजीब दृश्य देख लिया करता था : गुनगुनाते पेड़-पौधे; बादलों के अंदर से सीधे झरने वाली सतरंगी नदियां; खुशी से इकट्ठे हुए नामी नर और वानरों के बीच पूंछ की उपयोगिता विषय पर वाद-विवाद आदि।

हर साल बारिश की शुरुआत में संकट और विकट नामक दो हंस उस सरोवर में पहुंचे जाते। पर्वत शृंखलाओं के उस पार एक विशाल सरोवर से होकर जाते समय मार्ग में वे वहां हफ्ते भर विश्राम कर लेते थे। बड़ी बेसब्री से कंबुग्रीव उनके आगमन की प्रतीक्षा किया करता था। हंस की जोड़ी कछुए की जिज्ञासाओं से परिचित थे। तभी दूर-दराज की कहानी सुनाकर उसका मनोरंजन करने के लिए प्रतिदिन एक-दो घंटे का समय देने में वे दोनों कोताही नहीं करते थे।

उनके बीच पक्की दोस्ती हो जाने के बाद एक दिन कंबुग्रीव ने उनके साथ पेवर्तमालाओं के उस पार जाने की इच्छा प्रकट की। प्रस्ताव की संभाव्यता के बारे में काफी संदेह होने के बावजूद दोनों हंस पहले आधे कोस तक की दूरी तय करने का एक परीक्षामूलक कदम उठाने पर सहमत हो गए। विकट और संकट ने एक

---

* 'पंचतंत्र, 'कथा सरितसागर' एवं 'जातक' की कई लोकप्रिय कहानियों की पृष्ठभूमि पर रचित लेखक की व्यंग्यधर्मी कहानी-संकलन में मशहूर है यह कहानी।

लकड़ी के दोनों सिरों को चोंच में दबा लिया। लकड़ी के बीचों-बीच मुंह से पकड़कर लटक गया कंबुग्रीव। फिर वे लोग शून्य की ओर उठे।

इस पद्धति से आधा कोस तय करने के बाद वे लोग एक छोटे से पहाड़ के शिखर पर उतरे।

'परीक्षा सफल हुई।' मृदु मुस्कान के साथ विकट ने कहा।

अब तो वन-पर्वत, नगर-जनपद के ऊपर से होकर लगातार उड़ना होगा। शून्य में रहते हुए मुंह बिल्कुल नहीं खोलना है।' संकट ने कंबुग्रीव को आगाह कर दिया।

'सिर्फ इतना कहने के लिए यहां उतरने की क्या जरूरत थी ?' कछुए ने उत्कंठित होकर पूछा।

'बिना उतरे शून्य मार्ग में बात करने से तुम्हारी हालत गंभीर हो जाती।' हंसों ने याद दिलाया।

कंबुग्रीव कैफियत सुन नहीं रहा था। वह विस्मित और पुलकित हो चारों ओर निहार रहा था।

लकड़ी को बीच से दांतों से पकड़ने से पहले कछुए ने गदगद होकर कहा, 'प्रथम कछप महाकाशचारी के रूप में मेरा नाम इतिहास में अमर हो जाएगा।'

इस बार दोनों हंस अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छंदता और आत्मविश्वास के साथ ऊपर उठे। हवा अनुकूल थी और आकाश मेघमुक्त। लेकिन शाम का समय होने के कारण कागज पर स्याही बिखर जाने की तरह पूरे आकाश में बिखरे हुए थे पक्षियों के झुंड। गौरैया और बटेर जैसे पक्षी इस अकल्पनीय दृश्य से विमूढ़-से हो गए तो कबूतर और चील जैसे संभ्रांत पक्षियों ने इस पर उद्वेग प्रकट किया। निराशावादी के रूप में जाने-पहचाने एक कौवे ने कहा, 'मैंने कब से भविष्यवाणी की है कि आकाश का भविष्य अंधकारमय होने जा रहा हैं। कछुए द्वारा आकाश-विजय उस अवश्यंभावी परिणति का प्रारंभ ही समझिए।'

'हंस तो हर युग में विश्वासघाती रहे हैं', एक बगुले ने टिप्पणी की।

आकाश मार्ग की उस अभिनव घटना का मनुष्यों में सर्वप्रथम अवलोकन पर्वत के उस पार के कई चरवाहे युवकों ने किया। वे लोग ताली बजाकर यथासंभव कछुआ वाहक हंसों के साथ ताल देकर दौड़ने लगे। असुविधा होते हुए भी कंबुग्रीव ने आंखों की पुतलियां नीचे की ओर घुमाकर वह दृश्य देखा। नदी के किनारे तक आकर जब वे चरवाहे युवक रुकने पर मजबूर हो गए, तब उसने खुद उनकी विवशता पर ताली बजाने की प्रेरणा का अनुभव किया। लेकिन उसके हाथ या पैर छोटे-छोटे होने के कारण एक-दूसरे से मिल नहीं पाए।

कंबुग्रीव के वजन के कारण हंस द्वय ज्यादा ऊपर नहीं उठ पा रहे थे। नीचे नदी में नाव पर एक वृद्ध शादी करके अपनी तरुणी पत्नी के साथ लौट रहा

था। तरुणी ने लंबा घूंघट निकाल रखा था। लेकिन आकाश की इस अनहोनी घटना से यात्रियों का शोर-शराबा सुनकर उसने घूंघट खोलकर पति को अपनी कोमल कोहनी का पहला स्वाद चखाते हुए कहा, 'मुझे वह ला दो ना !' वृद्ध मुकुट पहने हुए खड़ा हो गया और संतुलन खोकर गिर पड़ा।

'बुद्धू।' कहने जा रहा था कंबुग्रीव। लेकिन मुंह से निकलने जा रहे शब्दों को वह निगल गया।

डूबते सूरज की किरणों का जाल हंसों के चंचल पंखों के साथ-साथ कछुए की चिकनी पीठ पर सोने की धूल पोत रहा था।

'वाह ! मैं उड़ रहा हू।' अचानक इतना कहने को उद्यत होते ही कछुए ने किसी तरह अपने को संभाल लिया।

थोड़ी दूर पर राजमहल का शिखर दिखाई दिया। इसी बीच लोगों ने संवाद दे दिया था। राजा अपने दरबार के तमाम सदस्यों के साथ छत पर पहुंच गए थे। दरबारियों में एक विदेशी राजदूत भी थे।

'बड़ा विचित्र दृश्य है !' राजा ने उड़ते कछुए को देखकर कहा।

'इसमें विचित्रता क्या है हुजूर ! हमारे राज्य में तो कभी-कभी पूरा का पूरा सूअर ही उड़ता हुआ नजर आता है।' विदेशी राजदूत ने कहा।

'लेकिन उसे उड़ा कौन ले जाता है ? तुम्हारे यहां सूअरों के पंख होते हैं या तुम्हारे राजा की पूंछ होती है ?'

'हुजूर !' राजदूत ने गला साफ करने के बावजूद हकलाकर कहा, 'न तो हमारे सूअर पंखवाले हैं और न ही हमारे राजा की कोई पूंछ होती है। लेकिन हमारे राज्य में भैंस जितने पक्षी मौजूद हैं। उन्हें सूअरों को उड़ा लेने का शौक है।'

'बड़ी विचित्र बात है।' राजा ने कहा।

'बुद्धू !' अपने उद्‌गत भावावेग को संभाल न पाने के कारण कंबुग्रीव ने कह डाला और चक्कर काटता हुआ वह महल की छत पर जा गिरा।

सभासद चौंक उठे। हंसों ने लकड़ी छोड़कर कुछ देर तक चीखते-चिल्लाते हुए महल के ऊपर चक्कर लगाया और फिर पास के एक पेड़ पर बैठकर देखने लगे।

कछुए को चक्राकार घेरकर सभासद विस्मित हो देखते रहे।

दरबार के प्रमुख विशेषज्ञ-भोजन प्रेमी भट्ट ने कहा, 'यह एक दुर्लभ किस्म का स्वादिष्ट कछुआ है। कछुए का मांस राजकीय खाद्य सूची से बाहर न होता तो यह राजभोग की मर्यादा पाने का हकदार था।'

'कहीं हजार सालों में एक बार महाशून्य से कछुए की वर्षा होती है। और कछुए का मांस हजार तरह की बीमारियों और दोष दुर्बलताओं का प्रतिरोधक बनता है।' दरबार के कविराज ज्योतिषी ने कहा। फिर दोनों आंखों के ऊपरी हिस्सों को

मूंदे बिना, निचला हिस्सा पंचांग पर केंद्रित करके ऐलान किया, 'आज से नौ साल, नौ महीने, नौ हफ्ते...'—हां, मैं देख रहा हूं कि भविष्य में दस हफ्ते में एक महीना होगा—नौ दिन और नौ घंटे बाद इस तरह के एक और कछुए का शून्य से टपकने की भविष्यवाणी मैं इसी वक्त कर रहा हूं।'

'परंतु महापंडित जी, आपने इस कछुए के गिरने के बारे में भविष्यवाणी क्यों नहीं की थी ?' राजा ने प्रश्न किया।

'हुजूर को ही केंद्र में रखकर मैं गणना करता हूं। चूंकि कछुए का मांस राजभोग के लिए अयोग्य है, इसीलिए मैंने इस घटने को उल्लेखनीय नहीं समझा।' महापंडित ने उत्तर दिया।

कछुए की ओर दृष्टिपात करते ही राजा की एक आंख में चमक दिखाई दी।

'अगर यह कई बीमारियों और दोष-दुर्बलताओं के लिए महौषधि है तो इसकी सब्जी बनवाकर पीड़ितों को खिलाने की व्यवस्था करेंगे।' इतना कहकर राजा ने प्रमुख रसोइए को आज्ञा दी कि वह उसे ले जाकर तत्काल उसका मांस पकाए।

'यद्यपि हुजूर की तरह मैं भी कुछए का मांस खाना पंसद नहीं करता, पर इसमें से आधा खाऊंगा। पूरी दक्षता से राजसेवा करने हेतु मुझे तुरंत गठिया वात से मुक्त होने की आवश्यकता है' सेनापति ने कहा।

सेनापति की घोषणा तमाम मंत्री और सभासदों के गले से प्रतिध्वनित हुई। सभी अधिक दक्षता के साथ राजसेवा करने हेतु कछुए का कुछ अंश भक्षण करके किसी-न-किसी बीमारी से मुक्त होने के आग्रही थे।

विदेशी राजदूत ने घोषणा की, 'हमारे दोनों महान देशों के बीच मित्रता अधिक प्रगाढ़ करने के लिए मैं भी किंचित कछुआ-मांस खाने को तैयार हूं।'

इसी बीच राजा के लिए एक चलता-फिरता सिंहासन छत पर लाया जा चुका था। उस पर उनके आरोहण के बाद शेष सभी लोग फर्श पर बैठ गए। 'जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता है, कछुआ उसे ही मिलेगा। हम उस पर विचार करेंगे। लेकिन इस प्राणी को शून्य से टपकते वक्त कुछ कहते हुए हमने सुना है। वह क्या है ?' बृहत्तम कर्णधारी सभासदों से राजा ने यह प्रश्न किया।

'कहते हुए छाती फटी जा रही है, हुजूर !' सभासद ने अपने अनन्य कर्णयुगल (जिसे वे अपनी इच्छानुसार हिला सकते थे) पर हाथ फेरते हुए कहा, 'उस प्राणी ने 'बुद्धू' शब्द का उच्चारण किया था।'

'अजीब बात है ! लेकिन किसे संबोधित कर उसने ऐसा कहा था। हमारे बीच 'बुद्धू' है ही कौन ?' राजा ने आश्चर्य प्रकट किया। गहरी खामोशी के बीच सभी सभासद एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

'बुद्धू अगर स्वयं न माने तो मजबूरन हमें उसे तलाशना होगा।' इतना कहकर

राजा ने थोड़ी-सी प्रतीक्षा की। पर खामोशी और गहराती चली गई।

'हमारे सम्मानित अतिथि विदेशी राजदूत महोदय अपने कूटनीतिक विशिष्टता की दृष्टि से 'बुद्धू' नहीं हो सकते।' राजा ने कहा।

'आप सही फरमा रहे हैं हुजूर !' राजदूतोचित संकोच से सिर हिलाकर उन्होंने राजा के वक्तव्य का समर्थन किया।

'हमारे मंत्रीगण या तो मंत्री हैं, अन्यथा 'बूद्धू'। वे लोग एक साथ दोनों नहीं हो सकते।'

'आपने बिल्कुल सही फरमाया है हुजूर ! हमलोग सिर्फ मंत्री हैं,' आश्वस्त मुस्कान के साथ मंत्रियों ने कहा।

'हमारे सेनापति. जिसने सबके समक्ष, यहां तक कि एक विदेशी दूत के सामने अपने गठिया वात का रहस्य खोल दिया, वे निश्चित रूप से अपने चेहरे से जैसा लगते हैं, उससे कहीं अधिक ज्ञानी हैं।'

सेनापति ने विकल मुस्कान के साथ सबकी ओर देखा।

क्रमशः इसी प्रकार एक-एक करके सभी सभासद 'बुद्धू' होने की संभावना से मुक्त हुए।

जिस समय अंतिम आश्वासन की लंबी सांस सुनाई दी, उस समय राजा अचानक उठे और बोले, 'तो फिर मैं ही बचा; यानी मैं ही बुद्धू हूं।'

सभी सभासद रो उठे।

'लेकिन राजा होकर बुद्धू होने से कैसे काम चलेगा ? आवश्यकता हो तो राजघराने की पावन परंपरा को तोड़कर इस असाधारण कछुए को—संभव हो तो पूरे कछुए को खाकर बुद्धू व्याधि से मुक्त होना क्या मेरे लिए जरूरी नहीं है ?' इतना कहकर कछुए का मांस लेकर पहुंचे रसोइए को इशारा करते ही रसोइए के सहयोगी ने पास बैठे किसी की पगड़ी खोलकर राजा की गोद में बिछा दी और उस पर मांस का बर्तन रख दिया।

सभासद वर्ग अभी रो ही रहा था कि राजा ने बड़ी निष्ठा से पूरा बर्तन साफ कर दिया।

'खामोश !' राजा की धमकी ने बुलडोजर की भांति सभासदों के रोने-धोने को रौंद कर निस्तब्ध कर दिया। फिर राजा ने अपनी मूंछें पोंछकर राजदूत पर नजर टिकाई और कहा, 'सुनो दूत महोदय ! एक महीने का समय देता हूं। आप अपने राज्य में सुलभ भैंस के आकार के विहंगों का एक जोड़ा ले आइए। वरना आपका राज्य हमारे एक परगने में परिणत हो जाएगा। दीर्घकाल हुए हमने किसी महत काम में हाथ नहीं डाला है। फलस्वरूप हमारी सेना मोटापे का शिकार हो गई है, सेनापति गठिया वात भोग रहे हैं। सिर्फ लड़ाई के अभाव में हमारी यह दुर्दशा है।

स्टेच्यू

'आप महामानव जैसे यमेश्वर गुप्त को नहीं जानते ? भला यह कभी हो सकता है ? शायद टेलीफोन ठीक से काम नहीं कर रहा आपका। मैं य-मे-श्वर-गु-प्त की बात कर रहा हूं।'

'अच्छा, आप मान्यवर उपमंत्री दिगंबर गुप्त की बात कर रहे हैं ?'

'धत्तेरी की ! मैं यमेश्वर गुप्त की बात कर रहा हूं। वे दिगंबर गुप्त से बहुत बड़े आदमी हैं। एक जमाने में वे इस विराट शहर के नगरपाल रह चुके हैं। आज के कांग्रेस के प्रतिष्ठाता समझ लीजिए उन्हें, क्या अब आप कह सकते हैं कि आप उन्हें नहीं जानते ?'

'असल में, मुझे अफसोस है—मैं इस शहर में नया आया हूं। अभी महीना भी पूरा नहीं हुआ है।'

'अजीब बात है। आप तो इसी भारतवर्ष में कहीं पुलिस अधीक्षक थे। भारत भर में यमेश्वर गुप्त का नाम किसने नहीं सुना ?'

'माफ कीजिएगा। हो सकता है सुना हो। कई नाम सुनने पड़ते हैं, इसीलिए याद नहीं रहते।'

'याद नहीं रहते, यमेश्वर गुप्त का नाम कई नामों में से एक नहीं है, वे मशहूर हैं, प्रख्यात हैं, महान हैं...'

'अच्छा, आप कौन साहब बोल रहे हैं ?'

'ओहो...मैं उनका एक अनुगत हूं। कहना न होगा, उनके हजारों अनुगत देशभर में फैले हुए हैं, हां हजारों ! उनके स्टेच्यू की सुरक्षा के बारे में मैं कह रहा हूं। हर रात शहर में स्टेच्यू तोड़े जा रहे हैं। उग्रवादियों द्वारा गुप्त जी का स्टेच्यू तोड़ डालने की साजिश बहुत स्वाभाविक है। आपलोग उस पवित्र वस्तु की सुरक्षा के लिए क्या कदम उठा रहे हैं ?'

'अब तक जितने भी विशिष्ट स्टेच्यू सुरक्षित हैं, उन पर कड़ी निगाह रखने का इंतजाम किया गया है। आप जिन गुप्त साहब की बात कर रहे हैं...'

'कृपया गुप्त साहब मत कहिए। गुप्त महोदय ने जिंदगी भर साहब-संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया है। जिंदगी में कभी उन्होंने ट्राउजर्स, कोट, टाई नहीं पहनी।

अब भी वे...'

'अब भी ? मतलब गुप्त महाशय जीवित हैं ?'

'ताज्जुब है। गुप्त महाशय के प्राण त्याग करने पर तमाम अखबार उस खबर से भर नहीं जाएंगे ? आप नहीं जानते ? आप नहीं जानते ? कैसी बातें कर रहे हैं ? इस पर हसूं या रोऊं ?'

'मैं शर्मिंदा हूं।' खैर, इस दिशा में जो भी कुछ किया जा सकता है, मैं करूंगा। यमेश्वर गुप्त का स्टेच्यू तो ?'

'हां, हां यमेश्वर गुप्त। एक प्रख्यात व्यक्ति हैं।'

दूसरी तरफ से रिसीवर रखने की आवाज आई। मजबूरन यमेश्वर बाबू ने भी रिसीवर रख दिया और लंबी सांस ली। फिर धीरे-धीरे अपने कमरे की ओर बढ़े और खिड़की व दरवाजे खोलकर चारों ओर देखा। नहीं, उनकी आवाज अगर सुनाई दे भी रही होगी तो भी सुनने के लिए आसपास कोई आदमी नहीं था।

कितने आश्चर्य की बात है कि आजकल के अफसर उनका नाम तक नहीं जानते। लेकिन सिर्फ बीस साल पहले वे इस शहर के अप्रतिद्वंद्वी नेता थे। स्थानीय कांग्रेस के कार्यकर्ता उन्हीं के इशारे पर चुने जाते थे। बिना उनके आशीर्वाद के शहर से विधानसभा के लिए चुना जाना नामुमकिन था। वे थे नगरपाल। एक बाल संघ समेत लगभग आठ सालों तक अनेक संस्थाओं, समितिओं और सेवासंस्थानों के अध्यक्ष भी रहे। फिर न जाने क्यों क्या सब हो गया कि वे और किसी में घुस नहीं पाए।

दुनिया अकृतज्ञ है, बल्कि अजीब कहना चाहिए।

छोकरे-से पुलिस अधीक्षक ने आई.पी.एस. परीक्षा की तैयारी में हजारों नाम, तारीख व जगहों के नाम याद रखे होंगे। लेकिन उनके शहर में आकर उनका नाम तक नहीं सुना।

यमेश्वर बाबू ने काफी परेशान होकर पांच मिनट तक कमरे के अंदर चहलकदमी की और फिर-से खिड़की और दरवाजे बंद कर दिए। इस बार उन्होंने पुलिस विभाग के मंत्री के घर फोन करने की कोशिश की। सातवीं कोशिश के बाद लाइन मिली।

'हैलो, जरा मिनिस्टर साहब को दीजिएगा। जरूरी बात करनी है।'

'वे और भी जरूरी काम में व्यस्त हैं। क्या चाहिए ?'

'मैं यमेश्वर गुप्त बोल रहा हूं। उन्हें दीजिए।'

'कौन ?'

'यमेश्वर गुप्त, पूर्व नगरपाल, बहुत जरूरी बात करनी है।'

'ओ, अच्छा रुकिए, देखता हूं।'

दो मिनट बाद एक गंभीर स्वर सुनाई दिया—'हैलो, क्या बात है गुप्त जी ! बहुत दिनों से आपसे भेंट ही नहीं हुई।'

'माफ कीजिएगा, मैं गुप्त जी नहीं हूं। आपका पी.ए. ठीक से सुन नहीं पाया। मैं तो गुप्त जी का एक अनुगत बोल रहा हूं।'

'हां, जल्दी बोलिए।'

'स्टेच्यू टूटते हैं तो बड़े करुण दिखाई देते हैं।'

'मैंने उन्हें बोरों से ढकने का निदेश दिया है।'

'मैं यह कह रहा था कि गुप्त जी के स्टेच्यू को भी उग्रवादी तोड़ सकते हैं। आप उस दिशा में क्या कदम उठा रहे हैं ?'

'पागल !'

'क्या कहा ?'

'कुछ नहीं !'

'जी हां, क्या मतलब...'

'सुनो भाई, गुप्त जी का स्टेच्यू कोई नहीं तोड़ेगा। वे लोग सिर्फ बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेताओं के स्टेच्यू तोड़ रहे हैं।'

'जी हां, गुप्त जी भी एक राष्ट्रीय नेता, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय...क्या गुप्त जी एक अंतर्राष्ट्रीय नेता नहीं हैं... ?'

'हस्स !'...

लाइन कट गई, गुप्त जी ने हताश होकर दो-चार बार हैलो, हैलो करके मजबूरन रिसीवर रख दिया और माथे से पसीना पोंछने लगे।

मंत्री ने क्या कहा ? हस्स ?

आज का यह मंत्री बीस साल पहले संभवतः उनकी सभा के लिए इक्के पर बैठकर चोंगे से गला फाड़-फाड़कर प्रचार करता रहा होगा। किसी छात्र-सभा में पच्चीस बार थूक निगलते हुए उनका स्वागत किया होगा। लेकिन आज कह रहा है—हस्स !

गुप्त जी ने दीवार के पास जाकर पुरानी तसवीरों को देखा, परखा। यही तो, राष्ट्र के जनक के पैर के नीचे एक पालतू बिल्ली की तरह वे कितने अपने बने बैठे हैं। इधर प्रधानमंत्री की गर्दन में किस प्रकार एक भीमकाय फूल माला डाल रहे हैं; इस तरफ प्राथमिक शिक्षक-संघ का मानपत्र किस तरह हंसते हुए प्राप्त कर रहे हैं ! वे राष्ट्रीय नेता नहीं तो क्या क्षेत्रीय हैं ?

अलमारी खोलकर गुप्त जी ने एक मोटा-सा रजिस्टर निकाला। उसमें लगभग सौ छोटी-बड़ी कतरनें चिपकाई गई हैं। उनके भाषण न जाने कितनी बार हेडलाईन बने हैं। फिर भी मंत्री कहता है, पागल !

आंखें भर आईं।

मौत का सन्नाटा छाया हुआ है।

अपने सींग से मिट्टी खोदकर बेटा बड़ा आदमी बना है। तभी पिता के

प्रति कृतज्ञता का कोई अंदाज ही नहीं है। गुप्त जी अगर इस समय बाहर निकल जाएं तो कोई देख नहीं पाएगा।

गुप्त जी काला ओवरकोट पहने चल रहे हैं। निर्जन पथ। फिर भी गलियों से होकर गुजरना ज्यादा सुरक्षित है। आधे घंटे का रास्ता है।

गुप्त जी अपने स्टेच्यू से थोड़ी दूर पर खड़े रहे। अगर उन्हें पता होता कि यह इलाका इतना परित्यक्त होगा, तो वे हरगिज अपना स्टेच्यू इस जगह न बनवाते। (इसके लिए उन्हें न जाने कितने पापड़ बेलने पड़े हैं।) भला वे कैसे सोचते कि नगरपालिका का दफ्तर यहां से हट जाएगा ! शहर भी दूसरी दिशा में बढ़ने लगा। फिलहाल एक छोटे-से बैंक के अलावा यहां और कुछ नहीं है।

चांदनी में स्टेच्यू की परछाईं लंबी हो गई है। वे परछाईं में जाकर खड़े हो गए। स्टेच्यू के आधार में से एक टुकड़ा खिसक गया है। इतनी जल्दी ? जबकि नौ हजार सात सौ रुपए का चंदा इकट्ठा हुआ था इस काम के लिए। वह तमाम रकम हड़प कर सस्ते में काम करवाया गया है। हाय ! उन्होंने यह कैसा सपना देखा था कि यह कीर्ति हमेशा के लिए बरकरार रहेगी।

अचानक थोड़ी दूर से कुछ लोगों की फुसफुसाहट और पैरों की आहट सुनाई दी। स्टेच्यू के पीछे एक गड्ढा है। और अंधेरा भी। वे छिप गए।

चार नौजवान स्टेच्यू के पास आकर खड़े हो गए। उनकी चाल-ढाल, वेश-भूषा अस्वाभाविक और त्रस्त लग रही थी। वे क्या बातें कर रहे थे, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। लेकिन स्टेच्यू के बारे में जरूर ही बात कर रहे होंगे...और वे लोग स्टेच्यू की ओर बढ़ रहे हैं।

सहमे हुए गुप्त जी ने देखा, एक नौजवान स्टेच्यू पर चढ़ रहा है। वह स्टेच्यू की गर्दन काट डालना चाहता है, इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन असंस्कृत मंत्री कह रहा था—पागल, हस्स !

राष्ट्रीय नेता ? यमेश्वर गुप्त राष्ट्रीय नेता हैं या नहीं, काश मंत्री देखता अभी यहां आकर ! अब भी शहर में तीन-चार स्टेच्यू बचे हुए हैं; लेकिन उग्रवादी आए हैं उन्हीं का स्टेच्यू तोड़ने। बेहद स्वाभाविक है। एक जमाने में वे इस शहर की प्राणशक्ति के प्रतीक थे।

वह नौजवान स्टेच्यू के प्रशस्त कंधों पर संतुलन बनाते हुए खड़ा हुआ। नहीं, गर्दन तो नहीं काट रहा है।

क्यों नहीं काट रहा गर्दन ?

उस नौजवान ने आंखों में एक दूरबीन लगाकर बैंक की इमारत की दीवार के उस पार देखा। फिर इशारे से साथियों को कुछ कहकर नीचे उतरा।

वे चारों चलने लगे।

'हॉल्ट !' शोर सुनाई दिया। सभी नौजवान थोड़ी देर के लिए चौंककर खड़े

रहे। गुप्त जी ने तैश में आकर कांपते हुए स्टेच्यू के आधार पर अपने को टिकाकर फिर-से चिल्लाया, 'बर्बरो ! यह स्टेच्यू क्या इसीलिए बना था कि तुम इसके कंधे पर चढ़कर खड़े हो जाओ। जानते हो यह किसका स्टेच्यू है ? जानते हो, ये एक जमाने में क्या थे ? तुमने सोचा है कि तोड़ने लायक विशिष्ट स्टेच्यू यह नहीं है। तुम बेवकूफ हो। क्या यह स्टेच्यू सिर्फ तुम्हारे पांवदान बनने के लिए बना था ?'

वे नौजवान कुछ सुनने की स्थिति में नहीं थे। गुप्त जी की ओर संकेत करके वे लोग कुछ फेंककर दौड़ते हुए चले गए। गुप्त जी के गड्ढे में गिरने के साथ-साथ स्टेच्यू के पैरों तले भयंकर विस्फोट हुआ। कमजोर स्टेच्यू नीचे गिरकर चूर-चूर हो गया।

गुप्त जी कांप रहे थे। फिर भी किसी और के आने से पहले वे दौड़ते हुए गलियों में कहीं खो गए।

फिलहाल स्टेच्यू-विहीन ज़िंदगी में गुप्त जी बड़े सुख-चैन से हैं। आजकल वे खूब हंसते हैं।

कॉन्क्युबाइन

निजनपुर के पश्चिम की ओर ऊबड़-खाबड़ जमीन, झाड़ियों को पार कर जिस एक कमरे वाले मकान में पहुंचना पड़ता है, उसके इतिहास पर प्रकाश डालना मेरे प्रगतिवादी मित्रों को पसंद न था। उनके पसंद-नापसंद के बारे में निरासक्त रहकर सन् 1951 तक जनता द्वारा उसे 'कसाईखाना' के नाम से जाने जाने के कारण उनकी इस अस्वस्थ आदत को दूर करने के लिए घर पर एक साइनबोर्ड का मुकुट स्थापित कर दिया गया था। उस पर भीमकाय अक्षरों में लिखा गया था—प्रगतिवादी क्लब। आजादी के बाद के युग में बकरी खाने वालों के साथ-साथ बकरियों की संख्या में प्रशंसनीय अभिवृद्धि होने के कारण एक बड़े और अपेक्षाकृत विज्ञान-सम्मत भवन को अपना व्यापार स्थानांतरित करके सुजनपुर के धनिक और देशप्रेमी कसाई महोदय ने उस मकान को स्थानीय प्रगतिवादी युवकों को सौंप दिया था।

मेरे निजनपुर घूमने आने के दूसरे दिन शाम को एक और प्रगतिवादी सुजन दास मुझे अपने क्लब में खींच ले गए। जिस गंभीर मसले पर उस दिन चर्चा होनी थी, राह चलते उन्होंने उसका सारांश मुझे सुना दिया। निजनपुर के अतीत के गौरव के साथ-साथ समकालीन प्रगति का चित्र प्रस्तुत करने तथा अन्याय, शोषण और कुसंस्कारादि व्याधि के विरुद्ध आवाज उठाने के साथ-साथ एक पाक्षिक पत्रिका निकालने के लिए क्लब के सदस्य जोर दे रहे हैं। पत्रिका के नाम के बारे में मैंने जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि उस विषय में सोचने का दायित्व निजनपुर के कई चिंतनशील व्यक्तियों को सौंपा गया है। अब तक मिले सुझावों में 'कोटि ब्रह्मांड सुंदरी', 'लावण्यवती' तथा 'बज्रपात' और 'विप्लव श्री' विशेष उल्लेखनीय हैं। पहले दो नाम अतीत के गौरव की यादगारी के रूप में पंडित पुंडरीक पंडा से मिले थे और शेष दो नाम क्लब के सदस्यों ने सुझाए थे।

जब हम क्लब पहुंचे, उपस्थित सदस्यों में एक अभूतपूर्व उत्तेजना की लहर फैली हुई थी। क्लब के अध्यक्ष माखन राय ने इसके उद्देश्य से हमें परिचित करा दिया। माखन राय के मित्र, शहर में तीन साल तक एक दैनिक अखबार में काम कर चुकने वाले प्रतीप विषोई निजनपुर घूमने आए थे और इस समय क्लब के

सदस्यों को पत्रिका प्रकाशन के बारे में कुछ कहने को उपस्थित थे।

विषोई जी के एक कीमती सिगरेट पैकेट में से एक बीड़ी निकालते ही माखन बाबू ने स्वयं दियासलाई जलाकर उनकी मदद की। विषोई कहते रहे...

'हां, तो मैं कह रहा था पाक्षिक पत्रिका निकालने के लिए जो चाहिए, वो न कागज है न छापाखाना और न ही रुपया-पैसा; लेकिन...'

तमाम मित्र सिर हिलाकर विषोई जी से सहमत हो रहे थे। लेकिन जब यकायक रुककर विषोई जी ने अर्थपूर्ण दृष्टि से सबकी ओर देखा और उनलोगों को वाक्य पूरा करने का मौका दिया, तब सबके सब बड़े असमंजस में पड़ गए और बगलें झांककर समस्या से उबरने की ताक में रहे।

विषोई जी ने कहा, 'जो चाहिए, वह है आंख। सिर्फ दो आंखों से दुनिया को देखने से काम नहीं चलेगा, माखन बाबू !'

भावी संपादक माखन बाबू के मुस्कुराने पर उनके गर्दन के ऊपर सजे केश पर एक मीठी थपकी देते हुए विषोई जी ने कहा, 'इधर भी दो आंखों का होना जरूरी है। तभी तुम खबर बना सकोगे।'

'लेकिन हमारे इस छोटे-से कसबे में घटनाएं कहां घट रही हैं जो खबर बनाएंगे !' माखन राय ने चिंतित भाव से कहा।

विषोई जी अपनी अधजली बीड़ी लगभग चुभो देने की मुद्रा में माखन बाबू की आंखों के इतने करीब ले गए कि भावी संपादक ने आंखें मूंद लीं।

'हे...आंखें क्या मूंद रहे हो जी ? कहा न कि दो-चार आंखें और चाहिए !' विषोई हंस पड़े; फिर गंभीर स्वर में तसल्ली देते हुए बोले, 'नहीं भाई, दो ही आंखें चलेंगी। मेरी भी तो दो ही हैं न !'

माखन राय उत्साहित दिखने लगे।

विषोई ने बीड़ी फेंकते हुए कहा, 'लेकिन, हां इन दो आंखों के अंदर दो और आंखें उभरनी चाहिए। तुम कहते हो, यहां खबर नहीं हैं। पर तुम्हारे साथ यहां आते हुए रास्ते में खबर बनने लायक कम से कम आधी दर्जन घटनाएं मैंने देखी होंगी।'

हम लोग विषोई जी की दिखाई देने वाली आंखों के अंतराल में छिपी रहस्यमयी आंखों की तलाश में थे।

'कौन-सा उदाहरण दूं ? दूं ?' उन्होंने चौंकाया।

माखन बाबू ने विस्मित होकर कहा, 'दीजिए।'

विषोई ने सवाल किया, 'कचहरी के चौक पर क्या हुआ ?'

'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं हुआ ?'

'मैं...मैं कुछ याद नहीं कर पा रहा हूं।'

'हा, हा, !' विषोई बाबू हंस पड़े, 'हमारे आते समय एक रिक्शे पर दो आदमी सवार थे। अचानक एक तीसरा मोटा आदमी—बहुत मोटा आदमी बैठने की कोशिश कर रहा था, लेकिन रिक्शेवाले को उसका पता न था। लोग हंस पड़े। मोटा आदमी उतर गया। ठीक है ना ?'

विषोई जी का वर्णन सुनकर सब लोग एक प्रकार से विचलित होकर खामोश बैठे रहे।

'मैं समझ रहा हूं, तुमलोग इसका मतलब समझ नहीं पा रहे हो। समाचार का शीर्षक होगा—निजनपुर राजपथ पर लोकमत या लोकहंसी की विजय !—अब समझे ?'

माखन राय और उनके सहयोगी सचमुच चमत्कृत दिखाई दिए।

'अब तो चुनाव आ रहा है। सुनहरा अवसर है। राजा बेटा के विरुद्ध तुम प्रगति-पंथियों को अपना अभियान तेज करने की आवश्यकता है। विषोई ने फिर सिगरेट के पैकेट से बीड़ी निकाली।

आज सन् 1973 में जिस तरह किसी-न-किसी राजनीतिक दल से जुड़े न होने वाले किसी नौजवान को शहर-बाजार में ढूंढ पाना मुश्किल है, सन् 1952 में वैसा नहीं था। निजनपुर के प्रगतिवादियों ने तब तक राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से उत्साह प्रदर्शन नहीं किया था। लेकिन मुझे लगता है कि उस दिशा में माखन राय के अपने सपने थे। खैर, सामंतवादी प्रभाव एक प्रतिक्रियाशील मामला है और आधुनिकता के नक्शे में निजनपुर के लिए स्थान बनाना हो तो उस प्रभाव को हटाना ही होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

दुर्भाग्य से राजा का बेटा अति लोकप्रिय लग रहा था। उसके दिवंगत पिता बूढ़े राजा के अत्याचार, अनाचार के बारे में लोग बड़ी तेजी से भूल चुके थे। राजा बेटे का चुनाव में विरोध करने वाले बिल्कुल शरीफ लोग थे, यह बात नहीं है। फिर भी, वे कम से कम सामंतवाद-विरोधी आंदोलन के प्रतीक थे। राजनीति विज्ञान यह नहीं कहता कि अच्छे आंदोलन के प्रतीक होने वाले को शरीफ होना ही चाहिए।

थोड़े दिन पहले अचानक क्लब-घर में पहुंचकर विस्मित सदस्यों का अभिवादन करके चुनाव में उनका साथ देने का अनुरोध किया था। दूसरे हामी भरें, इससे पहले ही माखन बाबू ने कहा था, 'माफ कीजिएगा, व्यक्तिगत रूप से आपके विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है। लेकिन आप कभी राजा थे। पूर्व राजा को वोट देना उचित नहीं होगा।'

राजा बेटा तब तक सबको एक-एक सिगरेट पकड़ा चुका था। सिगरेटों पर लौ दिखाते हुए धीमी आवाज से उन्होंने कहा था, 'मिस्टर राय ! अगर मैं कहूं कि

आप कभी बच्चे थे, एक पूर्व बच्चे को सिगरेट पिलाना उचित नहीं होगा, क्या आप इस तर्क को स्वीकार करेंगे ?' अतः मेरा अनुरोध है, आप अपने तर्क पर पुनर्विचार करें।

राजा बेटे को कोई प्रत्युत्तर न दे सकने के कारण माखन राय उस दिन बड़े परेशान हुए थे। और यह बात इतनी तेजी से फैल गई थी कि लोग राजा बेटा की बुद्धि की तारीफ अधिक जोरों से करने लगे। नतीजा यह हुआ कि माखन राय तथा क्लब के तमाम सदस्य शीघ्र ही पूरी तरह सामंतवाद-विरोधी बन गए।

'लेकिन राजा बेटा कहीं ज्यादा प्रचार नहीं करता। सभा-समितियों में खुद बहुत कम बोलता है। उसके लिए दूसरे बोलते हैं। कल उस पार के गांव में नौकरानियों की एक सभा होगी।' एक सदस्य ने कहा।

'वहां कौन बोलेगा ?' विपोई ने सवाल किया।

'सती देवी !'

'कौन है वो ?'

'महल की एक औरत है। बूढ़े राजा की रखैल।'

विपोई ने ताली बजाई और कहा, 'यही सुनहरा अवसर है।' इसके बाद इस अवसर का कैसा इस्तेमाल करना होगा, उसके बारे में उन्होंने सदस्यों को समझा दिया। सबके सामने उस महिला को कॉन्क्युबाइन बनाकर पोल खोलनी होगी। अपमान से उनके भाग जाने के बाद घटना को किस रूप में फैलाना होगा, यह विपोई ने विस्तार से सिखा दिया। पाक्षिक पत्रिका के प्रथम अंक के प्रथम पृष्ठ के लिए यह समाचार पर्याप्त होगा।

'सदा सजग रहना होगा, समझे ?' विपोई ने विदा ली।

सदस्यों ने इसे अच्छी तरह समझकर प्रबल उत्साह का अनुभव किया। क्लब से लौटते हुए उन्होंने विशिष्ट होमियोपैथ रुद्राक्ष मोहन सुबुद्धि से एक-चौथाई पृष्ठ विज्ञापन हेतु अग्रिम पांच रुपए वसूल किए। माखन बाबू ने सुबुद्धि को दिलासा दी थी कि इस पत्रिका की बारह हजार प्रतियां छपेंगी। एक को दस के हिसाब से एक लाख बीस हजार लोग इसे पढ़ेंगे। उनमें से कम से कम आधे यानी साठ हजार लोग रोग-व्याधि का शिकार होंगे। उनमें से कम से कम एक-तिहाई यानी बीस हजार लोग निश्चित रूप से होमियोपैथी पर भरोसा करते होंगे। उसका एक-चौथाई यानी पांच हजार मरीज अगर सुबुद्धि के पास आते हैं और सुबुद्धि महाशय उनसे एक-एक रुपया भी लेते हैं तो वे पांच हजार रुपए पाएंगे, विज्ञापन का पांच रुपया घटाकर चार हजार नौ सौ पंचानवे रुपए का शुद्ध लाभ होगा।

पुलकित, विमोहित तथा सप्रतिभ सुबुद्धि ने कहा था, 'नहीं, इतना कहां बचेगा क्योंकि उस हालत में मुझे एक कंपाउंडर रखना होगा। फिर, सच पूछिए तो दवा

का दाम भी तो है !'

रास्ते में मैंने बड़े विनीत भाव से पूछा था, 'माखन बाबू ! यहां के फटीचर हैंड प्रेस में क्या एक ही बार में बारह हजार प्रतियां छपनी संभव हैं ?'

राय ने उत्तर दिया था, 'कागज का सर्कुलेशन एक गूढ़ और गहन मामला है।'

सती देवी का सामना करने जाने की मेरी कत्तई इच्छा नहीं थी। लेकिन माखन राय और सुजन दास ने मुझे नहीं छोड़ा। राजनीति और पत्रकारिता के समन्वय से मित्र लोग बड़े उत्तेजित दिखाई दे रहे थे। युवकों में केवल माखन राय ही एक फौलाद जिगर वाले थे। सती देवी का अपमान करने में दूसरों का कोई आग्रह नहीं था। फिर भी सामंतवाद विरोधी आंदोलन तथा मृतप्राय पाक्षिक पत्रिका के प्रथम पृष्ठ के प्रति कर्त्तव्य की दृष्टि से उस दिन चिलचिलाती धूप में पसीना-पसीना होकर सभी आगे बढ़ रहे थे।

करीब सौ बालिका, किशोरी और नारियां अमराइयों के बीच एकत्र थीं। हमारे अचानक आविर्भाव से वे लोग चौंक गई। मुझे लगा, हममें से भी कई लोग घबड़ा गए थे।

'तुमलोग कौन हो ?' सती देवी ने स्वयं प्रश्न किया।

माखन बाबू आगे आए, 'हमलोग एक विशिष्ट अखबार के विशेष प्रतिनिधि हैं; लेकिन आप कौन हैं ?' उन्होंने एक बार गला साफ करके प्रश्न किया।

'मैं ? मैं सती देवी हूं। तुम बच्चे मुझे नहीं जानते। तुम्हारी माताएं जानती हैं।'

'हम जानते हैं।' थूक निगलते हुए माखन बाबू ने बनावटी स्वर में कहा, 'आप बूढ़े राजा की कॉन्क्युबाइन थीं।'

'क्या थीं ?'

'वो थीं...यानी...रखैल !'

हम सभी ने सिर झुका लिया। फिर अचानक देखा, शुभ्रवसना, श्वेत काय वृद्धा सती देवी हमारी ओर बढ़ रहीं हैं। माखन बाबू की ठुड्डी पर हथेली रखकर ममताभरी मुस्कान से कहा, 'मैंने सोचा था, आजकल के बच्चे मुझे नहीं पहचानेंगे ! मैं भी कहां बाहर निकलती हूं। लेकिन रानी ने मरते वक्त मेरा हाथ पकड़कर कहा था—बेटे को अब तुम्हारा ही सहारा है। तभी बेटे, गांव-गांव घूम रही हूं इस उमर में। बूढ़े राजा होते तो मुझे जान से मार डालते। उस निर्दयी की बात छोड़ो। राजा का बेटा बिल्कुल बछड़े जैसा शांत और निरीह है।'

सती देवी ने माखन बाबू के सिर पर हाथ फेरा और पुकारा—'अरे नृत्य।'

नृत्य नामक परिचारक आया। देवी ने कहा, 'मेरे बच्चे कितनी धूप में चलकर

आए हैं। उन्हें मिठाई खिलाओ।'

हम लोग दो-दो लड्डू खाकर सती देवी को नमस्कार करके लौटे। रास्ते में लंबी खामोशी के बाद सुजन दास ने लंबी सांस खींचते हुए कहा, 'मैं सोच रहा हूं, पाक्षिक अखबार के बदले मासिक साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित करना हमारे लिए आसान होगा।'

माखन बाबू के कुछ कहने से पहले सभी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया।

उस दिन शाम को पत्रिका के लिए मेरे सुझाए हुए नाम को भी सभी ने सहर्ष स्वीकारा, 'मासिक मल्लिका।'

भूतनी : एक विदाई

खासकर चांदनी रातों में निर्जन, उदास कोठी का आकर्षण होता था अप्रतिरोध्य। नदी के बांध पर से हम चुपचाप काफी देर तक उसी ओर देखते रहते। तेज हवा में कोठी के चारों ओर की ऊंची पीली घास और झाड़ियां जब लहरों-सी हिचकोले भरतीं, ऐसा लगता मानो वह परियों की कहानी का कोई जादुई महल है—बह रहा है मायावी समुद्र पर।

हालांकि बिलकुल एकान्त और उदास—पुनः कहना उचित होगा—कोठी का आकर्षण था अप्रतिरोध्य।

रात में हम आमतौर पर चुप रहते थे, लेकिन सुबह होते ही कोई एक-दूसरे से कहता और शाम तक हम सभी लड़के जान चुके होते हैं कि उसने उस लड़की को क्षण भर के लिए देख लिया है। सुनसान बरामदे की रेलिंग से टिकी वह युवती शायद चांद की ओर अथवा नदी के टेढ़े-मेढ़े रास्ते की ओर एकटक निहार रही थी। आंखों से बह रहे थे आंसू चांदनी में बूंद-बूंद सोने-जैसे।

यह कोई नई बात नहीं थी। फिर भी हर बार हम सिहर उठते थे। दूसरे दिन शाम को हमलोग फिर नदी के बांध पर एकत्र हुए थे।

उस लड़की को जरा-सा खुश करने के लिए जो भी चाहिए, हम सभी करने को तैयार थे, पर करने को कुछ था ही नहीं, यह भी हम जानते थे। हमारे इतने करीब होते हुए भी वह किसी सुदूर दुनिया की रहने वाली लगती थी—एकाकी।

इसके अलावा उसके प्रति अधिक लगाव को रोका जाना चाहिए, यह बात भी हम मान चुके थे। कभी उसके प्यार में पड़े हमारे काफी पहले के एक युवक की करुण कहानी हमें बार-बार सुननी पड़ी थी। नदी के बांध का जो हिस्सा कोठी के सबसे निकट था, वहां खड़ा था एक विशाल बरगद अपनी निस्संगता में विशालतर। वह युवक मौका मिलते ही घर से भागकर पेड़ पर चढ़कर बैठ जाता और जर्जरित खिड़की से होकर कोठी की ऊपरी मंजिल के भीतर घंटों ताकता रहता। ऊपरी मंजिल के कमरे में, तख्तपोश पर अकेली उदास युवती को बैठी देखा करता था—इसमें शक नहीं, किंतु क्या उसे युवती ने भी देखा था। कभी-कभी जरूर देखा होगा, वरना वह युवक क्यों एक बार नहीं, तीन-तीन बार, पेड़ से मूर्च्छित हो गिर पड़ता ? तुम

भूत-प्रेत को आंखों से देख सकते हो, जब तक तुममें हिम्मत होगी। भूत-प्रेत जब तुम्हारी आंखों में देखने लगे तो तुम्हारे लिए मूर्च्छित होने के अलावा और कोई चारा नहीं।

अंत में एक धूपभरी दुपहरी में, शुभाकांक्षियों की सारी चेतावनी भूलकर वह युवक कोठी में चला गया। आधी टूटी सीढ़ियां पार करके वह सीधे जा पहुंचा ऊपरी मंजिल पर और उसने झांककर देखा कोठी के अंदर।

युवती सो रही थी। कहा जाता है, सारी रात रो-रोकर बिताने के बाद वह दिन में सो जाया करती थी। नींद में भी उसकी सिसकियां बंद नहीं होती थीं।

काश ! उस युवक ने जरा अकल से काम लिया होता। दो पीढ़ियों के अंतराल में भी हम बालकगण उसके विवेकहीन कदम पर विचार करके उस पर तरस खाया करते थे। वैसे तो प्यार करना ही कितना ख़तरनाक है। तिस पर एक भूतनी के प्यार में पड़ना कितना खौफनाक होगा ! वह युवक, बेचारा, कैसे भूल गया यह सब !

तूफान की तरह उस रोज दौड़ गया था वह युवक उस सो रही भूतनी के पास और इससे पहले कि वह युवती कुछ समझे युवक ने उसे चूम लिया था।

युवती ने चीत्कार किया था। उसे पहले भी कई लोगों ने कई बार हंसते, रोते और मन-ही-मन बातें करते सुना है। किंतु उस बार के अलावा कभी किसी ने उसे चीत्कार करते नहीं सुना था। बात यह थी कि, दूसरे भूत-प्रेतों से उसके तौर-तरीके काफी अलग थे। अपना अधिकतर समय पूरी खामोशी में बिताना ही उसे अच्छा लगता था।

उस दिन के उस चीत्कार के बारे में शायद हमने न सुना होता, किंतु उसी वक्त नदी के बांध से होकर गुजर रहे थे हमारे इलाके के एक जनप्रिय घुमक्कड़ बैरागी जो श्मशान में समय बिताया करते थे और भूख लगने पर दो-तीन दिनों में एक बार हमारे गांव खाने की तलाश में आया करते थे। वे बैरागी एक तरह के शिक्षाविद् थे। गाय-भैंस आदि पशु और कौवे आदि विशेष पक्षियों तथा अशरीरियों की भाषा वे समझ जाते थे। इतना ही नहीं, दूसरों को जो ध्वनियां सुनाई नहीं देती थीं, वह सब भी वे सुन लेते थे। गांव के लोग जब शाम को उसी युवती की चर्चा कर रहे थे, उसी समय उसने कोठी से निकली उस अस्वाभाविक चीत्कार की बात उन्हें बतलाई थी।

दूसरे दिन सुबह गांव के लगभग बारह साहसी व्यक्तियों ने कोठी में प्रवेश किया। उन्होंने अपने-अपने सिर पर गंगाजल छिड़क लिया था और कमर में एक-एक लोहे की चीज छुपाकर ले गए थे। इससे भूतनी के उनके बहुत करीब आने की संभावना नहीं थी। लेकिन मैं दावे से कह सकता हूं कि हाथ में लाठी या उसी तरह का कोई अस्त्र लेकर जाने की बात उनमें से किसी ने नहीं सोची थी। उस युवती के प्रति अपमान होने जैसा कोई काम उनमें से कोई नहीं कर सकता।

उन्होंने देखा—सौ साल पुरानी रुई की सेज पर युवक पड़ा है, प्राणहीन।

उसने युवती को जो चूमा था, बैरागी की इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिल गया। युवक के मुंह से निकला था गाढ़ा खून। प्रेतात्मा को चूमने के एवज में इतना मूल्य चुकाए बिना वह जा भी कहां सकता था।

उस जिद्दी युवक के अभिसार की बीती कहानी भविष्य के लिए एक भयावह उदाहरण बनकर रह जरूर गई थी, पर भूतनी युवती के प्रति गांव के लोगों की सहानुभूति में कोई आंच नहीं आई थी। कोई विवेकहीन व्यक्ति यदि उससे प्यार करने लगे तो इसमें उस युवती का क्या दोष ? उसने तो किसी को प्रोत्साहित नहीं किया था। उसने तो उस बदनसीब युवक को नहीं मारा। हमारी दुनिया और उसकी दुनिया के बीच के नाजुक अंतराल को भला वह कैसे अस्वीकार कर सकती थी। जो सौ वर्ष उसने गांव के बाहर रहकर बिताए थे, उस दौरान उसका किसी को प्रलोभित करने अथवा किसी पर सवार हो जाने जैसा वाकया है क्या ? बिलकुल नहीं।

शायद सौ साल से कुछ ज्यादा होगा। फिरंगियों द्वारा व्यापक इलाके में नील की खेती करने के जमाने की बात है। बंग देश के भीतर ही नील की खेती सीमाबद्ध थी। परंतु कुछ अति उत्साही फिरंगियों ने हमारे सीमावर्ती राज्य की कुछ जमीन पर खेती करना शुरू कर दिया था। हमारी मिट्टी में उनका परीक्षण सफल नहीं हुआ। कुछ दिन बाद वे लोग वह जगह छोड़कर चले गए। अपने पीछे छोड़ गए यह सुंदर कोठी।

लोग कहते हैं—नील की खेती के पहले चरण में तीन फिरंगी युवक एक युवती को साथ लेकर उस नवनिर्मित कोठी में आए थे। वह युवती सुंदरवन इलाके से लाई गई थी—शायद भगाकर या खरीदकर। साहब पिता और आदिवासी जननी की अवैध कन्या। चेहरा और चरित्र में अपनी मातृ-संप्रदाय की जंगली आग सहित, दायित्वहीन पिता के सुंदर गठन की अनुपम समानता प्राप्त थी उस युवती को।

ऐसी अपूर्व अस्वाभाविक लड़की के लिए गांव की महिलाओं के साथ घुल-मिल जाने की संभावना कोसों दूर थी। और गोरी चमड़ी की युवती के साथ बात करने के लिए हमारी महिलाएं आगे-आगे होंगी, यह सवाल ही नहीं उठता था।

शुरू से ही वह युवती अपने मालिकों के विरुद्ध विद्रोह करती रही। इसके लिए उसे प्रचुर दंड भी मिलता था। उसकी भाग जाने की योजना कई बार विफल हो जाने पर वह पालतू बनने का अभिनय करने लगी और इसी तरह एक साल बीत गया।

उसके बाद, एक दिन तीनों फिरंगी युवकों ने बंग देश में स्थित अपने मुख्य केंद्र की ओर नाव में यात्रा शुरू की। उस समय गांव में चेचक फैली हुई थी। स्थानीय लोगों का संपर्क त्यागकर इन युवकों ने खुद ही संभाल लिए पतवार। हालांकि पतवार संभालने की कोई ख़ास जरूरत नहीं थी। स्रोत अनुकूल हो तो शहर पहुंचने

में सिर्फ एक दिन लगता था।

नाव सही-सलामत शहर पहुंच गई—शायद कुछ विलंब से दूसरे दिन सुबह। झुंड भर उत्तेजित कौवे नाव के ऊपर मंडरा रहे थे। नाव में कुछ जूठे बचे खाने के पास पड़े थे तीन ठंडे, कठिन शव।

उस युवती ने उनके लिए खाना बनाया था—रास्ते में खाने के लिए। कहने की आवश्यकता नहीं, उसी ने उसमें जहर मिलाया था।

उनसे छुटकारा पाने के लिए उससे यह कदम उठाने को किसी ने उकसाया था। उकसाने वाला उस कोठी का रखवाला था, कंपनी के साथ काफी अरसे से रहने वाला एक चतुर प्रौढ़। फिरंगी युवकों ने अपनी संपत्ति कहां रखी है, यह उस युवती को मालूम था। दोनों वह संपत्ति लेकर भाग जाएंगे, यह था आपसी समझौता। लेकिन संपत्ति हाथ लगते ही युवती को चाकू मारकर वह बदमाश भाग गया।

तीसरे दिन वहां फिरंगियों का एक समूह आया। वे लोग काफी गुस्से में लग रहे थे। गांव के पुरुषों को बायोनेट की नोंक पर हड़काकर युवती का दाह-संस्कार करवाया और फरार खूनी को ढूंढकर निकाल बाहर करने की उम्मीद में घर-घर तलाशी लेने लगे। घरों की पवित्रता लौटा लाने के लिए गांव वालों को पड़ोसी गांवों से प्रचुर गंगाजल एकत्र करना पड़ा था।

हालांकि एक शताब्दी पहले की यह घटना अब सिर्फ यादगार बनकर रह गई थी। उस यादगार में कोई ज्वाला नहीं थी। लोग केवल इतिहास के तौर पर इस घटना को याद करते थे। उन तीन फिरंगी युवकों अथवा उस युवती के उस निर्मम हत्यारे के बारे में उनमें कोई आग्रह नहीं था। उनके मन में स्थान पाया था केवल उस लड़की ने अर्थात् लड़की की प्रेतात्मा ने। हमने कभी सोचा भी नहीं था कि वह हममें से एक नहीं है हालांकि हम सचेत थे कि वह हम जैसी नहीं है। एक तो भूतनी, तिसपर उसके भीतर था सात समुद्र पार का खून। भूत बन जाने के बाद खून की विशेषता थी कि उसने अपने प्रति हमारा सम्मान बढ़ा दिया था, इसमें दो राय नहीं।

गांव में कोई ऐसा भोज नहीं होता था—जन्म, विवाह या मृत्यु जो भी कुछ क्यों न हो, जिसमें उस युवती को हिस्सा न मिलता हो। उसे परोसने का कार्यक्रम आमतौर पर होता था आधी रात में। मिट्टी के सकोरों में खाद्य पदार्थ व दीया लेकर कई युवक कोठी के अहाते में जाते थे हालांकि नेतृत्व करते थे कोई गणमान्य वयस्क व्यक्ति। अधिकतर वह गणमान्य व्यक्ति हुआ करते थे हमारे पाठशाला के हेडमास्टर साहब। हम गैर-वयस्क बालकों को केवल दूर से ही देखने की अनुमति मिलती थी। कोठी और बरगद के बीच की जगह पर सकोरा और दीया रखने के बाद हेडमास्टर कहा करते थे, 'बदनसीब युवती ! आज अमुक वजह से जो भोज हो रहा है, उससे तेरा हिस्सा यहां रख रहे हैं। इसे खाकर तू संतुष्ट होना और

अपनी क्षमता के मुताबिक गांव को विपदाओं से बचाती रहना। हमलोग तुझसे सिर्फ इतना ही चाहते हैं। हमने तुझे कभी परेशान करने के लिए अथवा कोठी से खदेड़ने के लिए कुछ नहीं किया, भला किया है ? नहीं। क्यों ? क्योंकि हम तुझे अपनी ही बेटी समझते हैं। भगवान तुझे शांति दे।'

उसके बाद वे लोग लौट आते थे। पीछे मुड़कर देखना मना था।

दूसरों को भी उसके बाद उस ओर देखने की मनाही थी। परंतु नदी के बांध से अपने प्रिय स्थान से छिप-छिपकर हम बड़ों को देखा करते थे। दीये की दपदपाती रोशनी में, हिलती परछांइयों में हमें लगता था मानो हम कोई रहस्यमय आकृति देख रहे हों। हम रोमांचित हो उठते थे।

हठात् दीया बुझ जाता था। 'हमें मालूम था कि ऐसा होगा। वह युवती नहीं चाहती है कि हम सब कुछ देखें।' हममें से कोई कह रहा था। फिर हम नदी के बांध से उतर आते थे।

'वह युवती हेडमास्टर की बात बहुत मानती है, है न ? किस तरह कहना चाहिए, मास्टर जी जानते हैं।' लौटते समय मास्टरजी का एक प्रिय छात्र यह कह रहा था।

'मास्टरजी की बात भला कौन नहीं मानता ?' प्रिय छात्र के प्रतिद्वंद्वी ने उत्तर दिया।

न जाने क्यों मुझे ऐसा लग रहा था कि हेडमास्टर जब उस युवती से गांव को विपदाओं से बचाने की बात कह रहे थे तब मन-ही-मन यह समझा रहे होंगे कि वह युवती खुद गांव के लिए कोई संकट खड़ा न कर दे। उनकी बात में मानों एक परोक्ष धमकी थी। वरना वे बेहिचक कैसे कह देते कि हमने उसे कभी परेशान करने या खदेड़ने की कोशिश नहीं की है ?

मुझे बेहद संकोच हो रहा था। वह युवती कितनी भली है ! उससे इस तरह की चतुराई भरी बातें कहना पर्याप्त सज्जनता का परिचायक कतई नहीं था।

गर्मियों के दिनों में दुपहरी को दिन भर सांय-सांय गरम हवा बहती थी। केवल हवा के शोर के अलावा उस वक्त और सारा कुछ खामोश रहता था। कोठी के लकड़ी के दरवाजे और खिड़कियां काफी समय से टूट-टाट चुके थे या अपहृत हो चुके थे, इसलिए कोठी के कोने-कोने में अपार उल्लास के साथ घुसकर हवा तरह-तरह की तेज आवाजें किया करती थीं।

मैं नहीं जानता, क्यों वे आवाजें मुझे लुभाती थीं। पिताजी का निर्देश था कि उन लंबी दुपहरियों में मुझे कुछ देर तक सो लेना चाहिए। लेकिन मैं अपनी खाट पर चुपचाप बैठा उन आवाजों को कान लगाकर सुना करता था।

कोठी में एक बार घुसने की भी बीच-बीच में तीव्र इच्छा हुआ करती थी। किसी और वजह से नहीं, सिर्फ उस अकेली युवती को एक बार चुप्पी भरा सान्निध्य

देने के लिए। किंतु सवाल यह उठता था, क्या वह मेरा अभिप्राय समझ भी पाएगी ? इसलिए मैं उस दिशा में अग्रसर नहीं होता था।

जिस दिन साहस करके खुद से कहा कि यह आकर्षण प्रेम में पड़ने के समान है, उस दिन कुछ अधिक सजग हो गया था। गांव के दूसरे लड़कों का मेरी तरह अनुभव करना असंभव था। भूतनी युवती उम्र में हमसे कम-से-कम सौ साल बड़ी होगी, यह बात किसी को याद नहीं रहती थी। एक मर्तबा भूत बन जाने पर फिर उम्र नहीं बढ़ती, यह बात किसी व्यक्ति ने हमें बताई थी।

जब हम मिडिल की आखिरी परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, उन्हीं दिनों आया एक सोचनीय समाचार—पी.डब्ल्यू.डी. के अधिकारियों ने उस कोठी को तोड़कर उस जमीन को किसी दूसरे काम में लेने का निर्णय लिया है। शाम को इकट्ठे होकर उस बारे में वयस्क लोगों की चर्चा के समय हम अपनी पढ़ाई भूलकर लुक-छिपकर उनकी बातें सुनेंगे, यह स्वाभाविक भी था। चर्चा इस तरह आगे बढ़ रही थी।

'हम सरकार को दरख़्वास्त भेजें तो क्या सरकार इस कोठी को इसी तरह नहीं छोड़ देगी ?'

'नहीं, यहां के जमींदार के दिवालिया होने के बाद यह कोठी सरकार की संपत्ति हो गई है। भूत-प्रेतों की सुविधा-असुविधा के प्रति ध्यान देना सरकारी विधान में नहीं है', जवाब दिया गांव के मुखिया ने। उनके वक्तव्य का अनुसरण किया लंबी चुप्पी, खांसी या जमुहाई लेने की आवाज ने।

एक छिपकली ने चिक्-चिक् किया। तुरंत कुछ लोगों ने कहा, 'सच है, सच है।'

'तो फिर वह युवती कहां जाएगी ? इतने अर्से से इस कोठी में रहती आई है। कभी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा उसने। बल्कि कहा जा सकता है कि गांव की रखवाली करके उसने हम पर ढेरों उपकार किए हैं।'

छिपकली ने दुबारा चिक्-चिक् किया। इस बार पहले से भी अधिक लोगों ने 'सच है, सच है', कहकर समर्थन किया।

चर्चा काफी देर तक चली। 'युवती के लिए कोई न कोई इंतजाम तो करना ही होगा', कहकर सबों ने अपनी राय दी। मगर उसे समर्पित करने के लिए अतिरिक्त मकान भला किसके पास था ? इसके अलावा उस पर कितना ही स्नेह क्यों न हो, आखिर है तो वह भूतनी ही। अपने परिवार के साथ उसे रखना किसी के लिए संभव नहीं होगा। लेकिन यदि कोई व्यवस्था न की गई तो स्वभावतः वह किसी-न-किसी के घर ही आश्रय लेगी।

किसी नतीजे तक पहुंचने में गांववालों को शायद आधी रात लग गई थी। तब तक हमारे मां-बाप हमें ढूंढकर घर लिवा गए थे।

गांववालों के अनुरोध पर कोठी तोड़ने का काम किसी दूर के कंट्रेक्टर ने

कुछ दिनों तक टाल दिया था। गांववालों ने किसी शुभ दिन का इंतजार किया था।

वह शुभ दिन आया। उस दिन सात कोस दूर से 'बड़े ओझा' नाम से मशहूर किसी मंत्रविद् को लाया गया था। दीर्घाकृति तथा पृथुलाकार ओझा महोदय के ललाट पर एक बड़ा लाल टीका शोभा दे रहा था। उसने किसी कठिन वस्तु के टुकड़ों से बनी एक माला पहन रखी थी। हमने सुना कि वह माला किसी अक्खड़ डायन की रीढ़ की हड्डियों से बनी है। वह ओझा उल्लू की तरह गंभीर था।

उस रोज सब कुछ काफी उदास-उदास लग रहा था। दिन भी था बड़ा मलिन, बादलों से घिरा हुआ और बीच-बीच में बारिश की फुहार।

गांव के प्रत्येक परिवार से कुछ-न-कुछ आया था—चावल, नारियल, केला, मिठाई या मालपुए—उस युवती के लिए चढ़ावा।

उस दिन कोठी का अहाता सबके लिए खुला था। इसलिए बूढ़े, बच्चे, जवान सभी कोठी के सामने इकट्ठे हुए थे। बहुतों के लिए, खासकर औरतों और बच्चों के लिए उस इलाके में प्रवेश करने का यह पहला अवसर था।

चबूतरे पर सारा चढ़ावा अर्धवृत्ताकार में सजाकर रखा गया था। वृत्तार्द्ध की ओर मुंह करके ओझा महोदय ने एक पोटली खोली। उसमें से निकली किसी मनुष्य के सिर की एक पूरी खोपड़ी। उसके अलावा उसने हाथ में ले रखी थी एक लंबी हड्डी। मंत्र बुदबुदाते हुए हड्डी को हवा में घुमाकर कोई रहस्यमय संख्या अथवा प्रतीक आंकने के बाद उसने हठात् भयावह आवाज में सवाल किया, 'कहां है, वह भूतनी ? मैं तीन बार हुक्म दे चुका। वह अब भी मेरे सामने नहीं आई। इतना साहस ?'

मुखिया ने विचिलत स्वर में कहा, 'देखिए ओझाजी, वह ऊपरी मंजिल में नींद में सो रही होगी। बेचारी रात भर सो नहीं पाती।'

'तो फिर मैं ही ऊपर जाकर उसके कान पकड़कर घसीटकर लाऊंगा। तब वह समझेगी कि बड़े ओझा को कोई रास्ते से नहीं उठा लाया है। इस ओझा की बात न मानने वाले भूत, प्रेत, डायन, यक्ष, ब्रह्मराक्षस इस मुल्क में नहीं हैं।'

इतना कहने के बाद उत्तेजित हो ओझाजी उस कोठी में अदृश्य हो गए।

हमने असहाय दृष्टि से एक-दूसरे की ओर देखा। मैं रुआंसा हो उठा। युवती के प्रति उसे वैसा रूखा व्यवहार नहीं करना चाहिए, यह बात गांव के किसी व्यक्ति ने ओझा से अब तक कही क्यों नहीं ?

ऊपरी मंजिल पर ओझा के वजनी पदचापों की आवाज हमें सुनाई दी। उसके बाद सुनाई दिया किसी दुर्बोध भाषा में उनका गर्जन। उस गर्जन और उसकी प्रतिध्वनि से उस ठंडी सुबह में भी हमारे बदन से पसीना बहने लगा।

उसके बाद वह ओझा उतर गया और हमारे सामने खड़ा हो गया एवं बड़ी निर्ममता से आदेश दिया, 'अरी ओ भूतनी, जितना चाहती है मन भरकर यह सब

खा ले। उसके बाद बगैर कोई बहाना बनाए सीधे-सीधे मैं जिस ओर कहूं, उस ओर चल।'

हम सब सांस थामे खड़े थे। हम पर एक बार व्यंग्य भरी निगाह डालने के बाद ओझा फिर जोर से चिल्लाया, 'क्या कहा, नहीं खाएगी ? मैं कहे देता हूं, तुझे अभी, तुरंत छोड़कर जाना होगा।'

गांव के मुखिया ने इस बार वाकई अनुनय भरी आवाज में कहा, 'ओझा जी, आप जरा इंतजार कर लें तो अच्छा होगा। यह युवती हमारा कहा कभी नहीं टालती। वह जरूर खाएगी। आप उससे कहिए कि ये थोड़ी-सी चीजें खाने के लिए हम सब उससे अनुरोध करते हैं। हमारे गांव की औरतें बड़ी श्रद्धा और स्नेह से ये उपहार लाई हैं।

लेकिन ओझा ने यह अनुरोध नहीं सुना, 'भूतनी अब जाने लगी है। उसे रास्ता दो।' वह चिल्लाया।

जनता तत्काल दुविधा में पड़ गई।

युवती ने कुछ खाया नहीं। बल्कि जाने को कहते ही वह जाने लगी। हमने सोचा था, न जाने उसने कितना अभिमान किया होगा। हमने खुद को बहुत तुच्छ समझा।

'चल बेटी, चल। ठीक है। मैं तेरे पीछे-पीछे चलता हूं।' ओझा हमारे बीच से आगे बढ़ने लगे—विदा दी गई अदृश्य आत्म को हड्डी के टुकड़े से रास्ता दिखाते हुए। एक बार पीछे मुड़कर बाएं हाथ से उसने अपने दुबले-पतले सहायक को कुछ संकेत किया। सहायक पीछे रुक गया, नरमुंड और सारी खाद्य-सामग्री समेटने के लिए।

हम सभी ओझा के पीछे-पीछे चलने लगे। गांव पीछे छूट गया था। लगभग एक मील।

'ठहर जा।' एक लंबे ताड़ के पेड़ के नीचे पहुंचकर ओझा ने उसे हुक्म दिया। उसके बाद उसने पहले की तरह दुर्बोध मंत्र बुदबुदाकर पेड़ पर हड्डी टुकटुकाने के साथ ही कई बार पेड़ की परिक्रमा की।

'आज से यह पेड़ ही तेरा डेरा है, समझी ?' ओझा ने पेड़ की ऊपरी छोर की ओर देखकर कहा।

और फिर हमारी ओर बड़े गर्व से देखकर इस बार उन्होंने एक बड़ी वीभत्स हंसी छोड़ते हुए कहा, 'भूतनी अब कभी यह पेड़ नहीं छोड़ सकती। मैंने उसे पेड़ से जड़ दिया है। अब जनता गांव की ओर चल पड़ी। हम बच्चे औरतों के साथ-साथ चल रहे थे। बड़े व्यक्ति हमारे आगे-आगे ओझा को घेरे जल्दी-जल्दी चल रहे थे।

सभी चुपचाप रास्ते पर चल रहे थे, अचानक कोई अपनी सिसकियां नहीं रोक सका। थोड़ी देर बाद देखा गया, सभी रो रहे हैं यथासंभव चुप्पी साधे।

जब हम गांव की सीमा पर पहुंचे, कोठी तोड़ने का काम शुरू हो चुका था। 'भीगे हुए हालत में तोड़ना आसान होता है', हमारे गांव के मुखिया से कंट्रैक्टर कह रहा था।

तीन-चार दिन लगातार बारिश के बाद आसमान साफ हो गया था। चांद अस्वाभाविक साफ दिखाई दिया। अन्य दिनों की चांदनी रातों को तरह उस रात भी हम गांव के बाहर कबड्डी खेलने इकट्ठे हुए।

कुछ ही देर बाद हमें लगा कि न जाने क्यों खेल जम नहीं रहा है। किसी एक ने कहा, 'यहां मिट्टी बहुत मुलायम है। क्यों न जरा दूर चलें—जहां जमीन ऊंची और सूखी हो ?

प्रस्ताव सुनते ही हम दौड़ पड़े। जल्द ही हम उस जगह जा पहुंचे, जहां ताड़ के पेड़ पर हमारी भूतनी युवती जड़ी गई थी। कुछ ही मिनटों में खेल खूब जम गया। देर रात तक खेलते रहे थे। हमारे अभिभावकों ने मान लिया था कि वह हमलोगों की परीक्षा के बाद का जोश है। लेकिन मैं जानता था, वास्तव में हम उस कैदी युवती को जरा सान्निध्य देकर आश्वस्त महसूस कर रहे थे।

गरमी की छुट्टियां खत्म होने तक हम प्रायः हर रोज शाम को वहां खेलने जाया करते थे।

छुट्टियां खत्म हुईं। उच्च-विद्यालय में भर्ती होने के बाद मैं शहर जाकर रहने लगा। इससे पहले मुझे शहरी जीवन का अनुभव नहीं था। अतः तरह-तरह के विस्मय और खुशियों में डूब गया। भूतनी युवती को भूल गया।

तीन महीने के बाद दुर्गापूजा की छुट्टियां हुईं। लंबा सफर बस से तय करके फिर कई कोस पैदल चलने के बाद हमारे गांव पहुंचा जाता है। खुशी से झूमता हुआ मैं रास्ते का अंतिम चरण पूरा कर रहा था। गांव के करीब पहुंचने पर हठात् आंखों के सामने आ गया वह ताड़ का पेड़। ठिठककर खड़ा रहा कुछ देर। बिजली गिरने के कारण यह पेड़ मर गया था। ऊपरी हिस्सा बिल्कुल जर्जर हो गया था। सूखा, हल्का शरीर क्रमशः चूर्ण-विचूर्ण होने लगा था।

अपनी आंखें पोंछकर मैं पुनः चल पड़ा।

गांव में पंद्रह दिनों तक रहने के दौरान हम बच्चों ने इस बार भूतनी के बारे में कोई बात नहीं की थी और उन दिनों बारिश का मौसम होने की वजह से कबड्डी खेलने के लिए बाहर मैदान में जाने का सवाल ही नहीं उठता था।

क्रमशः मैं कबड्डी खेलने की उम्र पार कर गया और मेरा गांव में जाना भी धीरे-धीरे कम होने लगा।

हमारे बाद जो बच्चे बढ़ रहे थे, वे हमसे कई मामलों में भिन्न थे। हमारी बचपन की सिहरन से बिलकुल अनभिज्ञ।

चेतावनी

सूर्योदय से बहुत पहले, खिड़की से अंतिम उज्ज्वल नक्षत्र की ओर देखते समय गौरी धाई के दिमाग में आई एक चौंकाने वाली बात, गांव की आबाल वृद्ध वनिता को अपने अस्तित्व के बारे में सचेत करने का अमोघ उपाय। एक चेतावनी।

लंबे अरसे से उसे लग रहा था, उसकी ओर लोगों का जितना ध्यान होना चाहिए था, जिस तरह के अभिवादन स्वीकारने की वह आदी हो चुकी थी, अब वह उसे नहीं मिल रहा है। इक्यानवे वर्ष की झुर्रीदार चमड़ी के अंदर उसका कंकाल मजबूत है, जबकि सारे दांत काल कवलित हो चुके हैं और बाल कास फूल की सफेदी से होड़ कर रहे हैं। अपना सारा काम वह खुद ही करने के काबिल है। लेकिन गांव के रिश्ते में नतनी लगने वाली अहल्या नाम की विधवा औरत किस प्रेरणा से उसे पर्याप्त सहायता पहुंचाती है, गौरी नानी को नहीं मालूम। हो सकता है श्रद्धा से हो, अथवा बुढ़िया की चल-संपत्ति, खासकर चांदी के चार-पांच गहने हथियाने की आशा से, शायद श्रद्धा और आशा के मिले-जुले भाव से। इसमें कोई असंगति नहीं है।

एक जमाने में बुढ़िया का एक सोने का हार भी था। जमींदार की बहू की विपज्जनक प्रसवकालीन हालत उसकी जादुई स्पर्श से आसानी से सुलझ जाने के कारण पुरस्कार-स्वरूप मिला था उसे वह हार। अभागे गोद लिए बच्चे को एक फौजदारी मुकदमे से बचाने के लिए उसे हार बेचना पड़ा।

गौरी नानी को अपना इतिहास जहां तक याद था, उसके अनुसार तीन साल की उम्र में उसकी शादी हुई थी, पांच साल की उम्र में वह पितृ-मातृहीन हो गई थी, सात साल की उम्र में वह विधवा हो गई थी। ससुराल जाने की नौबत ही नहीं आई। दादी मां धाई थी। उनसे धात्री विद्या सीख लेने के बाद, उस वक्त वह सोलह साल की थी, वे परलोक सिधार गईं। केवल दादी मां को छोड़कर शेष सारे चरित्र—पिता, माता, पति—उसकी सुनी हुई अनगिनत कहानियों के मामूली नाम और पात्र से अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे।

हां, एक जमाने में जन्म से पहले पितृहीन और जन्म के समय मातृहीन एक बच्चे की परवरिश करके उसने कुसंगत पीड़ित उस नौजवान को कालकोठरी

की सजा से तो बचा लिया था, पर काल की चंगुल से बचा नहीं पाया था। यह करीब पचास साल पहले की बात है।

गोद लिए बेटे की मौत के साथ-साथ समाज के साथ गौरी धाई का अंतिम रिश्ता टूटने के बाजय दृढ़ हुआ था। असंख्य नवजात शिशुओं के चेहरे पर वह देख रही थी उस रिश्ते की प्रतिलिपि। मातृगर्भ और भूमि के बीच उनके लिए वह योगसूत्र थी। उसकी दोनों हथेलियों पर उतर रहे थे ये बच्चे। उनके पहले रोने का उत्तर दे रही थी वह। उनके रोने में वह सुन रही थी एक मासूम, पर प्रचंड प्रत्यय की घोषणा। उनकी उस चरम असहायता की स्थिति में उन्हें धारण करने तथा सुरक्षा प्रदान करने के लिए तैयार धरित्री एवं मानवता के लिए उद्दिष्ट था वह प्रत्यय। उसी प्रकार, उसी पल अपने उत्तर के बीच गौरी धाई सुनती थी उन बच्चों के लिए विधाता का आश्वासन।

हर बार उत्तर देकर वह पुलकित हुई है। चंद घंटों के लिए अपने अंदर उस ध्वनि की स्मृति से अपने को गौरवान्वित कर रखा है। किसी और के लिए वह अनुभव महसूस करना संभव नहीं था।

एक के बाद एक उन पुलक-मद रोने और उनके उत्तर देने में उसकी यादें हरी हो जाती थीं।

कहां गए वे सारे ? जिस बच्चे के लिए जमींदार साहब से उसे सोने का हार मिला था, जमींदार खत्म हो जाने के बाद अब वह अफीम के सहारे जी रहा है। अब जो एम.एल.ए. बनकर सभा-समितियों में दहाड़ लगाते पाए जाते हैं, जिन्हें किसी एक व्यक्ति के साथ बात करते हुए देखकर लगता है जैसे सारा बाजार बोल रहा है, पैदा होने के बाद लंबे समय तक उनके चू-चपड़ न करने पर गौरी धाई को छोड़कर सबने उन्हें मरा हुआ या गूंगा समझ लिया था। यहां तक कि उस पर रोना-धोना मच गया था। बच्चे की पीड़ा शुरू होते ही उसे छूकर गौरी धाई एक प्रकार के सिहरन का अनुभव कर रही थी। उसी से वह शुभाशुभ का अंदाजा लगा लेती थी। वैसे तो वह उसका अपना, निहायत निजी अनुभव था।

पिछले पंद्रह सालों से अब वह धाई का काम नहीं कर रही। अहल्या ने उससे तालीम ली थी; पर गांव के पास एक बहुत बड़े अस्पताल के खुल जाने से उसकी जिम्मेदारी नर्सों ने अपने हाथों में ले ली थी।

क्रमशः गौरी धाई गांव की एक आम निवासी बन गई थी। लेकिन दस साल पहले, जिस दिन गांव के विशिष्ट व्यक्तियों के अनुरोध पर अपने मरने के बाद अपनी पैतृक जमीन का टुकड़ा उसने पास के विद्यालय के नाम करने की सहमति दे दी, उस दिन किसी दूसरी वजह से आयोजित एकसभा में उसे बधाई दी गई थी। मारे खुशी से उस रात गौरी धाई सो नहीं पाई थी।

आगे चलकर एक उनींदी रात के अंतिम प्रहर में आम जनता से उसे मिला

था उदासीन भाव, बम से तोड़ डालने जैसा एक स्टार्टजर, सबको चौंका देने वाली एक चेतावनी।

सूरज उगने पर गौरी अपनी लाठी टेकती हुई निकल पड़ी, पहले साहूकार बन बिहारी साहू से मुलाकात हो गई। वे किसी सोच में खोए हुए चले जा रहे थे। बुढ़िया के रुक जाने से वे भी रुक गए और बड़े प्यार से पूछा, 'क्यों नानी, कैसी हो ?'

बन बिहारी ! वह नाम भी गौरी धाई का दिया हुआ है। दुलारभरी नजरों से बुढ़िया उन्हें देखती रही। उस दिन का नन्हा-सा बच्चा बन बिहारी, आज पूरी तरह गंजा हो गया है। लोग कहते हैं बड़ा सूदखोर है वह। बुढ़िया को वह सब सुनना अच्छा नहीं लगता। उसके जन्माए हुए किसी भी बच्चे के बारे में नहीं।

तो फिर पहला बम बन बिहारी के सामने ही गिराना होगा।

'बेटे, और नहीं रहूंगी। तुमलोगों को छोड़कर अब उस पार चली जाऊंगी !'

गौरी धाई ने इंतजार किया। साहू का लड़का चौंककर इस पर आवाज उठाएगा, नहीं नानी, तुम ऐसा नहीं कर सकती। हमें छोड़कर नहीं जा सकती। सूर्य, चंद्र, हवा, पानी, पेड़, पौधों की तरह तुम गौरी नानी, हमारी धरती की रखवाली करने वाली हो !'

लेकिन साहूकार ने सिर्फ सिर हिला दिया। साथ ही शून्य की ओर हाथ उठाकर मानो ईश्वर की इच्छा अथवा वर्षा होने की संभावना की ओर संकेत करके चलते बने।

गौरी धाई को पहले लाठी और फिर पैर उठाकर चलने में करीब तीन मिनट लग गए थे।

सड़क की मोड़ के उस ओर से सुनाई दे रही थी एक परिचित आवाज, ज्वार की भांति आ रही थी : 'अरे भाई ! मेरे यानी हमारे बुलाने से मंत्री ही क्यों मुख्यमंत्री तक दौड़े से चले आएंगे ! लेकिन, क्या उसके लिए तुमलोग तैयार हो ? किसी मानपत्र पर मेरा विश्वास नहीं है। मान-पत्र क्यों ? हमारी जो मांग है...क्यों गौरी नानी, कैसी हो ?...हमारी जो मांग है, हम उनके सामने रखेंगे। गणतंत्र जो है। हम...गौरी नानी ! अच्छी तो हो न ...हां, अगर मंत्री को ही लाना हो...'

एम.एल.ए. बाइधर मिर्द्धा को लाओ। साथ में आठ-दस मोटे, पतले, लंबे, ठिगने, गोरे आदमी। मानव-जाति के नमूने लेकर वे घूमते रहते हैं।

'अगर मंत्री को लाना है...क्यों गौरी नानी....यही चाहते हो तो कोई बाहना चाहिए...गौरी नानी तो एकदम जवान की तरह फिटफाट दिखने लगी है !...हां तो कोई बहाना चाहिए ! मैं...'

'ना रे पगले, मैं जवान कैसे बनूंगी ! अब तो मरने की तैयारी में लगी हूं। ना बेटे, मजाक नहीं है। इक्यानवे पार कर चुकी हूं और जीने का मोह नहीं है... ।'

'हे हे...नानी, क्या मंत्री के आने का बहाना जुटाने के लिए मरोगी ? तुम्हारा मरना काफी नहीं होगा। हां...तो बात यह है...अच्छा नानी, फिर मिलेंगे...हां, तुम्हारे क्लब का नाटक कहां तक तैयार हुआ है ? अगर मंत्री को बुलाना ही चाहते हो...'

एम.एल.ए. चले गए।

बुढ़िया को पहली बार लगा मानो वह चलने की शक्ति खो चुकी है। लाठी का सहारा लेने की भी शक्ति नहीं है।

पास ही जमींदार का मकान है। वह बड़ी कठिनाई से जाकर चबूतरे पर बैठ गई।

पुराने जमींदार आराम कुर्सी पर बैठे थे। उनके पास बचा एक अदद नौकर उनके लिए चिलम भर रहा था।

'कौन है ?' जमींदार ने बुढ़िया की ओर देखे बिना ही पूछा।

'कोई नहीं है।' नौकर ने कहा।

'मैं गौरी हूं बेटे, गौरी नानी, गौरी धाई।' बुढ़िया ने नौकर की बात में संशोधन किया और कहा, 'और मेरे पास न बल है न समय। अब तुमलोगों को छोड़कर जा रही हूं।'

'कौन ? क्या कह रहा है ?' जमींदार ने नौकर से पूछा।

'गौरी धाई, मालिक। कहती है मरेगी।'

'गौरी धाई ? मैंने तो सोचा था कि वह कब की मर चुकी है।'

जमींदार साहब के अफीम के नशे में धुत्त रहने के बारे में बुढ़िया को याद नहीं रहा। अगर होता भी तो कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता।

कब तक बुढ़िया वहीं स्तब्ध होकर बैठी रही और कब उठकर चली गई, उस बारे में ध्यान रखना किसी ने उचित नहीं समझा।

दूसरे दिन सुबह जाकर अहल्या ने पुकारा, 'नानी !'

पांच मिनट बाद अहल्या धीरे-धीरे रोने लगी और अपेक्षाकृत आवाज ऊंची करके पड़ोसी से बोली, 'नानी रात को किसी समय उस लोक चली गई !'

वामन

'किसी घटना को किंवदंती के स्तर तक पहुंचने में कम से कम सौ साल लग जाते हैं। है ना ?' ध्रुव मास्टर जी ने कहा। 'लेकिन नदी की सतह बदल गई उस घटना के दस वर्षों के अंदर। समाधि समेत सारा बाग नदी की गर्भ में समा गया। समाधि होती तो लोग उसकी ओर इशारा करके आते-जाते, प्रणाम करके उस घटना की याद किया करते !'

ध्रुव मास्टर के आगे के वर्णन का सारांश इस प्रकार है :

जमींदार बली महापात्र ने इस नए तालुका को अभी-अभी खरीदा था। तालुका के प्रमुख गांव मणिपटना से थोड़ी दूर नदी के किनारे तक एक बहुत बड़ा बाग था। वहीं पर उन्होंने कचहरी बनवाई और तालुका की जिम्मेवारी में रहने वाले अपने नायब के लिए मकान भी बनवाया।

जहां कचहरी और नायब का निवास हो, वहां दो-चार और घर-बार व मकानों का बन जाना अति स्वभाविक था।

आजादी हासिल करने में ज्यादा नहीं, तो दस-बारह साल बाकी थे। राजेंद्रासन जैसी जमींदार की पदवी एक दिन समाप्त हो जाएगी, यह विचार किसी पागल कवि की कल्पना को भी छू नहीं पाई थी। बली महापात्र बड़े जमींदार नहीं थे, पर बनने की ख्वाहिश रखते थे, और दुर्बल पर अत्याचार, अनाचार को ही अपनी अभिलाषा-पूर्ति में साधक समझते थे।

मणिपटना गांव में एक बुढ़िया रहती थी। उस बाग से सटी हुई बुढ़िया की एक टुकड़ी जमीन थी। बुढ़िया से लगान वसूल करने के बदले उस पर ढेर सारी रकम बाकी होने का झूठा हिसाब दिखाकर जमींदार ने उसकी जमीन हड़प ली। बुढ़िया ने गला फाड़-फाड़कर जमींदार को कोसा और बदले में जमींदार की ओर से मार खाकर बिस्तर पकड़ ली, तो फिर उठ नहीं सकी।

बुढ़िया का उत्तराधिकारी एक अद्भुत आदमी था। तीन फीट ऊंचा एक अधेड़ उम्र का वामन। 'सुंदर' नाम के उस संतान को खिला-पिलाकर खुश रखना ही बुढ़िया का एकमात्र लक्ष्य था। सुंदर की थोड़ी-सी पतली दाढ़ी थी, जिसे सहलाने में उसे परम संतोष मिलता था। क्योंकि इसके अलावा कोई और काम करते हुए किसी

ने उसे देखा नहीं था। उसी तरह दाढ़ी सहलाते हुए वह बीच-बीच में गांव के एक छोर से दूसरे छोर तक बड़ी तेजी से चल पड़ता था। 'कहां जा रहे हो' के सवाल के जवाब में वह जैसी गंभीरता से 'काम है' कहता था, उसे वास्तव में कोई कार्यव्यस्त ज्ञानी या दार्शनिक व्यक्ति सुन ले तो अपनी कार्यव्यस्तता की तर्कसंगतता पर सोचने लग जाता अथवा वैराग्य भाव से पीड़ित हो जाता। अपनी मां की मौत के बाद सुंदर उस गांव की आम संपत्ति बन गया। किसी के घर कोई दावत हो तो सुंदर को वहीं ले जाया जाता। विभिन्न सवालों पर उसके असंलग्न उत्तर अतिथियों को जिस तरह आमोदित करते थे, उसकी दाढ़ी को छू लेने पर उसके गुस्साने के तरीके से भी सबका मनोरंजन होता था।

बली महापात्र के सौजन्य से उस इलाके में एक विशेष घटना घटी। कचहरी के पासवाले बाग में एक सर्कस पार्टी ने डेरा डाला। आसपास के साप्ताहिक हाटों में डुगडुगी बजाकर ऐलान किया गया और सैंकड़ों नर-नारी आकर खेल देखकर चमत्कृत हुए।

सर्कस मालिक की नजर वामन पर पड़ी। उन्हें लाभ हुआ कि यदि वह उन्हें मिल जाए तो सर्कस की गरिमा बढ़ जाती। उन्होंने जमींदार से अपने मन की बात कही। कहते हैं, उस बारे में उन्हें ढाई सौ रुपए भी दिए।

सुंदर पकड़ा गया।

सर्कस के परिवेश में पहले कई घंटे उसने बिना किसी आपत्ति के बिताए। लेकिन जब सर्कस के कार्यकर्त्ताओं ने उसकी दाढ़ी साफ करवा दी, उसने चीख-चीख कर उसका विरोध किया। विशाल तंबू के भीतर झांककर देखने वाले कई ग्रामवासियों की बातों (जिसके अफवाह होने की संभावना नहीं थी) के अनुसार उसकी बड़ी पिटाई होती थी। दाढ़ी-हीन उस अबाध्य को फिर सर्कस में उतरने के लिए तालीम देने का क्रम शुरू हुआ और मार की मात्रा भी बढ़ा दी गई। क्योंकि अधेड़ उम्र तक स्नेह और स्वच्छंदता में पले सुंदर कोई भी आदेश मानने को तैयार नहीं था।

सर्कस दल के वहां से विदा लेने से पहले हताश मालिक ने जमींदार को खबर दी कि सुंदर भाग गया है। ढुंढाई शुरू हुई। जमींदार के लोगों के साथ सर्कस वाले भी घर-घर घुसने लगे। कई घरों के मालिकों ने अज्ञात कुलशील सर्कस वालों को अपने रसोई घर तक में घुसते देखकर अपमानित अनुभव किया, पर जमींदार की कार्रवाई पर मुंह खोलने की हिम्मत उनमें नहीं थी। कम से कम मणिपटना जैसे गांव में इसके लिए अनुकूल अवसर नहीं था।

उस चौंकाने वाली परिस्थिति के बीच सर्कस दल को वहीं से विदा लेनी पड़ी। लेकिन जिद्दी जमींदार ने वामन की खोज जारी रखी। मानो वामन का भाग जाना उनकी पराजय का द्योतक हो।

रात के प्रथम प्रहर में उस रास्ते एक साधु जा रहे थे। दो-तीन चेलों से घिरे

उन साधु को प्रणाम करने के आदी थे गांव वाले। जमींदार के अंदर लेकिन भक्ति जैसा कोई आवेग किसी ने कभी नहीं देखा था। फिर भी साधु से भेंट हो जाने पर उन्होंने भी एक यंत्रवत् नमस्ते ठोंक दिया। 'क्या बात है बच्चे !' कहकर साधु ने प्रश्न किया। कहीं अपनी अलौकिक शक्ति के बल पर वामन का पता बता दें, इसी उम्मीद से जमींदार ने कहा, 'महात्मा जी ! हम एक वामन को ढूंढ नहीं पा रहे हैं।'

'कैसे ढूंढ पाओगे ? करोड़ों वामनों की भीड़ में एक को ढूंढ पाना क्या संभव है ?' साधु ने अपनी स्वच्छंद गति को रोके बिना ही अपना यह मंतव्य जड़ दिया।

इस प्रकार के मंतव्य ने जमींदार के मन में झुंझलाहट के अलावा शायद कोई और भाव नहीं जगाया। लेकिन ध्रुव मास्टर की नजरों में अचानक एक बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उस इलाके में तथा इलाके के बाहर भी बच्चे से बूढ़े तक सभी उन्हें वामन ही वामन नजर आए। नहीं, यह उनकी धारणा मात्र नहीं थी, स्थूल-दृष्टि में भी वही दिखाई दे रहा था। वे कहीं पागल तो नहीं हो गए हैं ? इसी संदेह ने उन्हें चिंतित कर दिया। तभी किसी से कुछ कहे बगैर वे चुपचाप घर जाकर सो गए। अगले एक हफ्ते तक उनकी नजरों में वह दृश्य छाया रहा।

ख़ैर, जो भी हो, उस दिन आधी रात को कचहरी के पास हुए कोलाहल से उनकी नींद टूट गई। उनका मकान गांव के आखिरी छोर में होने के कारण जमींदार की कचहरी से उसकी दूरी ज्यादा नहीं थी। चांदनी रात थी। वे कचहरी की तरफ दौड़े। जमींदार अपने नायब, मुगाश्ता और नौकर-चाकर के लिए चिल्ला रहे थे। बात यह थी कि जिस समय वामन को घर-घर में ढूंढा जा रहा था, उस समय वह खुद जमींदार के पलंग के नीचे सो रहा था। आधी रात को उसके खर्राटे से जमींदार की और जमींदार के खर्राटे से उसकी नींद टूट गई। बिस्तर से उठकर पलंग के नीचे दीए की रोशनी में देखने पर वामन खिड़की से कूदकर भाग निकला।

ध्रुव मास्टर के पहुंचने के समय सभी इधर-उधर दौड़ रहे थे। जमींदार खुद एक आठ-दस फीट ऊंचे टीले पर चढ़ गए थे। 'वो देखो, वामन भाग रहा है !' कहते हुए वे दौड़े। उनकी आवाज सुनकर इधर-उधर बिखरे हुए उनके नौकर-चाकर और नजदीक के लोगों के दौड़कर आने तक जमींदार काफी दूर निकल चुके थे। लोग उन्हें तो देख रहे थे, पर वामन को नहीं।

अचानक जमींदार गिर पड़े। दरअसल, वे चित्त गिर पड़े। और अचेत हो गए। एक चर्बीदार जमींदार आधी रात के समय जवान सांड़-सा दौड़ेगा तो अवश्य गिरेगा। इस पर कर्त्तव्य की दृष्टि से हाय ! हाय ! करने वाले भी विस्मित नहीं हुए। लेकिन होश में आने पर प्रलाप करते हुए जमींदार ने जो तथ्य प्रकट किया, वह सचमुच विस्मयकारी था।

उन्हें उठाकर बिस्तर पर लिटा देने पर भी, घर से उनकी पत्नियों और संतानों

के आ पहुंचने के बावजूद तीन दिनों तक अत्यंत भयभीत होकर टीले के उस पार सड़क की तरफ देखकर एक ही मुद्रा में वे विह्वल भक्ति करते रहे। जब वे उससे थक गए, सदा के लिए मौन हो गए।

उनके कहने का सार मर्म था कि जितना ही वे वामन के नजदीक पहुंचे, वामन उतना ही वृहदाकार होने लगा। वे निश्चिंत थे कि वह उनका भ्रम नहीं था। क्रमशः हाथी की भांति वृहत होकर उस अदभुत् वामन ने जब घूमकर उन्हें देखा तो वे बेहोश हो गए।

जमींदार की मौत के बाद कई वर्षों तक वामन जीता रहा और उसने दाढ़ी भी बढ़ाई। सभी उसकी काफी इज्जत करते थे। कुछ अस्वस्थ होकर मंदिर के प्रांगण में अपनी दाढ़ी सहलाते हुए हंसता हुआ उसने प्राण त्याग दिए। कचहरी के पास के बगीचे में गांव वालों ने उन्हें समाधि दी और 'वामन देवता' की समाधि के रूप में उस साल की भयंकर बाढ़ और नदी की शय्या-परिवर्तन होने तक उसमें रोज चार फूल चढ़ाते थे।

अतार्किक

चौंक उठे सुब्रत बाबू। बल्कि आतंकित हुए। पैंतालीस वर्षो में जितनी भी बार उन्होंने 'काकलि' नाम सुना है, उन्हें ऐसा ही लगा है।

'काकलि ? इतनी दूर जाने को कह रहे हैं। जाड़े का मौसम है। बैठक के बाद फिर से राजधानी लौटना है। वरना दूसरे दिन मंत्रिमंडल की बैठक में उपस्थित नहीं हो सकूंगा। मुख्यमंत्री बुरा मानेंगे।'

राज्य के दूर सरहद पर काकलि एक साधारण-सा कसबा है। रात बिताने के लिए ढंग का बंगला तक नहीं होगा वहां। सुब्रत बाबू आराम की जिंदगी के आदी हो चुके हैं। पैंसठ साल की उम्र के करीब पैंतालीस वर्ष तक निरंतर देश-सेवा करने के बाद यह आदत अवश्य ही क्षम्य है। वे तो अन्य मंत्रियों की तरह भ्रष्ट नहीं है। बिस्तर, कंबल और गीजर युक्त बाथरूम के प्रति उनका लगाव अथवा सुबह-सुबह बाहर प्रतीक्षा करने वाले कृपा-प्रार्थियों के मृदु कोलाहल मानो पक्षियों के कलरव की भांति स्वाभाविक है। लेकिन उनके लिए बिस्तर पर पलथी मारकर बैठकर लगातार दो-तीन कप चाय पीने जैसे विलास को त्वरित करना अनावश्यक है। इस तरह के दृष्टिकोण का पोषण करना कोई अपराध नहीं है।

लेकिन सारी व्यक्तिगत कमजोरी प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। मुख्यमंत्री बुरा मानेंगे—इस दुहाई का मतलब हर कोई जानता था। क्योंकि सत्ता के लिए हुई दौड़ में वे ही मुख्यमंत्री के एकमात्र प्रतिद्वंद्वी थे। दरअसल, किसी भी समय विधान-सभा में उनका दल वर्तमान के मुख्यमंत्री को दलपति के पद से हटाकर उन्हें अभिषिक्त कर सकता है। अखबारों ने इस समाचार को रोज नए-नए अफवाहों से मांजकर चमका रखा है। दूसरे, इस तर्क को रखकर श्रोताओं के चेहरों पर छटपट संक्षिप्त नजर डालते ही समझ में आ जाएगा कि वह तुम्हारा कितना अनुगत है अथवा अनुगत होने का प्रमाण देने को कितना इच्छुक है !

सुब्रत बाबू जिस प्रकार की प्रतिक्रिया चाहते थे, वही हो रहा था। आज भी उसमें कोई फेरबदल नहीं हुआ। काकलि से आए विशिष्ट व्यक्तियों ने एक-दूसरे को देखा, मुस्कुराए। मानो उनके इस प्रकार के भावगत आदान-प्रदान उनसे काफी ऊंचे स्तर के चिंतन-राज्य में विचरण करने वाले सुब्रत बाबू की ओर इंगित करने

की संभावना नहीं है। इसी विश्वास के साथ उनके मुख्यपात्र ने कहा, 'हां जी, आपको मुख्यमंत्री अगर गलत समझें तो आपको क्या नुकसान होगा। राज्यभर के लोग तो आपको सही मान रहे हैं। वैसे तो आज वे मुख्यमंत्री की गद्दी पर जमे हुए हैं। कौन कहेगा कल को हे हे...खैर..जो भी हो, आपको हम इतनी रात गए इतनी दूर तक न तो जाने देंगे और न ही काकलि में उस पुराने पी.डब्ल्यू.डी. के डाकबंगले में रहने देंगे !'

सुब्रत ने जिज्ञासाभरी दृष्टि से देखा।

'आप ठहरेंगे चौधरी अतिथि-भवन में। वैसे यह कोई भवन नहीं है, एक कोठरी भर है। लेकिन सुंदर और साफ-सुथरी है। चौधरी के निधन होने के बाद उनकी पत्नी ने उसके रख-रखाव में कोई अवहेलना नहीं की।' आगंतुक दल के मुख्यपात्र ने कहा।

'महीयसी महिला हैं, साहब ! अस्पताल के उद्घाटन के लिए मुख्यमंत्री को निमंत्रण दें या आपको, इस सवाल के उठते ही उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के कह दिया कि आप ही को बुलाया जाए। यह अस्पताल उन्हीं की देन है। उनके इस अभिलाषा का आप सम्मान करें तो तमाम काकलिवासी को प्रसन्नता होगी। मुख्यपात्र के सहयोगी ने कहा।

'होंगे। अत्यंत आनंदित होंगे।' सुब्रत बाबू को बुलाने का प्रस्ताव उन्हीं के हृदय से स्फुरित होने की धारणा देने का उनका अभिप्राय सहयोगी के इस अनचाहे विवरण से नष्ट हो जाने के कारण मुख्यपात्र की आवाज कुछ अस्वाभाविक हो उठी।

'काकलि के निवासियों को कभी आपके भाषण सुनने का सौभाग्य नहीं मिला है।' अभिमान-पीड़ित स्वर में कहा प्रतिनिधि-दल के दो अन्य सदस्यों ने।

थोड़ी देर और वार्तालाप के पश्चात् सुब्रत बाबू ने निमंत्रण स्वीकार किया। प्रतिनिधि दल ने विदा ली।

काकलि दौरे के प्रस्ताव पर सहमत होने के पीछे था अपने अंदर धीरे-धीरे घनीभूत होता एक संकल्प—खुद को अनुशासित करने का एक संकल्प। काकलि के नाम से वे किसलिए यों जिंदगीभर आतंकित होते रहेंगे ? कितनी तुच्छ घटना थी वह, जो इस आतंक की वजह है, न जाने कहां खो चुका होगा घटना से संबंधित वह एकमात्र चरित्र ? जिंदगी में उन्होंने कितने ही साहसिक कदम उठाए हैं; कितनी विपदाएं झेली हैं और न जाने कितने संकट टाल चुके हैं। एक काल्पनिक, अयथार्थ, आकरण भय के सामने भला वे क्यों हार मानकर उसका पालन करते रहेंगे।

उन्होंने दीर्घ राजनीतिक जीवन में कई बार दौरे किए हैं। लेकिन कभी भी काकलि में नहीं उतरे, भाषण तो दूर की बात है। सालों के फासले में वे कार से काकलि होकर गुजरे हैं। लेकिन काकलि से गुजरते समय कभी भी एक अद्भुत दुःख और लज्जा की अनुभूति से उन्हें मुक्ति नहीं मिली। काकलि के इलाके में

प्रवेश करते ही उन्हें लगता था मानो किसी ने झट उनका वस्त्रहरण कर लिया। काकलि पार करके तीन-चार मील के पत्थर के बाद उनके मन में कपड़े लौट पाने का अहसास होता था।

इस बार वे काकलि जरूर जाएंगे। वहां ठहरेंगे भी। आतंकरूपी-भूत का कान पकड़कर उसे वे अपने अंदर से निकाल बाहर करेंगे।

जब लगभग एक दर्जन गाड़ियों के बीच उनकी कार काकलि पहुंची, अपराह्न हो चुका था। न्हीं. इस जगह का जितना परिवर्तन हुआ है, उसे व्यापक नहीं कहा जा सकता। हर शहर-बाजार की भांति यहां पर भी नई इमारतें बनी हैं। फिर भी चौधरी की पुरानी इमारत का सौंदर्य घटा नहीं है।

कार्यक्रम प्रारंभ होने से पहले पुराने पी.डब्ल्यू.डी. के बंगले में ही चायपान के लिए जाना पड़ा। वहां पर स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति आए हुए थे। उनके साथ गपशप करते हुए जिसका जितना प्राप्य है उसे उसी मात्रा में हंसी और स्पर्श वितरण करते हुए वे अपने अंदर की लड़ाई जारी रखे हुए थे।

हाल ही में बने अस्पताल के उद्घाटन के बाद सामने के चंद्रातप से सुशोभित मंडप पर सभा आयोजित हुई। अस्पताल की प्रतिष्ठात्री चौधराइन को बधाई दी गई। सुब्रत बाबू के भाषण की भूरिशः प्रशंसा हुई। स्थानीय नेतृत्व के बीच चाय का एक और दौर चलने के पश्चात् उन्हें चौधरी की कोठी पर पहुंचा दिया गया।

वे थके हुए थे। रात्रि भोजन के बाद जिस तरह वे शीघ्र ही विश्राम कर सकेंगे, उसकी व्यवस्था की गई।

लेकिन चारों ओर सुनसान हो जाने के बाद वे बाहर बरामदे में निकल आए। ज्योत्स्ना-प्लावित परिवेश देखने के बाद नजर घुमाकर अनुमान लगाने की कोशिश कर रहे थे कि पैंतालीस साल पहले वे किस मकान में ठहरे थे पंद्रह दिनों के लिए ? आज की-सी एक रात को वे किसी झाड़ी के पीछे छिपे हुए थे ? दीर्घ तीन घंटे तक ?

चौधरी के मुनीम या एक-दो क्लर्कों के लिए बने वे छोटे-छोटे कमरे अब नहीं हैं। झाड़ियों से भरी बंजर जमीन पर आज ढेरों कमरे बन गए हैं।

कहां गई चौधरी की वह सुंदर कन्या ? ब्याही गई होगी किसी जमींदार के घर। उन सारे तथ्यों को लेकर किसी से कोई प्रश्न करने का लोभ उन्होंने सदा संवरण किया है। अपनी घटना भरी जिंदगी में उन पंद्रह दिनों के अस्तित्व के बारे में किसी को कोई आभास तक देने को वे तैयार न थे।

गरीब घराने के सुब्रत ने उन दिनों यहां नए खुले हाईस्कूल में सहकारी शिक्षक के रूप में ज्वाइन किया था। चौधरी के आसरे ही वे यहां रह रहे थे।

स्कूल में सिर्फ नवीं तक कक्षाएं खुलीं थीं। उसी कक्षा में चौधरी की सोलह साल की कन्या पढ़ रही थी। वह जितनी लाड़-प्यार में पली थी, उतनी ही सुंदर

और सरल भी थी। 'सर, यह गणित समझा दीजिएगा ?' एक दिन शाम को उसने बड़ी विनती की। विमुग्ध सुब्रत ने गणित का सवाल सुलझाना शुरू किया। लेकिन पांच मिनट की जगह उन्होंने एक घंटा लिया।

'सर, आपको बेर अच्छा लगता है ?' दूसरे दिन इधर-उधर झांकती हुई लड़की ने पूछा और सुब्रत की जेब में मुट्ठी भर बेर डालकर चली गई।

उसके दो दिन बाद की बात है। न जाने क्यों चौधरी की कोठी के अंदर उस शाम बड़ा सुनसान लग रहा था। दालान के उस ओर के एक कमरे मे लालटेन के सहारे वह लड़की पढ़ रही थी। आसपास कोई नहीं था। बाहर वाले कमरों में रहने वाले कर्मचारियों या अतिथियों को बिना आवाज दिए आंगन पार करके उन कमरों में जाना स्वाभाविक नहीं था। लेकिन धीमी रोशनी में पढ़ने से मुंह खिड़की से होकर दिखाई दे रहा था दिगंत के ऐश्वर्य की भांति। दुर्निवार आकर्षण से सुब्रत अंदर घुस गए। धमनियों में बाढ़-सी आ गई। उनका हृदय मानो एक बाढ़-प्लावित द्वीप में परिणत हो गया। लबालब पानी में जैसे डुबकी लगा रहे हों।

झिझकते हुए कमरे में घुसे। लेकिन उसके बाद ? पहले से कोई कार्यक्रम नहीं था। जो लड़की उनकी जेब में बेर ठूंस सकती है, उसकी आंखों पर हाथ रखकर उसे चौंका देने की निरीह स्वाधीनता तो उन्हें थी ही।

उन्होंने वही किया। सोचा था कि लड़की खिलखिला कर हंस उठेगी। हाथों को टटोलती हुए पूछेगी—'कौन है ?'

पर हाय ! लड़की चिल्ला पड़ी। घर पर कोई अभिभावक नहीं था। पिछले दरवाजे से नौकर-चाकरों के दौड़कर आने की आहट हुई। सुब्रत बेतहाशा दौड़ने लगे। दरवाजे की सिटकिनी में फंस गई उनकी धोती। उसे निकाल नहीं सके। उन्हें धोती छोड़कर भागना पड़ा।

अंधेरे में, एक झाड़ी की आड़ में जाड़े में ठिठुरते हुए उन्हें काफी देर तक रहना पड़ा। उन्होंने सोचा था कि खेतों से होकर दौड़ेंगे। हो सके तो कहीं खो जाएंगे। लेकिन एक तो बंजर जमीन की ठंड ने पैरों से होकर उनके सारे शरीर को जड़ बना दिया था और फिर वे लगभग विवस्त्र थे।

आधी रात को वे अपने कमरे में लौटे थे। रातभर आतंकित रहे। मानो सूर्योदय होते ही उनका सिर काट दिया जाएगा।

सिर कटा तो नहीं, पर ऊपर उठाना मुश्किल हो गया।

उन्होंने काकलि छोड़ा। राजधानी में अपेक्षाकृत अच्छी नौकरी मिल गई। आगे राजनीति में घुसे, एम.एल.ए. और मंत्री बने। वह लंबी कहानी आज उन्हें निरर्थक लग रही थी। लेकिन पैंतालीस साल के बाद सारी स्थूल घटनाओं के अंतराल में जो तात्पर्य उन्हें अभिभूत कर रहा था, वह था उनका विचित्र विचार। ऐसा लग रहा है मानो राजनीति करने के बीच, बार-बार सत्ता के आवरण में रहते हुए उन्होंने

खिसक गई उस धोती की तलाश कर ली है। मानो उनके सारे दंभ और आत्मप्रतिष्ठा के लिए उठाए गए कदम उनके उस दिन की कायरता और पलायन की क्षतिपूर्ति की दिशा में ही एक प्रयास हों।

रात के अंतिम प्रहर उनकी आंखें लग गई थीं। सपने में देख रहे थे, कल-कल निनादिनी एक स्रोत पर वे स्नान कर रहे हैं। शरीर से, संभवतः मन से भी कुछ साफ करने की कोशिश कर रहे हैं। वह क्या है ? नींद खुल जाने पर उन्हें पता चल चुका था कि वह सिर्फ पिछले पैंतालीस साल का छिपा हुआ आतंक ही था।

दरवाजे पर पी.ए. की दस्तक से उनकी नींद खुल गई थी। वैसे दरवाजा खुला ही था। पी.ए. के पीछे-पीछे चाय लेकर चौधरी परिवार का परिचारक अंदर दाखिल हुआ।

'चौधराइन आपसे मिलना चाहती हैं। अभी आने को कहूं ? बाद में शायद आपको समय न मिले।' पी.ए. ने पूछा।

'जरूर, जरूर !' सुब्रत बाबू कुर्ता पहनकर हाथ में चाय लिए बैठे रहे।

धीरे-धीरे चौधराइन ने अंदर प्रवेश किया। सुब्रत बाबू ने खड़े होकर नमस्कार किया। कोई आवेदन सुनने को वे प्रस्तुत हुए। बेटे या भतीजे के तबादले की बात होगी अथवा जमींदारी की कोई पुरानी इमारत सरकार को बेचने का प्रस्ताव। कुछ काम बने, न बने अतिथि-सेवी महिला को कुछ तो आश्वासन देना ही होगा।

'कोई असुविधा तो नहीं हुई। नींद अच्छी आई ?'

'आपकी व्यवस्था में कोई असुविधा हो सकती है भला ?' बड़ी अंगरंगता के साथ उत्तर दिया सुब्रत बाबू ने।

'मुझे डर था कि पैंतालीस साल पहले की बातों के याद आ जाने पर कहीं नींद में बाधा न पड़े।'

चौंक उठे सुब्रत बाबू ! उन्होंने चौधराइन को ध्यान से देखा।

'आप...'

'हां ! मैं उस दिन की वही चपल बालिका हूं। मेरा तो कोई भाई नहीं था। अपने ही बिरादरी के एक नौजवान से मेरी शादी करवाकर पिता जी ने उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी बना लिया था। ससुराल जाने की नौबत ही नहीं आई। यह अस्पताल मेरे पति की ही योजना थी। लेकिन इसका उद्घाटन देखने को वे जीवित ही नहीं रहे।'

चौधराइन ने सुब्रत के हाथ में एक पैकेट थमा दिया।

'आपकी छोड़ी हुई धोती ! किसी के पहचान लेने से पहले ही मैंने इसे छिपा लिया था।'

वे मुस्कुराईं और कहने लगीं, 'नेता के रूप में आप मेरे उस दिन के तरुण सर ही थे, इस बात का मुझे कई वर्षों तक पता नहीं था। अखबारों में आपके

फोटो देखने पर पता चला। उस दिन जिस खयाल से आपने मेरी आंखों पर हाथ रखा था, मैंने भी लगभग उसी खयाल से आपकी यह धोती संजोकर रखी थी।

महिला उठ खड़ी हुई। वे अत्यंत सहज तथा आसमान-सी सुंदर लग रही थीं। कभी तरुण सुब्रत द्वारा खिडकी से देखा शांत चेहरा।

'उस दिन डर के मारे मेरा चिल्ला उठना जितना अतार्किक था, आपका अधीर होकर दौड़ना भी उतना ही अतार्किक था। लेकिन सबसे ज्यादा अतार्किक था आपका काकलि छोड़कर भाग जाना।'

फिर एक बार मुस्कुराकर नमस्कार करती हुई वह चली गई।

स्तब्ध होकर बैठे रहे सुब्रत बाबू, पी.ए. के तीन-तीन बार अंदर आकर गला साफ करने के बावजूद।

सुब्रत बाबू के राजधानी लौटने तक दिन ढल चुका था। बल्कि वह एक संगीन अपराह्न था। मुख्यमंत्री और उनके बीच घनीभूत मतभेद पर विचार करने के लिए एक वरिष्ठ केंद्रीय नेता आए हुए थे। वे मुख्यमंत्री से भेंट कर चुके थे। अब सुब्रत बाबू से मिलने को उतावले थे।

बहुत कम समय के लिए सुब्रत बाबू के साथ नेता जी की भेंट हुई। बाहर निकलकर आते ही प्रतीक्षा कर रहे पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया।

'आपलोगों को जो कुछ पूछना है, पहले पूछ डालिए। मैं एक साथ सबके उत्तर दे दूंगा !' सुब्रत बाबू ने बताया।

टेपरिकार्डर तैयार हो गए।

'आप और मुख्यमंत्री में से किस पर केंद्र की आस्था अधिक है ? आपको क्या लग रहा है ?'

भ्रष्टाचार के बारे में अपने विरोध प्रमाणित करने के पक्ष में मुख्यमंत्री की चुनौती के बारे में आपने अपने केंद्रीय पर्यवेक्षक से क्या कहा, क्या चुनौती स्वीकार कर ली ?'

'दल के कितने सदस्यों का समर्थन आपके साथ है ?'

'अगर मुख्यमंत्री विधान-सभा भंग करने की सिफारिश करेंगे, तो क्या आप चुनाव के लिए तैयार हैं ?'

सुब्रत बाबू अपनी हंसी रोक नहीं पा रहे थे।

'आपके इतने प्रफुल्लित दिखने का क्या कारण है ?

'कारण अब मैं विवस्त्र नहीं हूं।'

उत्तर का तात्पर्य समझे बिना पत्रकार हंस पड़े और उनमें से, एक बुजुर्ग पत्रकार ने कहा, 'क्या आप अपने इस श्लेषात्मक वक्तव्य का जरा-सा खुलासा करेंगे ?'

'करता हूं। मैं मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे रहा हूं। विधान-सभा से इस्तीफा दे

रहा हूं, राजनीति से संन्यास ले रहा हूं। यह मेरा स्वतःस्फूर्त निर्णय है। इसके साथ किसी घटना का, किसी के साथ संघर्ष का कोई ताल्लुक नहीं।'

पल भर के लिए चुप रहने के बाद पत्रकारों ने फिर पूछा, 'क्या यह सही है ?'

'सही है !'

'इस तरह के निर्णय के पीछे क्या तर्क है ?'

'मैं क्यों पैदा हुआ, क्यों मरूंगा, इन प्रश्नों का तर्क ढूंढना जिस तरह निरर्थक है, मेरे इस निर्णय के लिए तर्क ढूंढना उसी तरह निरर्थक है।'

'आपके उत्तर देने की शैली से लगता है, आपका यह निर्णय अचानक नहीं है। राजनीति से संन्यास लेने की तैयारी आप कब से कर रहे थे ? पत्रकारों में से एक ने गुनगुनाकर विस्मयसूचक प्रश्न किया ?'

'जिस दिन राजनीति में प्रवेश किया, तभी से, लेकिन तब मैं सजग नहीं था।'

प्रफुल्लता के साथ हंसते हुए सबके लिए अभिवादन जताकर और तमाम सवालों के जवाब में सिर्फ नमस्कार करते हुए सुब्रत बाबू कार में बैठ गए।

कोहरा

'अचानक हमारे इस निर्जन तालकोटा का पता चलते ही यहां पहुंचने के कई महीनों पहले से मार्था भारत के प्रेम में पागल हो चुकी थी। नई दिल्ली के कुछ चुनिंदे उर्वर मस्तिष्कों में स्वयं शैतान, भारत को विदेशी पर्यटकों को बेचने की योजना को उकसाने के दस साल पहले की घटना है यह। आसमान से खिसककर एक बहुत बड़ी आरी मानो समुद्र को काट रही हो। ऐसे ही दिखाई देने वाले नारियल के बगीचे से समृद्ध यह किनारा तथा अभी-अभी आजमाकर देखने के लिए होटल में परिवर्तित महाराज की इस इमारत के अलावा उस समय तालकोटा में कोई और संस्था नहीं थी।' होटल के प्रथम तथा पूर्व मैनेजर खन्ना ने कहा—सेवा-निवृत्त होने के बाद वे तालकोटा में ही मकान बनवाकर बस गए थे। कभी उनकी देखरेख में चलने वाला होटल आगे चलकर दस गुना बढ़ गया था। उनके चतुर बेटे पर्यटन संबंधी कई बाजारों में अच्छी-खासी आमदनी कर रहे हैं। लेकिन खन्ना इस जगह की निर्जनता और सुंदरता की ही रट लगाए रहते थे। उस दिन के निरलंकार तालकोटा के साथ एकात्म खन्ना आज के इस टीपटॉप तालकोटा से शायद ईर्ष्या कर रहे थे। उनके इस मनोभाव से उत्कंठित या विस्मित होने की कोई बात नहीं थी। जो लोग एक ध्वंसात्मक प्रक्रिया शुरू करते हैं, प्रक्रिया की अपनी स्वाभाविक परिणति में पहुंचने पर वे ही लोग सबसे ज्यादा उत्कंठित होकर हाय तौबा मचाते हैं।

वैसे खन्ना से मैं इसके बारे में कह नहीं सकता था। हमलोग एक हल्के-से सांध्य भ्रमण को निकलते थे।

'मार्था का यहां पर मरने का क्या कारण है ?' गिरजे से सटे खेत के अंदर मार्था की वैशिष्ट्यहीन समाधि की ओर खन्ना के ऊंगली से निर्देश करने पर मैंने पूछा। भद्रव्यक्ति मुझसे बातें करने को काफी उत्सुक लग रहे थे।

लेकिन उन्होंने मेरे सवाल का सीधा-सा जवाब नहीं दिया। बाद में मुझे पता चला कि वे दे नहीं सकते थे। बैठने के लिए मुझे एक पत्थर की ओर इशारा करके खुद भी मेरे सामने के पत्थर पर आमने-सामने बैठ गए। समुद्री तट से जितनी ऊंचाई पर हमलोग थे, वहीं से कोमल लहरों से धुले हाल ही में बने मनोरम कुटीर और दुकानों की कतारें धुम्राभ गोधूलि में एक पुराने पर्सियन कार्पेट-सी दिखाई दे

रही थीं। क्रमशः समुद्री लहरों को छूते हुए घूमने-फिरने वाले चपल पर्यटक दल, थोड़ी दूर पर छोटी-छोटी हल्की नावों को किनारे की ओर लाने वाले केवट, बनजारे और विभिन्न दलालों के हमारी दृष्टि से ओझल हो जाने के बाद हमारा साथ देने के लिए हमारे पीछे एक रहस्यमय पहरेदार की भांति खड़ा गिरजा-घर और पास के समाधि वाले खेतों की भयंकर नीरवता ही थी। उस नीरवता को बीच-बीच में तोड़ रही थीं हवा की लहरें। मानो वह उस इलाके की नैसर्गिक नीरवता की ही आवाज हो—अगर इस तरह की विरोधात्मक अभिव्यक्ति ग्रहण योग्य हो।

उस परिवेश और खन्ना के कथन के बीच एक ऐसी संहति बैठ गई थी कि मैंने उनके कथन को एक तथ्य प्रधान विवरण के रूप में मान लिया था।

उस समय तालकोटा का एकमात्र 'गाइड' था प्रवीण। एक बालक की तरह सरल और सुंदर था वह। तालकोटा और उसके आसपास के दो-एक शहरों में रोज आ-जाकर तालकोटा का गौरव-गान करने के साथ ही उस होटल के लिए अतिथि जुटाने का काम वह करता था। उस बालक के लिए खन्ना के दिल में सच्चे स्नेह का संचार हो गया था। उन्होंने उसके रहने के लिए इमारत के बाहरी हिस्से की कोठरी छोड़ दी थी।

अचानक खन्ना के स्नेहभाजन उस लड़के के जीवन में एक विभीषिका दिखाई दी। तालकोटा के बाहर से सिर्फ पांच-छह किलोमीटर की दूरी पर समुद्र में एक छोटा-सा द्वीप था। प्रवीण बीच-बीच में उत्साही पर्यटकों को उधर घुमा लाता था। एक दिन उधर से लौटते वक्त नाव उलट गई। चार विदेशी डूब गए। अच्छे तैराक होने के कारण नाव वाला और प्रवीण दोनों बच गए।

इस अप्रत्याशित दुर्घटना में प्रवीण का विमूढ़ दिखाई देना अस्वाभाविक नहीं था। लेकिन उसकी वह विमूढ़ता फिर दूर नहीं हुई। समुद्र-तट पर, जहां पर ज्वार की उन्मत्त लहरें एक-एक करके विदेशी पर्यटकों की मृत देहों को फेंक गई थीं, वहीं पर वह दास बनकर लंबे समय तक बैठा रहता या और फिर बालू पर लोटता रहता।

जाड़े का मौसम था। आधी रात को खन्ना के दरवाजे पर बार-बार दस्तक सुनाई दी। उन्होंने दरवाजा खोला एक सफेद नाइट-गाउन पहने प्रवीण ने उनका *अभिवादन किया।*

'मेरा यह गाउन कैसा लग रहा है ? इसे उस दिन मैंने पेरिस में रियायती दर में खरीदा था। खैर छोड़ो, तुम्हारी एक तस्वीर बनाने की मेरी बड़ी इच्छा है।'

प्रवीण ने एक तरह से जोर देकर खन्ना को उसके बिस्तर पर बिठा दिया और खुद एक कुर्सी खींचकर उनके सामने बैठ गया।

मृतक की प्राणसत्ता जीवित पर सवार हो सकती है, लगता है इस बारे में खन्ना को थोड़ा भी अविश्वास नहीं था। वे समझ गए कि प्रवीण को वश में कर

रखा था मसियें रामों की सत्ता ने। वे फ्रांसीसी सज्जन एक चित्रकार थे। नाव डूबने से एक दिन पहले उन्होंने खन्ना की प्रतिकृति आंकने का प्रस्ताव रखा था।

एक तरफ प्रवीण खन्ना को बार-बार देख रहा था और आंक रहा था; दूसरी ओर खन्ना एकटक प्रवीण की ओर देख रहे थे। प्रवीण की आंखों में खन्ना देख रहे थे मसियें रोमों की प्रखर दृष्टि। विदेशी लोगों के रहने वाली कोठरियों में ताले लगे हुए थे। उनके परिवार से कोई आए न आए, उनके देशों के दूतावास से कर्मचारियों को आकर उनकी चीजों का जिम्मा लेना चाहिए था। निर्जन रात को रिसेप्शनिस्ट से मसियें रोमों की कोठरी की चाबी लाकर, कमरा खोला और दिवंगत सज्जन के गाउन को स्वयं पहन लिया। सुबह होते ही उन्हें देखकर रिसेप्शनिस्ट दंग रह गया था। कारण रात की उनींदी हालत में उसे लगा कि रोमों ही उससे चाबी ले गए हैं। उसी धारणा के कारण निश्चिंत होकर वह सोने चला गया था। दुर्घटना के बारे में उस समय वह भूल गया था।

उस रात और दूसरे दिन भी कई बार खन्ना को बिठाकर प्रवीण ने उनके मुंह की रेखाओं का अंकन किया। लेकिन एक भी चित्र उसे न जंचने के कारण वह अपने ही ऊपर झुंझला रहा था। संभवतः रोमों की सत्ता प्रवीण के अनाड़ी हाथों को आशाजनक नियंत्रण में नहीं कर पा रही थी।

खन्ना समझ नहीं पाए कि आखिर प्रवीण के बारे में वे क्या करें। तीन-चार दिन बाद सुबह समुद्र के किनारे चलहकदमी करने के पश्चात् अपने पीछे किसी को कोई अधभूला संगीत गुनगुनाते सुनकर चौंक गए। प्रवीण ही गुनगुना रहा था। लेकिन उस सुर के साथ अंग्रेज पर्यटक मि. बैरेट अधिक अभ्यस्त थे। कहना न होगा कि अन्य तीन व्यक्तियों के साथ मि. बैरेट को भी प्राण गंवाना पड़ा था।

उस दिन प्रवीण ने ठीक बैरेट की ही तरह खन्ना का अभिवादन किया। साथ ही उनकी बातचीत भी अंग्रेजी उच्चारण के नजदीक लगने लगी। उसकी आवाज भी जैसे बदल गई थी।

दूतावास के कई प्रतिनिधियों के पहुंच जाने से खन्ना व्यस्त रहे। उसी समय उत्तर भारत से एक अधेड़ उम्र की दंपत्ति आ पहुंची। दुर्घटना में दम तोड़ने वाला तीसरा आदमी उनका बेटा था। दंपत्ति के साथ एक तरुणी भी थी। वह लगातार रो रही थी। उसकी शादी उस युवक से होने वाली थी।

खन्ना ने देखा कि प्रवीण चुपचाप एकटक उस युवती पर ध्यान लगाए हुए है और थोड़ी दूरी रखकर उसका अनुसरण करता है। फिर भी वह रो रही थी। तब तक क्या प्रवीण उस मृत युवक की सत्ता से आच्छन्न था ? इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसने मानो उस अद्भुत प्रक्रिया के सामने अपने को न्योछावर कर दिया था।

जब खन्ना ने देखा कि वह युवती भी प्रवीण की ओर देख रही है, तब वे

विशेष उत्कंठित नहीं हुए। दोनों के बीच बातचीत की संभावना रोकने की उन्होंने भरसक कोशिश की। चुपके से वयस्क दंपत्ति से कह दिया कि प्रवीण का दिमाग खराब हो गया है। नतीजा यह हुआ कि 'गाइड' से दुर्घटना के बारे में दो-एक मामूली प्रश्न करने के बाद उस दंपत्ति ने उसके बारे में अधिक दिलचस्पी नहीं दिखाई।

इस अतिथि-दल के चले जाने के बाद क्रमशः दुर्घटना से उपजी चहल-पहल खत्म हुई। प्रवीण भी अपेक्षाकृत स्वाभाविक दिखाई देने लगा। खन्ना आश्वस्त हुए। इतने बड़े लड़के को आखिर पागल कहकर समाज परित्याग करेगा, इसे बर्दाश्त करने को वे तैयार नहीं थे।

घटना-प्रवाह के इसी मोड़ पर तालकोटा में आ पहुंची मार्था। उसे क्रमशः प्रवीण के साथ घुलमिल जाते देखा गया। खन्ना का इस पर चिंतित होने की कोई बात ही नहीं थी। प्रवीण ने जिस भयंकर धक्के का सामना किया था, उसके पश्चात् किसी का गहरा स्नेह निश्चित रूप से उसका मानसिक संतुलन लौटा लाने में सहायक होगा। उस स्नेह का उत्स कोई और न होकर अगर संक्षिप्त निर्वाण मार्ग की खोज में भारत आई एक स्कॉटिस डायवोर्सी हो तो क्या हर्ज है ?

प्रवीण तब तक खन्ना से दूरी रखकर चलता था। लेकिन खन्ना को प्रवीण का शुभेच्छु जानकर मार्था खूब खुलेपन से उनसे बातें करती थी। प्रेम का स्फुरण उसकी बातचीत और आचरण को अच्छी तरह प्रभावित कर रहा था।

एक दिन शाम को अकेले में उसने खन्ना से कहा, 'स्वामी तूर्यानन्द ने अत्यंत मधुरता के साथ मुझे दीक्षा देने से क्यों मना कर दिया, अब मैं समझ रही हूं। संन्यासिनी का जीवन बिताने की मेरी तैयारी नहीं है कहने पर मैं तो झल्ला उठी थी, पर सचमुच मेरी प्रस्तुति नहीं थी कारण...'

'कारण ?' कारण जानते हुए भी खन्ना ने शिष्टता की दृष्टि से कौतूहल दिखाया।

'कारण मेरे जीवन में प्रवीण का आना अभी बाकी था' कहती हुई मार्था शर्म से लाल दिखने लगी।

'अपनी जिंदगी में प्रवीण की किस तरह की भूमिका की तुम आशा करती हो ?'

'आशा ? आशा का पर्याय अब नहीं रहा। प्रवीण मेरे सब कुछ हैं, यह बिल्कुल सत्य है।'

खन्ना मुस्कुराए और अनुकंपा का भाव छिपाए बिना ही बोले, मार्था, प्यार में घायल आम लड़की की तरह ही तुम भी कह रही हो।'

'हो सकता है।' खन्ना की ठंडी प्रतिक्रिया से मार्था हताश हो गई, पर उनके मंतव्य का खंडन नहीं किया। उसने कहा, 'प्यार में घायल कोई भी लड़की जो करना

चाहेगी, मैं वही करने जा रही हूं। मैं प्रवीण को लेकर जी-भरकर भ्रमण को निकल रही हूं।'

खन्ना ने उनकी शुभयात्रा की कामना की। दूसरे दिन एक टैक्सी सें मार्था और प्रवीण शहर छोड़कर जा रहे थे। इतने में खन्ना से विदा लेने की सौजन्यता तक न दिखाने के कारण प्रवीण को एक तरह से खींच ले जाकर खन्ना ने कहा, 'सुनो ! तुम मार्था के साथ जा रहे हो, इस पर मैं बहुत खुश हूं। तुमसे बातचीत करने का मौका मुझे नहीं मिला था। और तुम मेरी बात सुनने की हालत में नहीं थे। तुम सचेत हो या नहीं, मैं नहीं जानता; लेकिन तुम थोड़े दिन तक भूत-ग्रस्त अवश्य थे। तुम्हें अब स्वाभाविक होते देख मुझसे बढ़कर खुश कौन होगा ? लगता है, प्यार ने तुम पर जादू कर दिया है।'

बातचीत में हल्का-सा मजाक करने का खन्ना का प्रयास व्यर्थ हुआ। प्रवीण एक बार उनकी ओर विषभरी नजर डालकर टैक्सी की तरफ बढ़ गया। फिर, पलभर के लिए भी अपना प्रभाव ढीला करने को तैयार न होने वाली मार्था भी खन्ना की ओर एक बार देखकर मुस्कुराती हुई उसे खींच कर ले गई।

खन्ना ने उनके लिए फुसफुसाकर दो-चार अवैधानिक शब्द कहे और दूसरे काम में मन लगाया।

दो महीने बाद अचानक एक दिन मार्था आकर उनके सामने हाजिर हुई। वह भूतनी की तरह दिख रही थी। 'प्रवीण कहां है ?' उसने धमकी भरे लहजे में पूछा।

'यह सवाल बल्कि मुझे तुमसे करना चाहिए था, क्यों ?' खन्ना ने उलटे प्रश्न किया।

मार्था ने इस पर कोई विरोध नहीं किया। वह रोने लगी और बेमेल ढंग से उसने जो भी कुछ कहा, उससे पता चला कि ऋषिकेश पहुंचने के बाद प्रवीण चुपचाप कहीं भाग खड़ा हुआ।

मार्थ अस्वस्थ होकर होटल में ही पड़ी रही। लेकिन महीने भर बाद मार्था की मृत्यु हो गई। वाइरल बुखार कहकर डाक्टर ने रिपोर्ट दी। पर खन्ना के अनुसार, जीने की तनिक भी इच्छा न रहना ही उसकी मृत्यु का कारण रहा होगा।

दिन-पर-दिन बीतते चले गए। एक दिन शाम को प्रवीण आ पहुंचा खन्ना के सामने बैठकर वह हंसने लगा। मानो उन्हीं का दिया कोई काम पूरा क़रके वह लौटा हो।

'हट जा मेरे सामने से।' खन्ना ने चिल्लाया। 'तुम इतने हृदयहीन दायित्वहीन, विवेकहीन हो, मैंने इसकी कल्पना तक नहीं की थी। तुम्हारी कोई भी सफाई सुनने को मैं तैयार नहीं हूं। जानवर कहीं के।'

प्रवीण ने एक बार उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देखा और चपुचाप वहां से

चला गया।

यह मामला अगर यहीं खत्म हो जाता तो बुरा न होता। मार्था के साथ दगाबाजी के कारण प्रवीण की भर्त्सना करके खन्ना ने अपना फर्ज निभाया है, इसी संतोष से वह सिर्फ बीच-बीच में घटना को सिर्फ याद कर लेते थे। लेकिन हाय ! उनके हाथ लगी ताक पर रखी एक डायरी। उसके मालिक थे बॉब—उस हादसे के चौथे शिकार। डायरी के अंतिम पृष्ठ पर लिखा था—'तालकोटा एक रमणीक स्थान है, पर अपने अंदर मैं अनवरत ऋषिकेश के आकर्षण का अनुभव कर रहा हूं। वहीं से रहस्यमय देवभूमि की शुरुआत हुई है। मानो उसी के अंदर मैं खो जाऊंगा...'

खन्ना को यकीन है कि मार्था जब प्रवीण के प्रेम में फंसी, उस समय प्रवीण पर कब्जा कर लिया था बॉब की सत्ता ने। ऋषिकेश पहुंचने के बाद वह सत्ता ही उसे छोड़कर चली गई।

'बेचारा प्रवीण ! उसके प्रति अकारण मैंने बड़ी निर्दयता दिखाई। उसका व्यक्तित्व जब बॉब के कब्जे में है और मार्था से दगा करने वाला व्यक्ति वह नहीं, बॉब था, इसका पता प्रवीण को कहां होगा ? उसे मैंने न जाने कितना ढूंढा, पर वह नहीं मिला। उसके लिए मुझे कम पश्चाताप नहीं हुआ है।' उस ऊंची भूमि से कोहरा और अंधकार भेदते हुए जब हम होटल की ओर बढ़ रहे थे तब खन्ना ने कहा।

मादा मगरमच्छ

मीलों लंबी बंजर जमीन, रेतीले मैदान और कीचड़ भरी सड़कें विशिष्ट समाजशास्त्री डॉ. बैटस्टोन को विचिलत नहीं कर पाई थीं। क्रमशः रेलगाड़ी, जीप और बैलगाड़ी की सवारी करने के बाद मील भर पद यात्रा करके मि. बैटस्टोन हमारे गांव पहुंचे थे।

पश्चिमी देश के गगनचुंबी इमारतों से भरे एक शहर में जिंदगी बिताने वाले डॉ. बैटस्टोन ने भारत आने के बाद एक निपट देहात देखने की इच्छा प्रकट की थी।

हमारे विद्यार्थी जीवन में भारत के शहर और गांवों के बीच के फासले आज की तरह नहीं थे। विशाल लाल त्रिकोण, राजनीतिक चर्चे, और सिगरेट के बहुरंगी विज्ञापनों तथा लाउड-स्पीकरों से गूंजते आज के देहात जिस तरह से शहर की विकृत प्रतिध्वनि में परिणत हो गए हैं, उस समय ऐसा नहीं था।

हमारे घर के बरामदे में एक आराम कुर्सी में बैठकर डॉ. बैटस्टोन हर दस मिनट में एक बार उच्चारण कर रहे थे, चमत्कार ! अद्भुत ! उनके चमत्कार अनुभव या विस्मय के कारण के बारे में उन्हें कुछ पूछने की कोई जरूरत ही नहीं थी। पूरब से पश्चिम के दिगंत पर्यंत सारे आकाश को एक व्यक्ति लगातार जब तक चाहे देख सकता है; यही था सबसे बड़ा चमत्कार; सैकड़ों गाय-बैल एक छोटे-से युवा चरवाहे का अनुसरण करते हुए विस्तृत मैदान के भीतर से होकर बड़ी ही शृंखलित गति से चल सकते हैं। यह था बचपन में 'पाइड पाइपर' गीत पढ़कर उसे विश्वास कर लेने जैसा विस्मय, और हमारे गांव के सन्तानबे प्रतिशत निवासी रेलगाड़ी और सिनेमा–इन दो को देखे बिना समय काट रहे हैं। यह आविष्कार उससे भी अधिक विस्मय भरा था।

फिर भी साहब के लिए सबसे अधिक विस्मयकर अनुभव हुआ था हमारे गांव के 'आदर्श निम्न प्राथमिक विद्यालय' के हेड पंडित मकु मिश्र महोदय से मिलने पर, जिन्होंने डारविन, मार्क्स, फ्रायड, आइन्स्टाइन और बर्नाड शॉ–इन पांच पुरुषों में से किसी का भी नाम सुने बिना चालीस साल तक शिक्षण कर लिया था।

हमारे गांव में कभी एक विदेशी साहब का आविर्भाव होगा, यह गांव वालों की कल्पना तक में नहीं थी। अर्द्धशताब्दी पहले का तूफान, उसके दो दशक बाद

हमारे गांव से सटे देव मंदिर का अचानक ढह जाना, यहां तक कि भारत के भाग्यदिगंत पर मोहनदास करमचंद गांधी का उदय—इन सभी घटना-दुर्घटनाओं के बारे में सही-सही भविष्यवाणियां करने वाली पंजिका भी ऐसी संभावना के संबंध में चुप थी। फिर, हमारे गांव के बीस के लगभग सज्जनों का साहब के सामने पल्थी मारकर बैठकर मुंह ताकने में आश्चर्य ही क्या है।

उनके इस तरह का निरीक्षण सिर्फ मनोरंजक है—इस बात को साहब भली-भांति समझते थे और कई बार उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा भी है कि 'मैं इतना आकर्षक हूं, इसका मुझे पहले से पता ही नहीं था। अगर मैं नृत्य-विद्या जानता होता तो इन भले लोगों को खुश करने के लिए खूब नाचता।'

हमारे गांववालों के प्रति यूं ममताबद्ध हो उठने वाले साहब ने अचानक पूछा, 'अच्छा बाबू, ये लोग क्या भूत-प्रेत पर विश्वास करते हैं ?'

अनुवादक के रूप में लोगों का मुझ पर अटूट विश्वास था। प्रश्न को हू-ब-हू भाषांतरित करते ही सबने मना किया। साहब सीधे होकर बैठ गए। मुझे लगा जैसे अब उनकी हामी भरने की बारी है। कुछ देर बाद उन्होंने मुझसे कहा, 'जानते हैं, ये लोग हमारे देश के लोगों से अधिक प्रगतिशील हैं। मेरा विश्वास मानिए, हमारे देश के पचास प्रतिशत से भी ज्यादा लोग, खुलकर हो या छिपाकर, भूत-प्रेत पर विश्वास करते हैं। अच्छा पूछिए तो, ये लोग ईश्वर पर विश्वास करते हैं ?'

मैंने साहब के सवाल का अनुवाद करके सुना दिया। लोग स्तब्ध होकर बैठे रहे।

'यानी ये लोग निश्चित नहीं हैं, इन्हें संदेह है।' साहब ने उनकी खामोशी का अर्थ अपने को समझा दिया और तारीफ के स्वर में मुझसे कहा, 'यकीन मानें मेरे देश के लोग ऊपर से वस्तुवादी तो दिखाई देते हैं, पर...'

'तब तक हमारे गांव के सज्जनों ने पहली संक्षिप्त उक्ति और बाद की निरुक्तियों की व्याख्या करना आरंभ कर दिया—भूत-प्रेत पर विश्वास कैसे करें साहब ! भला उनका कोई विवेक होता है !'

'तुम्हें विश्वास कैसे होगा कि साहब, मेरे रिश्ते के भाई, मेरे बाप के सगे मामा के अपने दामाद के भतीजे हैं। एक ही तकिए पर सिर रखकर सोने से लेकर उसकी शादी में खरीदारी करने तक क्या-क्या नहीं किया है मैंने उस स्साले के लिए ! लेकिन कौन नहीं जानता कि मरने के बाद भूत बनकर हमारे गांव के असंख्य लोगों में से उसने मुझे ही चुना परेशान करने के लिए ! कौन नहीं जानता कि साल भर के लिए आधा खर्चा देकर, बड़ी धूमधाम से उसकी मृत्यु-वार्षिकी मनाकर उसकी आत्मा को शांत करने तक मैं रात को कभी पिछवाड़े में नहीं जाता था—दिशा-मैदान के लिए भी नहीं ! कौन नहीं जानता यह ?'

'नहीं साहब, आप तो विदेशी हैं। हमारे देश के भूत-प्रेत पर विश्वास करना आपके लिए ठीक नहीं होगा। मौका मिलने पर उन्हें वश में करके रखने वाले ओझाओं

की भी गर्दन पकड़कर वे उन्हें मार डालते हैं।'

वैसे दयालु, परोपकारी भूत-प्रेत नहीं हैं—ऐसा नहीं कहा जा सकता। अपने बचपन में मैंने खुद नागा बाबा के दर्शन किए हैं। बाबू ! आप साहब को ठीक से समझा दीजिए—वे महापुरुष बिल्कुल नंगे थे। मैंने जब उनके दर्शन किए थे, तब तक उनकी उम्र दो सौ साल से अधिक हो चुकी थी। उन महापुरुष के जन्म का वृतांत बड़ा विचित्र है साहब। उस समय देश में हैजा फैल चुका था। उनकी गर्भवती मां को मृत समझकर लोग उन्हें लेकर श्मशान में फेंक आए। उसके बाद पैदा हुए महात्मा चीखते, चिल्लाते रहे—पूरी रात और दूसरे दिन भी। उसके बाद एक और शव लेकर श्मशान पहुंचे लोग मृत माता की गोद से बच्चे को उठा लाए। कहिए तो साहब, चौबीस घंटे तक महात्मा की रक्षा किसने की ?'

गांव के एक तार्किक स्वभाव के व्यक्ति साहब के पास खिसक आए और चुनौती देने की मुद्रा में उपर्युक्त प्रश्न किया और खुद ही उसका उत्तर दिया, 'निश्चित रूप से भूत-प्रेत के पंचायत ने ! नागा बाबा ने जिंदगी भर न तो लोगों के साथ कोई बातचीत की और ना ही कपड़े पहने ! बातचीत करने की बहुत इच्छा होने पर फुसफुसाकर अदृश्य आत्माओं के साथ बातचीत करते।

और भगवान पर विश्वास-अविश्वास की जो बात आपने उठाई, क्या भगवान हमारे मातहत हैं जो उनके बारे में विश्वास-अविश्वास की बात उठेगी ? उन्होंने संसार का सृजन किया, हमें दुनिया में लाए, फिर न जाने कहां ले जाएंगे, फिर लाएंगे, फिर...'

सभी ने एक साथ सिर हिलाकर पंडित जी की इस व्याख्या का समर्थन किया।

मैंने यथासाध्य अनुवाद किया। साहब फिर आराम कुर्सी पर लेट गए और बोले, 'आश्चर्य, चमत्कार।'

'साहब ! नदी के उस पार जो श्मशान है, नागा बाबा वहीं पैदा हुए थे। हमारी बातों पर अगर आपको विश्वास न हो तो खुद चलकर उस स्थान को देख आइए।' एक गांव वाले ने कहा।

नदी का प्रसंग आने पर साहब फिर सीधे होकर बैठ गए। मुझसे कहा, 'कल उसी में डुबकी लगाएंगे। मगरमच्छ तो नहीं है ना ?'

गांव के साथ बचपन से मेरा विशेष ताल्लुक नहीं रहा। तभी मैंने मगरमच्छ के बारे में गांव वालों से पूछा। वे लोग मेरे प्रश्न पर अपमानबोध करने के लहजे में प्रतिवाद करते हुए बोले, 'बाबू, आपने तो काफी कुछ पढ़ाई की है। मगरमच्छ नदी में न रहकर क्या पहाड़ पर रहेंगे ? लेकिन बाबू, क्या मगरमच्छ ने हम गांव वालों का कभी कोई नुकसान किया है ? जब तक बुढ़िया मगरमच्छ जिंदा है...'

सभी ने गांव की एक निर्दिष्ट दिशा की ओर ऊंगली उठाकर संकेत किया।

मैं अपने लोगों के वृतांत का पूरा-पूरा अनुवाद करना नहीं चाहता था। साहब से सिर्फ यही कहा कि मगरमच्छ से किसी नुकसान की कोई आशंका नहीं है।

लेकिन साहब, इस बीच गांववालों की बातचीत का पूरा रसास्वादन करने के आग्रही हो उठे थे। फिर एक निर्दिष्ट दिशा में उनका समवेत ऊंगली-निर्देश भी साहब की नजरों से बचा नहीं था।

अब मुझे जो जानकारी थी, मैं बताने लगा—

डॉ. बैटस्टोन ! वह एक हास्यकर प्रसंग है। आपको तो यह अंदाज हो गया होगा कि हमारे लोग कितने सहज विश्वासी हैं ! बहुत दिनों की बात है। नदी के किनारे एक गरीब दंपत्ति रहता था। उनकी इकलौती बेटी थी। तीन साल की उम्र में शादी करके पांच साल की उम्र तक विधवा होकर वह अपने मायके में ही रह रही थी।

जिस समय वह जवान थी, एक दिन नदी में नहाते समय लोगों ने देखा कि उसे मगरमच्छ खींचकर ले जा रहा लोगों ने देखा था। सभी ने सोचा कि वह सदा के लिए चल बसी। लेकिन दस साल बाद अचानक वह गांव में दिखाई देने लगी। तब तक उसके बाप की मृत्यु हो चुकी थी। मां मरने की हालत में थी। नदी किनारे उसकी झोंपड़ी भी टूट-फूट गई थी!

बेटी ने मां की खूब सेवा की, लेकिन उसे जिंदा नहीं रख पाई। उसी टूटी-फूटी झोपड़ी में बैठकर वह रो रही थी। दो दिन बाद उसके घर के पिछवाड़े नदी के बांध पर पानी से निकलकर घूमता हुए एक बूढ़ा मगरमच्छ इस ओर निकल आया। लोगों ने उसे पीट पीटकर मार डाला।

'लड़की संभवतः मां-बाप के गुजर जाने पर मायूस होकर किसी से कोई बातचीत किए बिना घर पर बैठी रो रही थी। न जाने कैसे एक अद्भुत कहानी फैल गई। दस साल तक घर बसाने के बाद मायके आई हुई औरत के पीछे मगरमच्छ जो दामादगिरी करने चला आया, सो मरा !'

'अब भी वह औरत ज़िंदा है। उम्र शायद नब्बे के आसपास होगी। उसे हर कोई मादा मगरमच्छ कहता है। क्रमशः यह भी विश्वास किया जाता है कि मादा मगरमच्छ के प्रति सम्मान दिखाकर दूसरे मगरमच्छ इस गांव के लोगों का कोई नुकसान नहीं करते। गांव वाले बारी-बारी से बुढ़िया को सुबह-शाम खाना पहुंचा आते हैं।

'अपूर्व, अपूर्व, अपूर्व !' साहब अभिभूत हो उठे और पूछा, 'लेकिन दस सालों तक वह रही कहां ?'

'पता नहीं, हो सकता है किसी और को भी पता न हो। मुझे लगता है, लोगों ने इस कहानी को ऐसे सहज भाव से स्वीकार कर लिया है कि किसी ने संभवतः बुढ़िया से इसके बारे में कभी कुछ पूछा ही न हो।'

तीव्र उत्साह और मिन्नत भरे लहजे में साहब ने मुझसे कहा, 'बाबू ! बुढ़िया के उन दस सालों की जीवनी का पता लगाया जाए। इतना न हो सका तो मुझे बड़ा अफसोस होगा।'

चांद के उगने में अब कुछ देर बाकी है। टॉर्च लिए मैं साहब के आगे-आगे चला। पहले एक निरहंकार न भौंकने वाले कुत्ते और दुबारा गांव की ओर जा रहे एक कछुए से टकराकर गिरते-गिरते संभल गए साहब, लेकिन वे आमोदित ही हुए।

ढिबरी की रोशनी में घुटनों पर ठोढ़ी रखकर बैठी बुढ़िया नजर आई। हमें देखकर मुस्कुराई। हमलोग उसके सामने पल्थी मारकर बैठ गए और बुढ़िया के पत्थर के बर्तन में दूध, भात और केले का भुर्ता उड़ेल दिया। बुढ़िया फिर मुस्कुराई।

'दादी मां, हमलोग तुमसे कहानी सुनने आए हैं। ये जो सज्जन मेरे साथ हैं ये असली साहब हैं। बेचारे सात समुद्र पार से आए हैं। इनकी बड़ी इच्छा है तुमसे कहानी सुनने की।'

बूढ़ी के चेहरे पर विस्मय या दुविधा का नामोनिशान नहीं था। 'मैं तुम्हें यायावर राजपुत्र और सपनपुरी की राजकुमारी की कथा सुनाऊंगी।' उसने तुरंत प्रस्ताव रखा।

'अरे नहीं दादी मां ! तुम तो जानती हो, तुम्हें हर कोई मादा मगरमच्छ कहता है। हाः हाः। लेकिन सचमुच जो दस साल तक तुम गुम हो गई थी, वह दस साल तुम कहां रही, क्या-क्या करती रहीं, उसकी कहानी सुनाओ।' मैंने कहा।

बुढ़िया की श्रवण शक्ति स्वाभाविक लगी। पोपले मुंह से उसके कहने की शैली मुझे अच्छी लगी। बुढ़िया के दो चार शब्द कह लेने पर मैं उसका अंग्रेजी बना लेता था। डॉ. बैटस्टोन का निर्देश था कि मुझसे एक भी शब्द छूटने न पाए।

'मगरमच्छ तो मुझे ले गया बेटा, सात तल पानी के नीचे, जाने कैसे ? जब मेरा...'

'ना, ना, दादी मां...' मैंने बीच में टोक दिया, 'हम कहानी सुनना नहीं चाहते। वास्तव में क्या हुआ था, यानी तुम्हें मगरमच्छ के पकड़ लेने पर तुम कैसे उससे छूटी, दस साल किस तरीके से बिताए, वही कहानी।'

बुढ़िया के कहने की मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह कहती चली गई, 'सात तल पानी के अंदर बेटे, जब मुझे होश आया, तब मैंने देखा, मगरमच्छ मुझे एकटक देख रहा है...जाने क्या हुआ, मैं भी उसकी ओर से आंख न फेर सकी...'

'दादी मां, तुम मगरमच्छ के चंगुल से कैसे छूटी, उसके बारे में अगर याद न हो तो रहने दो, वहां से बच निकलने के बाद क्या किया, उसके बारे में बताओ...' मैंने फिर से मजबूरन उसे टोकते हुए कहा।

'बच निकलकर जाती कहां, बेटे ? जाने क्या हुआ कि मैं उसकी ओर से आंख फेर नहीं सकी। सात तल पानी के तले न सूरज है न चांद, न दिन है न रात। इसलिए कब तक वैसा बीता, बता नहीं सकती।'

मैंने फिर बुढ़िया को नहीं टोका। बुढ़िया की अबाध्यता के कारण नहीं, बल्कि जिस प्रकार साहब को एकाग्र होकर उसकी कहानी निगल जाते मैंने अनुभव किया, मैं स्थिर हो गया। उस हल्के-से प्रकाश में हम तीनों की छायाएं दीवार पर हिल रही थीं। मैं निरासक्त होकर बुढ़िया के वक्तव्य का अनुवाद करता जा रहा था। बीच-बीच में कदाचित् नदी के नाव की हल्की-सी आवाज सुनाई देने पर बुढ़िया तनिक रुक जाती थी, मानो नदी की वह उफनती पुकार उसकी स्मृति को अधिक तीव्र बना देती हो।

बुढ़िया डेढ़ घंटे तक कथा सुनाती रही। हमारे गांव के घाट से नौ कोस की दूरी पर जो बहुत बड़ा और गहरा भंवर है, वहीं पर सात तल पानी के नीचे मगरमच्छ को लेकर घर बसाने की कथा है। वह घर नहीं बसाती। पहले ही लौट आती। लेकिन भाग आने के लिए बाहर निकलकर जब वह तैरती हुई पानी के ऊपर आई, तब तक उसने पानी से अपना प्रतिबिंब देखा कि वह खुद मादा मगरमच्छ बन चुकी है। न जाने कब मगरमच्छ ने उस पर ऐसा जादू कर दिया, उसे बेहोश करके पानी के अंदर खींचकर ले जाते समय या उसे लंबी अवधि तक घूरते रहने के दौरान।

फिर वह बहुत रोई। मगरमच्छ ने उसका मन बहलाने के लिए तरह-तरह के प्रयास किए। लेकिन मन नहीं माना। अंत में, मगरमच्छ ने एक दिन उससे कहा, 'अच्छा ठीक है। ये मंत्र सुन लो। जब भी यह मंत्र पढ़ लोगी, तुम अपना असली रूप प्राप्त कर लोगी। लेकिन मेरे पास रहते समय यह मंत्र काम नहीं करेगा। क्योंकि मेरे सामने यह मंत्र पढ़ते ही इसे नाकाम करने वाला दूसरा मंत्र मेरे मुंह से निकल आएगा।'

उस दिन भंवर में से निकलकर रोज की तरह घूमने जाते समय मगरमच्छ अपने आंसू रोक नहीं पाया था। रुआंसा-सा होकर उसने कहा, 'मैं जानता हूं, मेरे लौटने तक तू नहीं रहेगी। लेकिन याद रख, नदी के बीचो-बीच मंत्र मत पढ़ लेना, वरना इंसान बनकर डूब जाएगी। अपने गांव के घाट तक जाकर किनारे पहुंचकर ही मंत्र-पाठ करना।'

लेकिन शाम तक लौटकर मगरमच्छ ने देखा कि मादा मगरमच्छ को उसने जहां छोड़ा था, वह वहीं पर है। जाहिर है कि मगरमच्छ बहुत खुश हुआ।

दूसरे दिन भी मादा मगरमच्छ नहीं गई। उसके बाद भी नहीं।

मगरमच्छ और मादा मगरमच्छ दोनों बड़ी खुशी से कई घाटों का दूर-दूर तक चक्कर लगाते रहे। एक बार इस नदी से दूसरी नदी में जाकर काफी दूर तक तैरते हुए एक तीर्थ स्थान पर पहुंचे। मादा मगरमच्छ ने अपने पति से कहा, 'तुम यहीं पानी में रुके रहो। मैं जरा यहां के मंदिर में जाकर भगवान के दर्शन कर आऊं।' मगरमच्छ राजी हो गया।

फिर कई तीर्थों के दर्शन उसने किए। रात को किनारे आकर मंत्र पढ़कर वह इंसान बन जाती। दिन भर तीर्थों के दर्शन कर रात को पानी में उतरते ही मगर उसे मादा मगरमच्छ बना देता। वह सिर्फ अपने गांव में कभी नहीं आती। शायद आने पर लौटकर जा नहीं पाएगी, इसलिए।

लेकिन दस साल बाद एक बार अपने मां-बाप से मिलने की उसकी बड़ी इच्छा हुई। मगरमच्छ की इजाजत लेकर एक दिन के लिए गांव में आकर उसने देखा, सब कुछ बर्बाद हो चुका है। पिता जी गुजर चुके हैं। मां अंतिम सांसें गिन रही है। मरने से पहले उसने बेटी की दो दिनों की सेवा पाई थी बस।

टूटी झोपड़ी में पड़े-पड़े पहले की जिंदगी के बारे में, मां-बाप के बारे में सोचते हुए एक दिन और बीत गया। इससे अधीर होकर मगरमच्छ उससे मिलने के लिए किनारे तक आ पहुंचा था। गांव वालों ने उसे मार डाला।

उसके बाद साठ साल और बीत चुके हैं। बुढ़िया नदी के किनारे अकेली उस झोपड़ी में रह रही है।

झोपड़ी के सामने ही सियारों के झुंड ने 'हुआ-हुआ' बोलना शुरू कर दिया। मंत्र मुग्ध साहब चौंक उठे। हम बूढ़ी से विदा लेकर लौटने लगे। बुढ़िया ने मुस्कुरा दिया।

तब तक चांद ऊपर चढ़ चुका था। साथ ही हर घर से उठने वाले धुएं से चांदनी और भी नर्म व नीलाभ लग रही थी।

हमलोग चुपचाप चले आ रहे थे। साहब अनमने से होकर फिर टकरा गए—इस बार नदी लौटते उस कछुए से और फिर न भौंकने वाले उस कुत्ते से।

अचानक नदी के किनारे रुककर साहब ने बड़े ही आंतरिक स्वर में पूछा, 'वह भंवर किस दिशा में है ?'

'कौन-सा भंवर ?' मैंने पूछा।

'जिस भंवर में नर और मादा मगरमच्छ रह रहे थे।'

मेरे मुंह से उन्हीं के दो प्रिय प्रतिशब्द निकल आए, 'चमत्कार, विस्मयकर !' फिर मैं हंस पड़ा।

साहब गंभीर हो गए। हमलोगों ने फिर चलना शुरू किया।

कई साल पहले पश्चिमी देश के एक महानगर से साहब की चिट्ठी आई थी, 'अब भी तुम्हारे गांव में बिताई गई एक रात और एक दिन के बारे में याद करते ही मैं महसूस करता हूं मानो उस समय मैं एक दूसरा ही इंसान बन गया था, उस बुढ़िया के मादा मगरमच्छ बन जाने की तरह। सचमुच ही सच्चा और स्वाभाविक था मेरा वह बदलाव !'

●●●

कम्प्यूटेक सिस्टम, ईस्ट ज्योति नगर, दिल्ली-93 द्वारा लेज़र कम्पोज
तथा शिवम ऑफसेट प्रेस, नारायणा, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।